



## भक्त-कवि हरिराय जी : व्यक्तित्व और कृतित्व

( अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शाध-प्रबन्ध )

### प्रबन्ध-सार

निर्देशक

प्रोफेसर डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्लः

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।



**Not in Circulation**

प्रस्तुतकर्त्री

कु० एन० सी० सीताम्भाल

एम०ए०

T-1561

१६७५

## प्रबन्ध-सार

### भक्त कवि हरिराय जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तुत शीघ्र प्रबन्ध में उपसंहार सहित आठ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय में भक्त कवि गो० हरिराय जी की प्रामाणिक जीवनी देने की चेष्टा की गई है। गो० हरिराय जी आचार्य बल्लभ वैशज हैं। उनकी पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं। गो० विठ्ठल नाथ जीके के पीत्र गोस्वामी कल्याणराय जी के पुत्र हैं। उनका जन्म संवत् १६४७ माना जाता है। इस समय देश में मुगल साम्राज्य अपनी चरम उत्कर्ष पर था। दिल्ली की गद्दी पर सम्राट् जहाँगीर और शाहजहाँ आसीन थे। देश में राजनीतिक कुछ हलचल प्रायः शान्त थी। समाज में सुख, वैभव, विलासिता की एक प्रखर लहर दौड़ रही थी। धार्मिक विडिग्ग निर्मूल तो नहीं था, किन्तु दवा हुआ अवश्य था। अकबर की उदार धार्मिक नीति की प्रतिष्ठाया एक दम समाप्त नहीं हुई थी। जहाँगीर में हिन्दू धर्म, दर्शन के प्रति एक स्वाभाविक अभिरुचि मन में सजग थी। अतः देश में शान्ति का वातावरण था।

ब्रज भूमि में अनेक धार्मिक संप्रदाय विशेषकर कृष्ण भक्ति संप्रदाय फलप रहे थे । विशेषकर छत्तम सम्प्रदाय अपने चरमोत्कर्ष पर था । संप्रदाय के आचार्य अत्यन्त तेजस्वी, विद्वान् और भावुक भक्त थे । श्रीकृष्ण सेवा और भक्ति साहित्य का सज्जं यही दो कार्य अव्याहत गति से चल रहे थे । ब्रज भाषा साहित्य का विपुल भाण्डार अष्टछापी कवि भर ही रहे थे । उनकी परिपाटी पर अनेक पुष्टिमार्गीय भक्त कवि कीर्तन सेवा में रत थे । संप्रदाय के आचार्यों का लेखन कार्य प्रायः संस्कृत में ही होता था । दर्शन, भक्ति की मीमांसकों के अतिरिक्त उपजीव्य ग्रंथों की टीकाएँ, छोटे मोटे स्वतन्त्र व्याख्या ग्रंथ, स्तोत्र, अष्टक, स्तुतियाँ नामावलियाँ का सहज प्रणयन एवं प्रचार ही रहा था । अष्टछापी कवियों की शैली पर परवर्ती संप्रदाय के आचार्य भी ब्रजभाषा में पद रचना करने लगे थे । इसी परंपरा में और ऐसे ही वातावरण में गो० हरिराय जी का आविर्भाव हुआ था ।

वे वैभव और आनन्द के वातावरण में जन्मे थे । अतः कुल परंपरागत शिक्षा दीक्षा के उपरान्त अपने कुल देवता भगवान् विठ्ठलनाथ जी के स्वरूप की सेवा एवं ग्रंथ लेखन यही उनके दो कार्य थे । गो० हरिराय

जी ने आचार्य बल्म के सभी ग्रंथों के रहस्य का उद्घाटन किया है। साथ ही स्वतन्त्र लेखन भी किया है। उन्होंने संस्कृत में लगभग १६६ ग्रंथ लिखे। ब्रजभाषा में मौलिक ग्रंथों की रचना की। गौ० गोकुल नाथ जी ने जब वातांश साहित्य का वर्गीकरण किया तो उन्होंने ८४ एवं २५२ वैष्णव वातांशों पर तथा अन्य वातांशों पर भाव प्रकाश के नाम से गंभीर टिप्पण प्रस्तुत किए। साथ ही अपने प्रिय भागवत प्रसंगों का ब्रज रूपान्तर भाषा पदों में प्रस्तुत किया। भाव प्रकाश में उनकी तीन जन्म की भावना का आधार सेवा- भावना ही है। सेवामें च्युति ही अन्य जन्म का कारण होती है। सेवा की सावधानी ही नित्य लीला में प्रवेश कराती है। अतः तीसरे अध्याय में भाव प्रकाश में उल्लिखित भक्तों की तीन जन्मों की सूची दी गई है। तीन जन्म की भावना और सेवकों के भावानुसूल उनकी स्वरूप सेवा एवं स्वरूपासक्ति का विवरण गौ० हरिराय जी की अपनी मौलिकता है। उनके पास प्रत्येक सेवक के तीन जन्म के सूत्र कैसे पहुँचे यह एक समस्या है किन्तु पौराणिक सूत्र सेवा की भावना का संकेत देते हैं। अतः उसी सूत्र के आधार पर गौ० हरिराय जी ने उनके तीन जन्मों का स्वरूप निर्धारित किया है। "बहूनां जन्मगायन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।" गीता की इस उक्ति के आधार पर ही गौ० हरिराय जी ने भक्तों की भगवान्



के साथ सानुभावता का स्वरूप सम्पन्न है। इस आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक विवरण के पश्चात् चतुर्थ अध्याय में पुष्टि भक्ति के तत्त्वों का मूलाधार श्रीमद्भागवत को सिद्ध किया गया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का स्वरूप सेवा विश्रह की अपनी अपनी विशेषताएँ, अष्टयाग सेवा की भावना, गुरु एवं आचार्य परंपरा को आधार मानकर भक्ति के क्षेत्र में उसकी महत्ती आव-  
श्यकता का अनुभव करना, हरिराय जी को पुष्टिमार्गीय निर्गुण भक्ति का स्वरूप, बल्लभ के प्रति असीम भ्रद्धा, पुष्टि भक्ति के बालम्बन- श्री यमुना , श्री गोधूल , श्रीमद्भागवत, अष्टाक्षर मंत्रादि में असीम भ्रद्धा भाव का नाम रूप, लीलाधाम में समान सब भाव एवं भगवद् बुद्धि रखना इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय रहा है। पाँचवें अध्याय में शुद्धाद्वैत दर्शन के आधार पर परब्रह्म जीव, जगत्, संसार, अविद्या, मायादि की चर्चा सँक्षेप में की गई है। गौ० हरिराय जी कठोर बल्लभानुसारी हैं। अतः दर्शन के क्षेत्र में कुछ भी नवीन नहीं कहते । जो कुछ पूर्वाचार्यों ने कह दिया वही उन्हें मान्य है। अतः यह अध्याय सर्वाधिक संक्षिप्त है।

षष्ठ अध्याय में उनकी ब्रजभाषा रचना को लेकर

भाव पक्षा सर्व कलापक्षा पर विचार किया गया है। वे मुख्य शृंगारी और उसमें भी संयोग पक्षा के प्रतिपादक आचार्य हैं। अतः गोपी भाव के रहस्य के पूर्ण मर्मज्ञ हैं। परकीया भाव की शुद्ध 'अमनिया' भाव से निरूपित करने वाले वे प्रथम आचार्य हैं। कला पक्षा के अन्तर्गत उनके हृन्द अलंकारों एवं विविध भाषा के शब्द प्रयोगों पर विचार किया गया है।

सप्तम अध्याय में गो० हरिराय जी के काव्य में ब्रज-संस्कृति के तत्त्वों की चर्चा की गई है। ब्रज संस्कृति भारतीय संस्कृति की जन्मी मानी गई है। उसमें चरम वैदिकता, संस्कारों की आवश्यकता एवं उनकी शास्त्रीय स्वरूप ब्रज संस्कृति में हो उपलब्ध है। गो० हरिराय जी के काव्य में उसकी भरपूर चर्चा हुई है।

अन्त में उपसंहार में उनके संप्रदाय के प्रति गंभीर योगदान की चर्चा करके प्रबन्ध को समाप्त किया गया है। प्रबंध प्रस्तुतकर्त्री तेलुगू भाषी है उसकी अपनी तौमारी है अतः 'अपराधसहस्र माज्ज' की उक्ति को वह अपने प्रति सविनय स्वीकार करती है।



## भक्त-कवि हरिराय जी : व्यक्तित्व और कृतित्व

( अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शाध-प्रबन्ध )

निर्देशक

प्रोफेसर डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्लः

अध्यक्ष

हिन्दो विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्त्री

कु० एन० सी० सीताम्भाल

एम०ए०

१६७५



T1561

T 1561



  
**CHECKED-2002**

SEP 09 1976

In Case

## सुफिया

प्रस्तुत चौध- प्रबन्ध की अपनी एक मनोरम वास्तविकता है। एम० ए० के लिए हुए की विशेष कवि के रूप में उभरने वाली प्रबन्ध अन्तर्गत प्रबन्ध का परिचय देने हुए एक दिन डा० गुरुदेव द्वारा भी कहा था, “ वास्तविक प्रबन्ध का वैश्वपूर्ण कृत्स्न स्वरूप में ही उपलब्ध है। उनकी मातृभाषा पंजाबी की वीर के असाधारण भी कल्लू में ही कही है। अन्तः ही कही हुए भी प्रबन्धों की वीर वास्तविक के उत्थान में उन्होंने जो योग दिया वह अकल्पनीय है। प्रबन्धों, उधेव उनकी प्रणीत रहनी। ” वादि जमी मेरे मन में ब्रह्म भाषा के प्रति आभासिक कुराग का उठा। एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त मेरे पुनः डा० द्वारा ही चौध कार्य करने के लिए वीर अपने निर्देश में ही के लिए वास्तव दिया। वीर उन्होंने मुझे गोस्वामी हरिदास जी के प्रबन्धों का प्रबन्ध पर कार्य करने की प्रवृत्ति की। ईश्वर वीर कल्लू भाषा ही होने के कारण मेरे मन में अत्यन्त प्रवृत्ति के प्रति मन में रागात्मकता थी। साथ ही असाधारण वैश्ववर्तता का भी वास्तव था कि मैं वही चौध कार्य के लिए किसी वैश्ववर्तता का ही उभरने की। ईश्वर की विशिष्टता वीर द्वारा ही की की ओर डा० द्वारा ही मेरी भीतर प्रवृत्ति होती रही थी। मेरा ही। मेरी के रात्र का अन्तः ही की प्रवृत्ति थी के अब मेरी जिज्ञासा ही थी। अन्तः उनकी उभरने के मेरा समाधान ही जाता था। विषय वीर निर्देश वीरों के प्रति मेरी आस्था गहन के गहनतर होती गयी वीर उन्होंने अन्तः, सुविशेष वि विविधता में मेरे विषय का अभ्यस्त करा दिया। उस रात्र ही विविधता

अप्यस्तु तां हस्तिं तां उमां मे विणयं कौ प्रसन्नं कियं वीरं स्त्रीकृतिं भी  
 वै वी । तस्यै मे उनकी विर वाभारी हूँ। मुझे लगा कि अथै हा० मां भी  
 पुष्टिमार्गीय उपद्रव के वास्तव के लिए वही हृदय में उस गहन पठन से जोर  
 हुए हैं।

विणय के स्त्रीकृत जो पाने पर भी भीरुता की ओर उठि-  
 नात्मां भी मुझे न जो प्रसन्नता का वक्ष्य जान पा और न वास्तव के प्रार्थ-  
 पर का वीर या नही पुष्टिमार्गीय पवित्र फल, ऐसा- भावना, ऐसा- पक्षि  
 का वक्ष्य वीर या । मुझे भी भीरुता नहीं थी । किन्तु दूसरे वीर भी  
 निर्दोश ता० हस्त जो उमां उफरणा के वीर थे । का: मुझे ज- ज- हस्त  
 समस्याओं का सामना करना पड़ा है वही पूरी पूरी उदात्तता रही । फिर  
 भी मुझे प्रसन्नता की गुरा करने में बहुत उद्यम लगा है। जैसे उपद्रव में पड़ा है  
 न उन्मा । जो कुछ भी कुछ जो पाया उसमें भी गौरवधर की ही कृपा है।

प्रसन्न प्रसन्नता का अन्वयों से उपद्रव में प्रसन्नता है।  
 प्रसा अन्वय में भी० उपद्रव की प्रसन्नता जोयनी देने की पूरी पूरी  
 कष्टता को गया है। जैसे अन्वय के रूप में उनके संस्कृत ग्रन्थों की प्रसन्नता  
 पक्षों की उदात्तता की गई है। सत्कारिण उपद्रविक ग्रन्थों से अन्वय पूर्ण का  
 भी उपयोग किया गया है।

दूसरे अन्वय में उनके वाचन्याय कृति का परिचय  
 दिया गया है। वाचि में संस्कृत ग्रन्थों के परिचय देने से अब उन्मा की किन्तु  
 भी निर्दोश ता० हस्त में मुझे उद्गृत संस्कृत ग्रन्थों का परिचय भी दिखाया ।

‘भाव प्रकाश’ की विषयगत वस्तु मेरी प्रबन्ध सीमा से बाहर की वस्तु प्रतीत हुई। कतः उन्होंने तीन जन्म की भावना के उत्प्रेष पर अधिक धन दिया। उस प्रकार तीसरे जन्म में उनके प्रथम भाषा साहित्य एवं ‘भावप्रकाश’ का परिचय देने की चेष्टा की गई।

तीसरे जन्म में फर्न की चर्चा उसी पाण्डित की द्वितीय गी० एरिराय की मुख्यः रचित कृत है और ऐसा जानना है परम वाच्य। कतः फर्न में उनकी प्रकृति प्रकट हो गई है। वे वाच्य पत्र के विषय व्याख्याता हैं। कतः फर्न के क्षेत्र में जो कुछ भी वाच्य पत्र में कतः एरिराय की है उसी की व्याख्या की द्वितीय मुष्टिमार्गीय मन्त्र की प्रकाश ऐसा मानना उनके मुख्य विषय है। कतः तीसरे जन्म में मैं दोरी परिभाषी का लक्षण न करे करे मुष्टिमार्गीय मन्त्र, ऐसा- मानना और ऐसा- पाणि की चर्चा की है। और फर्न की बात है।

तीसरे जन्म में मैं मुष्टिमार्गीय का उद्दिष्ट परिचय की एर एरिराय की की प्रथम भाषा काव्य में जो रचित मिले उनमें की उद्दिष्ट चर्चा की है। कतः मैं एक बार उस कृत्य की पुनरावृत्ति करना चाहूँगी कि गी० एरिराय की मुद्राः माहुर रचित कृत वरिष्ठ हैं आरम्भ नहीं है।

तीसरे जन्म में उनके भाव का और प्रकटता की और विचार दिया गया है। वे स्वयं सुगर की मुख्य रूप मानते हैं और उसी के अन्तर्गत अन्य सबों को। कतः सब बात को चर्चा करते हुए मैं उस कृत्य





कन्ना मै मै पुनः अपने निर्देशक डा० गोवर्धन नाथ गुप्त,  
 अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अखिल मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रति अपने  
 आभार व्यक्त करती हूँ जिसकी कृपा से अपने अध्ययन के पूरा कर देने  
 में सफल हुई। मास्टर रामेश्वर दयाल के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त  
 करती हूँ जिसने मुझे समय समय पर ठीक प्रकार से सहायता दिया।

विनीता

देवदयनी स्नातकी १०२०३२

१० नवम्बर १९६१ पीताम्बर

## विषयानुक्रमिका

### प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश

- श्री हरिराय जी कालीन भारत
- ऐतिहासिक दृष्टि से- सामाजिक स्थिति , धार्मिक स्थिति
- श्री हरिराय जी का जीवन चरित्र
- प्रासादिक इतिहास के लिए उपलब्ध सामग्री
- पूर्ण पुरुष - जन्म, नाम, इच्छा,
- गुरुद्वारा - गुरु मंदिर, प्रवृत्ति
- सांख्यिक ज्ञान- मंदिर मायना
- कृष्ण चत्सलता- यात्राएँ , खिन्नीर
- निवास, जन्म सेवक , श्री हरिराय
- जी के कतिपय जीवन रहस्य, श्री रणधीर
- जी की स्थापना , श्री हरिराय जी की
- सेवा, पैरों - लीला प्रवेश - स्वभाव-
- श्रेष्ठ लेखन , निष्कर्ष

## द्वितीय अध्याय : श्री हरिराय जी का कृतित्व

संस्कृत ग्रन्थों का परिचय  
 श्री हरिराय जी के ब्रजभाषा ग्रन्थों  
 का परिचय  
 ब्रज भाषा काव्य की रचनाएँ  
 गुजराती रचनाएँ  
 वार्ता ग्रन्थ ( माव प्रकाश )  
 हरिराय जी के ग्रन्थों की प्राप्तावस्था  
 हरिराय जी का पत्र-साहित्य

## तृतीय अध्याय : श्री हरिराय जी के ग्रन्थों में तीन जन्म की

भावना और शैवकों का शैवभाव का स्वरूप

- माव प्रकाश की तीन जन्म की भावना का  
 रहस्य और उसके स्रोत  
 पुराणों में जन्मान्तरवाद  
 श्रीमद्भागवत महापुराण में जन्मान्तर प्रसंग  
 वार्ता साहित्य के प्रतिभू निर्गुण भक्तों का  
 आधिदैविक रूप एवं कर्म  
 वार्ता साहित्य में वर्णित निर्गुण पदा के ८४  
 बिकारी रूप उनके धर्म रूप २५२ वैष्णवों का  
 आधिदैविक चित्रण

### चतुर्थ अध्याय : श्री हरिराय जी की भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भागवत पुष्टि तत्त्व  
 पुष्टिमार्ग में सेवा का स्वरूप  
 श्रेष्ठ विग्रह के प्रति सेवा भाव का स्वरूप  
 वष्टयाम सेवा निष्पन्न में हरिराय जी का कृतित्व  
 निज कृतित्व में वल्लभ विट्ठल का समावेश  
 श्रीमद्भागवत का चरम वाक्य  
 हरिराय जी के मानस में श्रेष्ठ विग्रह का स्वरूप  
 श्री हरिराय जी की निर्गुण भक्ति  
 श्री हरिराय जी की वल्लभ भावना  
 श्रीमद्भागवत के प्रति प्रह्लाद  
 श्री गोकुल के प्रति प्रह्लाद  
 श्री यमुना के प्रति वाकर भाव  
 श्री सुबोधिनी के प्रति चरम भावना  
 साष्टाक्षर मन्त्र स्वी नाय स्मरण  
 पुष्टि भक्ति निर्गुण भक्ति है  
 श्री हरिराय जी की वल्लभ शरण भावना

### पंचम अध्याय : श्री० हरिराय के साहित्य में दार्शनिक तत्त्व

शक्तिरीय भावावाद की अस्वीकृति  
 श्री० हरिराय की सुद्धांतरी दार्शनिक भान्यताएँ  
 बीज, अक्षर, पञ्चल वधवा पुरुषोत्तम

**षष्ठ अध्याय : गौ० हरिराय जी का ब्रज भाषा काव्य**

गौ० हरिराय जी की रचना में वस्तु- निरूपण,  
धीकृष्ण, धी राधा, मुरली, यमुना, रास ।

नारी और पशु स्वभाव का उद्भयन  
वाल स्वभाव का चित्रण , प्रकृति चित्रण,  
गौ० हरिराय जी के काव्य का मावपदा,  
मधित रस का निरूपण , गौ० हरिराय जी  
का संयोग शृंगार , गोपियों के विविध चित्र,  
गोपियों के मानाभास, मान आदि की चर्चा,  
गौ० हरिराय जी का विप्रलीभ शृंगार ,  
गौ० हरिराय जी में अन्य रस ,  
गौ० हरिराय जी के काव्य में कलापदा  
अलंकार विधान , छन्द विधान , ब्रजभाषा  
काव्य में प्रयुक्त राग रागिनियाँ , गौ० हरिराय  
जी की भाषा , गद्य शैली , पद्य शैली  
संस्कृत शब्दों का प्रयोग, ब्रजभाषा शब्दों  
का प्रयोग , फीजावी शब्दों का प्रयोग, गुजराती  
शब्दों का प्रयोग, ध्वन्यात्मकता , कतिपय मुहावरे,  
कतिपय लोकोक्तियाँ, कतिपय चिन्त्य प्रयोग

**सप्तम अध्याय : गौ० हरिराय जी के काव्य में ब्रज संस्कृति**

लोक वेद की दृष्टि से संस्कार

जात कर्म , नामकरण, लोक रीति

ध्वजारोहण - वेद रीति

ब्रज के पर्व

संप्रदाय के पर्व , चार जयन्तियाँ ,

पिशुपूजा, स्नान पान, नित्य भोजन में,

वर्णोत्सव , पुष्पाँ की चर्चा , ब्रज प्रदेश की

जपनी कतिपय प्रथाएँ , ब्रज के स्थानों का

उल्लेख, धार्मिक परंपराएँ, ब्रज के स्थानों का

उल्लेख ।

**अष्टम अध्याय : गौ० हरिराय जी का पुष्टि संप्रदाय के प्रति**

योगदान

सहायक ग्रंथों की सूची

प्रथम अध्याय

### विषय प्रवेश

#### पी हरिरायकाजीन भारत : ऐतिहासिक दृष्टि से

विश्व की उत्तरी राजाकी ऐतिहासिक दृष्टि से पूरी सुख शान्तिमय थी। मुगलिया शासन की वहाँ न केवल कम ही चुनौती थी बल्कि यहाँ की हर हर हिन्दू की योग्य थी। हिन्दू सुसलमान साम्राज्यवाद की सुख शान्ति का था कि ऐतिहासिक वीर विलक्षण में निम्नान्न थे। भारत प्रायः पारसी जातिमय थे निम्नान्न था। उस देश के निवासी पारसी मान्यताओं के अनुसार बल्कि बलिष्ठ ही गये थे। सुसलमानों की संघटित धर्म-राज्य व्यवस्थागत नहीं थी बल्कि राजा की। तब: हर ऐतिहासिक उनमें के साथ साथ समाप्त-मिलने की थी। उस प्रकृति की ही मूल्य द्वारा जाता है। तब: मूल्य में भी व्यवस्था केन्द्रित होता है उत्तरी जाति तथा के लिए नाक ही जाती है। उधर भारतीय समाज में पाति का मूल्य ही है सुख भी व्यवस्थागत धर्म राजा तब: मूल्य रहते हैं। उस आधार पर उत्तरी (१७ वीं) राजा की भारत प्रचलन में है पारसी संघर्षों की वा परन्तु उत्तम की जाति प्रकृति पार काट ही है धर्म परिवर्तन कलाता तब तन्वाय में पारसी धीमाफ जा गया था। उस राजा की सुसलमान के धर्म, के जाति के ऐतिहासिक समाज के कारण उत्तम नीति बलवाती है।

दूसरी वीर हिन्दू में पारसी विनिम्नता का चुनौती। सत्य तो यह है कि सन् ६४७ ई० में उत्तरी की मूल्य के उपरान्त १० की राजनीतिक स्थिति सम्बन्धी ही नहीं। देश हर विश्व में जाति बल सामाजिक ही, पारसी ही, जाति ही अथवा संस्कृतिक ही एक बड़ा जाति सम्बन्धित है। उस राजनीतिक कला के द्वारा के कारण जाता है दोषात



से चलती बाहं धारणा में प्रवृत्ति, रीति- रिवाज सब परंपराएँ और मान्यताएँ प्रायः दात- विदात हो गयी थी। एक प्रकार से हिन्दू जीवन में व्यवस्था का कोई सुन्दर स्वरूप अवशिष्ट नहीं रह गया था। मुसलमानी मानु पाव का हिन्दुओं में क्भाव था। उसका परिणाम यह हुआ कि उनमें बाह्य विधि- विधानों का कोई विशिष्ट मूल्य नहीं रहा, यदि कुछ अवशेष था तो वह भी व्यक्तिगत वाचरण की शैल्यता। कही धर्म का प्राणतत्त्व थी। राज- नीतिक रूप से केन्द्रीय शक्ति क्षीण होगयी थी। राजपूतों के छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गये थे जिनमें परस्पर ईर्ष्या- द्वेष और वैमनस्य चल रहा था। पृथक्ता और व्यक्तिगत वात्स्य गौरव की भावना जानी चलवती थी कि उसके सामने देश क्ख्या उपाज नगण्य था। राजपूत शासकों की पारस्पर- रिह वैमनस्य की प्रवृत्ति उस काल में बहुत चलती थी। उस काल की राज- नीतिक स्थिति का यदि अध्ययन किया जाय तो अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस्लाम के भारत प्रवेश के बाद मध्ययुगीन राजनीतिक इतिहास की दो भागों में सुविधापूर्वक विभक्त किया जा सकता है :

### १- मुगलकालीन भारत से पूर्व का इतिहास

- लगभग सन् ७१२ से सन् १५०० तक। जिसमें मुहम्मद बिन कासिम के वाक्रमण से लेकर मुलाम बिलजी तुगलक सैयद और लोदी वंश तक का शासन काल जा जाता है।

### २- मुगलकालीन भारत का इतिहास

- सन् १५०० से लेकर १७०० तक जा जाता है। हिन्दी साहित्य का मविकाल का समय ( १३७५- १७०० ) भी उसी के अन्तर्गत जा जाता है। भारत के धर्म संप्रदायों का इतिहास लगभग उसी काल में जनक

करवटें डेता रहा है। हमारे प्रस्तुत ग्रन्थ का लगभग यही वालोच्य काल है। उस समय तक इस्लाम को भारत में रहते हुए लगभग बाठ शताब्दियाँ बीत चुकी थीं। अतः उसी धर्म के साथ तथाकथित विदेशी शासकों के द्वारा पूर्ववर्ती कुतारता का व्यवहार तो नहीं किया जा सकता था बल्कि क्रांतीय वि-प्लवपूर्ण नीति को सुधारने के लिए व्यवस्यभव प्रयत्न भी होते रहे। यद्यपि अधिक सफलता तो नहीं मिली, परन्तु यह समस्त युग भारत की बहुसंख्य हिन्दू जनता के लिए धर्मान्धता, दूरता, नृशंखतापूर्ण व्यवहार बलान् धर्म परिवर्तन देव स्थानों के लण्डन, अत्याचारों एवं अनाचारों से परिपूर्ण रहा। १६ वीं शताब्दी के प्रथम पञ्जीखण्डों में तो देश की राजनीतिक अवस्था प्रायः मुगल देश के उसी प्रसिद्ध शासक अकबर ने अपनी दूरदर्शिता से अपना राज्य विस्तार ही नहीं किया बल्कि उसकी जड़ें भी फना कीं। यही परता विदेशी शासक वा जिसने भारत को विजित नरेशों के साथ उदार व्यवहार दिया और उन्हें अपना मित्र ही नहीं माना बल्कि मित्रता को बुरा बनाने के लिए राजपूतों के साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित दिया। अकबर ने भेद भावपूर्ण कर वसूल करना भी बन्द कर दिया और अपनी शासन व्यवस्था में हिन्दुओं को समानाधिकार भी दिये। उसकी धार्मिक सहिष्णुता के कारण देश की स्थिति बदल गयी और वे राज्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई। उस परम्परा को जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी जीवित रखा और परिणाम यह हुआ कि इस काल में साहित्य संगीत और धर्म की कमी उन्नति हुई कि यह युग साहित्य के दौलत में तो स्वर्ण युग ही कहा जाता है।

### सामाजिक स्थिति :

उस काल का समाज स्पष्ट रूप में दो भागों में विभक्त था। सामन्त वर्ग और जनसाधारण । सामन्त वर्ग प्रायः अधिकार मद में

घूर था। विलासिता की यह स्थिति थी कि कामिनी और मदिरा जीवन के आवश्यक चीज समझे जाते थे। कैमब और विलास की घनीभूत अवस्था में कला और साहित्य की प्रगति अवश्य था परन्तु जन साधारण की कला सुखमय नहीं थी, चाहे वह सुखलमान हो अथवा हिन्दू हो। सांस्कृतिक भेदभाव अभी बना हुआ था यहाँ भारत में निवास करने वाला प्रत्येक सुखलमान अरब से नहीं पाया था परन्तु उसकी धर्म भी अरब ही रही भारत नहीं हो पाया। उनके पवित्र तीर्थ स्थान मक्का मदीना ही रहे काशे या रामेश्वरम् नहीं हो पाये। ऊँचे वर्ग में अतिरिच्युता के भाव बराबर विद्यमान रहे परन्तु साधारण नया निम्न वर्ग में विशेष सावना गहरी नहीं थी। इसका कारण शायद यह रहा हो कि बुद्धी एन्तों ने जन मानस पर कच्चा प्रभाव डाला था। चलनत रुत में हिन्दू सुखलमानों की जो कला थी पर सुखल काल तक चाहे चाहे पर्याप्त रूप से फल गयी थी धार्मिक दृष्टिकोण से पलापल का भी दीर चलनत रुत में चला था पर जन बहुत कम हो गया था। मन्दिर और मूर्तियाँ जाने मन्न नहीं किये जाते थे। सुखलमान हिन्दुओं से विचार कर लेते थे। सुखलमान हिन्दुओं से विचार कर लेते थे परन्तु हिन्दुओं ने सुखलमानों से विचार दिये उसे उपाकरण नहीं मिलते।

हिन्दू समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था उन्हें अपने धर्म से विशेष प्रेम था मूर्तिपूजा कलित ज्योतिष, जादू-टोने वादि पर उनकी पहरी नज़र थी। देश में अपार सम्पत्ति होते हुए भी वितरण व्यवस्था में बड़ी विषमता थी, बहुसंख्यक जनता अल्पधिक दक्षिण थी। धन मुट्ठी पर अल्पसंख्यक उच्च पदस्थ सामन्तों में ही सिमट कर रह गया था। राज्य के द्वारा जो सार्वजनिक शिक्षा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध था और पानादि में जो धन व्यय किया जाता था वह केवल सुखलमानों के हित में हो। इस प्रकार हिन्दुओं की कोई नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

### धार्मिक स्थिति :

जैसे- जैसे देश में विदेशी मुसलमानों की उपेक्षा होती मुसलमानों की संख्या बढ़ती जा रही थी तो यह वर्ग अपने मन में हिन्दू धर्म के प्रति पूर्णतः के भाव अधिक न रह सका । शासकों में भी धार्मिक सहिष्णुता धीरे धीरे जा रही थी । तीर्थ यात्रा कर फरो हटा दिया गया था । सन् १५६४ वर्षात् सम्वत् १६२१ में कजिया भी हटा दिया गया था । परन्तु वाक्शाहों की ओर से पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कभी नहीं की गयी ।

भारतीयों ने राजनीतिक पराधीनता तो स्वीकार की, परन्तु मानसिक नहीं । उन्हें अपने धर्म और संस्कृति पर गहरा गर्व था । धार्मिक पक्ष में हिन्दू धर्म इस्लाम की बान्धव सम्पन्न न कर सका । राष्ट्रीय पद धन शिक्षा और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और अन्य सुविधाओं और समानताओं के प्रलोभन उनके मन को न जीत सके । नवों मुसलमानों की उन्नता हिन्दुओं को भयभीत कर सकी । उधर कतिपय सूफी सन्त तथा निर्गुण चिन्तक नानक, दादू और कबीर ने भारतीय वाङ्मयान्त्रिक चिन्तन पद्धति में बहुत गहरा समन्वय उपस्थित कर दिया और उस प्रकार इस्लाम के प्रचार और प्रसार में बहुत बड़ी सीमा तक रोक लगी रही ।

सगुण भक्ति बान्धवल भी मूलतः जन- बान्धवल था , जिसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा । जायसी, रसतान, रहीम आदि मुस्लिम भक्त एक ओर अपनी उदार दृष्टि का परिवर्तन दे रहे थे तो दूसरी ओर वैष्णव जातार्थों की शिष्य परम्परा में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे ।

वैष्णव आचार्यों के उद्धार भक्ति वर्तन ने हिन्दू मुस्लिम दोनों जातियों के अन्तर्धिलयन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। रामानुज, मध्व, निम्बार्क, नामदेव, वल्लभ, रामानंद, रैदास, मीरा आदि ने भक्ति की जो वधाध धारा इस देश में बहायी उस से तत्कालीन विद्रुब्ध जनता को बड़ी गहरी शान्ति मिली।

सदोष में मध्य युग भारतीय इतिहास का सैद्धांतिक युग है जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षण में जो परस्पर विरोधी मान्यतारों का काया में टकराव होता रहा और समन्वय के लिए सफल-फलक प्रयास करते रहे। प्रयासों के इस इतिहास में भक्ति आन्दोलन और उसमें भी पुष्टिमार्ग का गहरा पाव रहा। पुष्टिमार्गीय आचार्यों में महाप्रभु बल्लभ, गौस्वामी विट्ठल नाथ जी, प्रभुवरण गोकुल नाथ जी परम भगवदीय गौस्वामी हरिराय जी आदि कुछ महानुभावों ने धर्म, सच्चाई एवं संस्कृति के उद्धार और स्थिरता में अमूल्य योगदान रखा। उस काल में कला, साहित्य और संगीत की जो उन्नति हुई किसी न फले से पायी न बाद में। भक्ति आन्दोलन बल्लभः भारतीय आस्तिक मनोवृत्ति की विषय का इतिहास है। विशेष कर के पुष्टिमार्गीय आचार्यों का कार्य स्वर्णाक्षरों से लिखे योग्य है जिसकी वृद्ध निष्ठा का तेजोमय प्रकाश एकिरी की तुलन्दी को पार कर लाती महलों में व्याप्त हो गया था।

### गौ० हरिराय जी : जीवनचरित

पुष्टिमार्गीय आचार्यों में गौ० हरिराय जी अन्यतम आचार्य हुए। आचार्य बल्लभ के वंश में ये चौथी पीढ़ी के आचार्य हैं जिन्होंने साहित्य संगीत और सेवा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया। सत्य तो यह

है कि गो० हरिराय जी वाचार्य वल्लभ के पुर्णिमान भाष्य है । यह तथ्य है कि वाचार्य वल्लभ की मूल कथा समाप्त- ऐसी को यदि छुदकाम करना हो तो हरिराय जी के ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक ही नहीं बनिवार्य है। वाचार्य वल्लभ के हाथों को यदि किसी ने मली मालि बान्धतात् किया है तो वे गो० हरिराय जी हैं और जो दृष्टि है उनका साम्प्रदायिक महत्व सर्वांगपरि है। गो० हरिराय जी ने वाचार्य वल्लभ के भाष्यकार के रूप में और स्वतन्त्र वाचार्य रूप में लगभग एक ही स्वर ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें एक ही पवास ग्रन्थ तो संस्कृत में है। वे स्वयं भी कविता करते थे उनका उक्तम् "रसिक" था । दूसरी ओर वे उच्च शक्ति के भावुक मन्त्र थे जो कश्चित् कृष्णपरायण रहकर सेवा रूप में लीन रहते थे । परिणामतः उनकी यत्नसुरभि वाचार्य महाशु वल्लभ एवं गो० विठ्ठलनाथ जी से किसी प्रकार भी न्यून नहीं । उनके सिद्धा फल, कीर्तन, भाषनाई बाज भी प्रत्येक वैष्णव के घर में बड़े वादर के साथ पढ़ी जाती है और यथार्थ तो यह है कि वाक्ता साहित्य के रहस्य के उद्घाटन के लिए गो० हरिराय जी का "भाव प्रकाश" एक बड़ा मार्ग स्तम्भ है जिस के दिव्य जालीक में अनन्त संप्रदायिक- रहस्य उद्घाटित होते हैं। ऐसी महामणि व्यक्तित्व का जीवन परिवय वन्य तो क्या स्वयं पुष्टि सम्प्रदाय में भी व्यक्तित्व रूप से नहीं लिखा गया । गो० हरिराय जी के जीवन के दिव्य प्रान्ति धीनाथ जी की "प्राकट्य वाक्ता" वादि ग्रन्थों में यह तथ्य मिल जाते हैं। मध्ययुग के संप्रदायिक इतिहास मर्मज्ञ विठ्ठलनाथ भट्ट जी गो० हरिराय जी के अन्त सेक थे और जिन्होंने ही हरिराय जी के प्रमुख है वाचार्य वल्लभ से लेकर धीनाथ जी के महाद में पधारने तक का इतिहास सुना था और जिसे संप्रदाय कल्पद्रुम के नाम से लिखा भी था- उन्होंने ही हरिराय जी का विस्तृत क्रमबद्ध जीवन चरित नहीं लिखा । ऐसी स्थिति में हरिराय जी के जीवन का प्रागाणिक इतिहास प्रस्तुत करना अवश्य ही एक जटिल समस्या रही है। गो० हरिराय

जी की जीवनी के ऐतिहासिक साक्ष्य सांप्रदायिक ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। यदि उन सूत्रों का उत्खनन किया जाय तो उन्हें चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :

#### १- वन्तसाक्ष्य के रूप में

- १- श्री हरिराय जी के कीर्तन
- २- शिक्षा पत्र
- ३- वार्ता साहित्य
- ४- सिद्धान्त और भाषणा वाले संस्कृत ग्रन्थ
- ५- विज्ञप्तिर्या
- ६- प्रीनाथ जीकी प्राकट्य वार्तादि

#### २- वार्त्त साक्ष्य के रूप में

- १- श्री गोकुलजी के वचनामृत
- २- वार्ता साहित्य
- ३- बिट्ठलनाथ मट्ट का संप्रदाय कल्पद्रुम

#### ३- वचनामृतादि एवं अनुसूतियाँ

- १- काका वल्लभ जी के वचनामृत
- २- श्री गिरिधर जी के वचनामृत

#### ४- अन्य सामग्री

- १- वात्स्यायिकार
- २- प्राचीन त्रिष खं
- ३- लेखादि

उपर्युक्त सामग्री में कीर्तन, शिष्टा पत्र एवं संस्कृत विद्वत् विज्ञप्तिवर्गों आदि की प्रामाणिकता तो सर्वग्राह्य है, क्योंकि परम्परा से साम्प्रदायिक पुस्तकालयों में एवं नाथगारा, कांकिरोली आदि में उनके हस्तलिखित आदि सुरक्षित हैं। वार्ता साहित्य एवं धीनाथ जी की प्राकट्य पत्रों एवं वचनामृतों की प्रामाणिकता पर विद्वानों के ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं जिनकी चर्चा यहाँ पर विष्टपिण्डण प्राप्त होगी।

“संप्रदाय कल्पद्रुम” बखरय एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता पर भिन्न करने का वाक्यक प्रतीत होता है।

विष्णु स्वामी संप्रदाय की परम्परा की स्वीकार न करने वाले दो चार विद्वानों ने संप्रदाय कल्पद्रुम को अवैधानिक माना है। उसके मूल में उनका कथन यह है कि गोकुल नाथ जी के पत्रों में प्रीति में जगन्गीर के स्थान पर जौगंधीन का नाम होना तथा कतिपय संवत्सों का बहृद होना इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में संदिग्ध उत्पन्न कर देता है। परन्तु उनके वादों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है :

१- साधारणतः कल्पद्रुम में वर्णित प्रसिद्ध अप्रसिद्ध क्षेत्रों क्षेत्रों विषयों की देखते हुए यह रचना साधारण व्यक्ति की है, ऐसा कोई नहीं करेगा।

२- कल्पद्रुम में पौराणिक चार संप्रदायों की उत्पत्ति आदि का उल्लेख, महाप्रभु जी की अपरिमित क्रमबद्ध जीवन घटनाएँ, गोकुल जी का सर्वत्र अप्राप्य विस्तृत क्रमबद्ध एवं महत्वपूर्ण चरित्र, सातों बालकों और उनके एवं १७२६ तक के संवत्सों का संवत्तादि परिचय, सातों बालकों और उनके ठाकुर

१- वार्ता साहित्य एक बृहद् कथन- डा० हरिहर नाथ टंडन  
पुष्टिमार्गीय वचनामृत- डा० लक्ष्मन्ता शर्मा, दिल्ली



जी वादि का अप्राप्य इतिहास, धीनाथ जी वादि का भवाद गमन पर्यन्त संवत् स्थान और राजाओं का क्रमबद्ध ऐतिहासिक वर्णन, श्री महाप्रभु जी एवं गौसाईं जी की सगर्भ विधियों का प्राकट्य प्रकार, महाप्रभु जी एवं गौसाईं जी के निविध धर्मा और कर्मा के नाम और कार्य, महाप्रभु जी से लेकर १७२६ तक के प्रसिद्ध बालकों की रचनाओं का अप्राप्य संग्रह उसी प्रकार हरिराय जी की कृतियों की विज्ञान सूची और उनके विज्ञान वंश के परिवर्ध के साथ माला प्रसंग वादि के उल्लेख से यह सिद्ध हो जाता है कि यह ग्रन्थ किसी महापुरुष के कथन के आधार पर है। बाज से सौ वर्ण तो क्या दो सौ वर्ण पूर्व तक इस प्रकार का इतिहास और भावना से समन्वित ग्रन्थ का लेख संप्रदायिक इतिहास में नहीं हुआ। श्री आदेश जी के भाव- भावना जैसे भावान्मक ग्रन्थ बाज तक किसी ने लिखे नहीं। इस आधार पर कल्पद्रुम की प्राचीनता स्वतः सिद्ध होती है।

३- कल्पद्रुम के लेख विट्ठलनाथ भट्ट की ऐतिहासिकता उनके वंशजी द्वारा प्रस्तुत वंश वृक्षा से बाज भी स्पष्ट और व्यवस्थित रूप में मिलती है। प्रथम पीढ़ी के नारायण कैयथा ( सं० १५३४ ) से लेकर बाज बीसवीं पीढ़ी तक उनका वंश वृक्षा उपलब्ध है। "संप्रदाय कल्पद्रुम" के कर्ता विट्ठलनाथ भट्ट इस वंश में पाँचवीं पीढ़ी में हुए। उनके पिता रघुनंदन थे और पुत्र बालकृष्ण। इस वंश वृक्षा से हरिराय जी और विट्ठलनाथ भट्ट की समसामयिकता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। और उनका गुरु शिष्य सम्बन्ध भी पुष्ट हो जाता है।

४- वि० सं० १७२६ तक के गौत्वामी बालकों के नाम उनके जन्म संवत्ता का उल्लेख एवं अन्य प्राचीन वंशावली वादि से प्राप्त हुआ साम्य वादि से केवल अप्राप्य विषयों से "कल्पद्रुम" की प्राचीनता और प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है और पुष्ट हो जाती है।

५- कल्पद्रुम में कतिपय उत्तरेष वर्तमान काल की क्रियापरक हैं। उससे तत्कालीन इतिहास के संकेत मिलते हैं। जैसे-

विनय भगति तव पति, श्री गौवर्धन प्राण ।

“जत्र” पदार्थ एख दिय, वैसी ज उधारण ॥

यहाँ “तव” शब्द का प्रयोग कृष्ण गढ़ के राजा यामसिंह के लिए और “जत्र” शब्द का प्रयोग कृष्ण गढ़ के लिए है। इसी प्रकार गौपीनाथ चतुर्थ वंश वर्णन में :

ठाकेश प्रभटे बहुर, रामकृष्ण गृह नंद ।

वाचिबन कृष्णा नवमी की, पदा कर्ण मुनि रंद ॥

गोकुल पयाविबल, पतन सु श्रीकुल नाम ।

शिवत धीमधुरिष की, श्री पल्लव सुखाम ॥

प्रथम पुत्र गिरिधर जी के प्रथम पुत्र श्री गौपीनाथ जी की चतुर्थ पीढ़ी के बाळकों के नामों का वर्णन करते अन्त में उपर्युक्त दोहे दिये । ये सब बाळक स० १७२६ तक गोकुल में रहकर मथुरानाथ जी की सेवा करते थे । यहाँ बतल, शिवत, क्रियाई वर्तमान काल की हैं। इसी प्रकार गोविन्द राय जी का वंश वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है :

विट्ठलेश शिवत सकल हाँडसु गोकुलनग्र ।

मुदित गये हरिराय गुरु, समनोर ही अग्र ॥

प्रस्तुत दोहे में द्वितीय घर के बाळकों के नामों के बाद “शिवत” क्रिया वर्तमान काल की है जिसमें स० १७२६ की घटना ध्वनित होती है। स० १७२७ में श्री हरिराय जी सिमनोर जा चुके थे । ग्रन्थकार ने अंत दोहे में स्वीकार किया है कि श्री हरिराय जी उनके गुरु थे ।

श्री रघुनाथ जी का वंश वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है :

गोकुलेन्य शैवत सकल उवत रीति सुखदान ।

उदित कामवन के विषे भूपति पान सुखान ॥

इस वीह में श्री "शैवत" क्रिया वर्तमान काल की है। सं० १७२६ में श्री गोकुल चन्द्रमा जी "कामवन" में विराजते थे यह बात इस वीह से स्पष्ट है।

श्री गोकुल चन्द्रमा जी का इतिहास वर्णन तक अप्राप्य रहा। बाद में विदित हुआ कि नारणदास ब्रह्मचारी "महावन" वाले के पास थे। गौसाहं जी के यहाँ पधारे। वहाँ से श्री रघुनाथ जी के समय में जतीपुरा पधारे। उसके बाद बड़े देवकीनंदन जी श्री चन्द्रमाजी को कामवन से लाये। कामवन में थोड़े थोड़े समय के लिए वहाँ ही स्वल्प विराये हैं। जहाँ ठिकाना बाद श्री "गुरुद्वन्द्व" के पास सात स्वल्प की एवली में है।

"कल्पद्रुम" में स्वर्ण की स्वामिनी की भी वर्णन है जो रघुनाथ जी ने गोकुल चन्द्रमाजी के लिए सिद्ध करायी थी। कल्पद्रुम में इसका उल्लेख इस प्रकार है :

स्वर्ण स्वामिनी सिद्ध करी, तात वचन तबि मान ।

शुभ समीप पधराय फिर, किय रघुनाथ प्रयान ॥

"कल्पद्रुम" में स्वर्ण स्वामिनी की पूरी वर्णन है और अन्य भी बहुत से रहस्यों का "कल्पद्रुम" में उल्लेख करते उसकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इसी प्रकार बालकृष्ण जी के सं० १७२७ में मुरली पधारने की वर्णन "कल्पद्रुम" में मिलती है। उसी "कल्पद्रुम" का रचनाकाल सं० १७२६ सिद्ध हो जाता है।

संप्रदाय के वाचार्थ पुरुषोत्तम जी सेत्वाले का प्राकट्य  
संप्रदाय में स० १७२४ में मनाया जाता था , परन्तु उनकी जन्म दृष्टि प्राप्त  
होने पर उनका जन्म स० १७२४ माना जाने लगा है। उस जन्म संवत् की पुष्टि  
भी कल्पद्रुम की निर्माकित दीर्घ है होती है :

पुरुषोत्तम प्रकटे बहुर, पित्तविर गृह ईव ।

भावन सुदि ग्यास सुधि वेद ब्रह्म मुनी चैव ॥

उसके वसतिस्थित महाप्रभु जी के अप्राप्य वीर बहुत ग्रन्थों  
के नाम भी कल्पद्रुम में मिलते हैं जिनकी पुष्टि अब बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय  
की सूची से होती है। "कल्पद्रुम" में महाप्रभु जी के "वेद वत्सल" नाम के  
एक ग्रन्थ की कर्ता है। उसकी पुष्टि बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय की सूची  
से तो होती है परन्तु भारत में प्राप्त किसी भी सूत्र से महाप्रभु जी के उस  
ग्रन्थ का पता नहीं चलता । उसे कल्पद्रुम की प्राचीनता और प्रामाणिकता  
की पुष्टि होती है। उसके वसतिस्थित गोसाँई जी के प्रथम पुत्र गिरधर जी की  
एक बहुत रचना "श्लोकत्रय स्तुति" कही जाती है जिसकी कर्ता कल्पद्रुम में तो  
है परन्तु और कहीं न तो सुनने में जाती है न देखने में । उन तीन श्लोकों की  
गौरीक वासी ठाकुरदास परीत जी ने गोपीनाथ जी के कीर्तनियाँ, बसुनादास  
जरीवाल के पास देखे थे<sup>१</sup> । कल्पद्रुम में उस बात की कर्ता उस प्रकार लार्ह है :

" श्री गिरधर गिरिधर की श्लोक त्रय स्तुति कीन "

महाप्रभु जी के प्रथम पुत्र श्री गोपीनाथ जी के रचित चार ग्रन्थों का उल्लेख कल्पद्रुम  
में मिलता है :

बड़ेसु गोपीनाथ कृत, चार ग्रन्थ नृप मान ।

प्रथमसु साधनवीफिका, सेवा विधि सुखदान ॥

सैला नाम निरुपण , ६ , गौपीनाथ सुखान ।

वल्लभाष्टक ग्रन्थ किय, गौपीनाथ सुखान ॥ १

गौपीनाथ जी के कुछ चार ग्रन्थों में केवल 'साधन दीपिका' ही उपलब्ध है। अन्य ग्रन्थों के सब नाम तक प्राप्त नहीं। हरिराय जी ने श्रियासठ भगवदपराधी की चर्चा की है। साधारण पाठक इस की साधारणतः स्वीकार कर लेता है परन्तु संप्रदाय कल्पद्रुम में इसका स्पष्ट उल्लेख होता है :

“अपराधन षट् शतिका, चिन्तन सुगम प्रकार ।” १

इस प्रकार जिनके ज्ञाताज्ञात उल्लेख एवं ग्रन्थ आदि का परिचय कल्पद्रुम में मिलता है विसरी उसकी प्राचीनता और विश्वस्तता सिद्ध होती है।

“कल्पद्रुम” में कुछ भविष्य के संकेत भी मिलते हैं। इसका कारण हरिराय जी की कैलाश की दृष्टि थी। वे इस ग्रन्थ के मूल कवता थे और बिट्ठलनाथ भट्ट लेखक। उच्च कोटि के किसी भक्त के लिए यह सर्वम्व नहीं कि वह भविष्यदर्शी न हो। कल्पद्रुम में जो कुछ भविष्यात्मक संकेत हैं, उनका प्रतिकूलन गत सब सब पूर्ण है होता हुआ है। कल्पद्रुम हरिराय जी के भक्ति चरित के ज्ञान के लिए सबसे बड़ी आधार शिला है। श्री हरिराय जी के कृतित्व और उनकी उच्च कोटि की भक्ति भावना और सेवा भावना के

१- कल्पद्रुम पृ० सं० १४०

२- हरिराय बाहु-सुखावली भाग २ पृष्ठ ३४८ ( नदियाव सं० )

३- संप्रदाय कल्पद्रुम पृ० सं० ६४४

४- भवण सुन्धी हरिराय मुख, करन लिखी नृपमान ।

उदित संप्रदाय कल्पद्रुम, भक्त कृति ईद सुखान ॥

( सं० ५० पृ० ११८ )

लिये अन्यान्य ग्रोत उपलब्ध है। परन्तु जीवनी के लिये कल्पद्रुम सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

जीवनी प्रस्तुत करने की वास्तुनिक वैज्ञानिक पद्धति में समय, स्थान, घटना एवं व्यक्तियों का परिचय प्रस्तुत करना होता है परन्तु नितान्त भारतीय पद्धति में वात्सा जीर परंपरागत मान्यताओं की राय लेकर चलता होता है। मरुतों का जीवन अध्यात्म प्रधान होता है इसलिए उनकी जीवनी देने में अधिक सावधानी अपेक्षित है।

उसी दृष्टि से श्री हरिराय जी के जीवन चरित को प्रस्तुत करने के लिये अन्तस्साध्य एवं बाह्य साध्य का सावधानी से उपयोग किया गया है।

### पूर्वपुरुषाण :

हरिराय जी साधारण ब्रह्म की पक्षिणी पीढ़ी में प्रकट हुए थे। वे महाप्रभु के द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलदास जी के प्रपौत्र थे। और गोसाईं जी के द्वितीय पुत्र गोविन्दराय जी के पौत्र थे। उनके पिता का नाम कल्याणराय जी था, कल्याणराय जी के गोविन्दराय जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके तीन भाई और थे जिनके नाम गोबुलीचंद जी, कृष्णराय जी एवं लक्ष्मी नारायण जी थे। कल्याणराय जी के तीन पुत्र संवत् सप्रदाय में उपलब्ध हैं। पहला सं० १६१८, सं० १६२५ सं० १६३३ परन्तु नाथारे में एक कहानी प्रचलित है जब कल्याणराय जी का जन्म हुआ तो भीनाथ जी ने गोविन्द के घर कल्याण को बुलाकर ज्येष्ठ पौत्र के जन्मीचंद की बधाई मंगी थी और गोसाईं जी ने

---

१- कल्याणराय जी का मूल नाम 'विट्ठलेश' या 'विट्ठलदास' था।

पितामह के नाम पर पौत्र का नाम रखने की वात्सिणायक परंपरा आज भी देखी में जाती है। - तस्मिन्

श्रीनाथ जी की इस वधाई में नृपुर बैठ किये थे । ये नृपुर आज भी नाथदारी में विष्णुमान हैं और उन पर गोविन्द राय जी का नाम भी सुना है। कल्याण राय जी का जन्म इस वधाई पर, मार्गशीर्ष वदी सप्तमी सर्वविदित है। दूसरा जन्म संवत् प्राचीन वंशावली में दिया हुआ है। तीसरा जन्म संवत् संप्रदाय कल्पसूत्र में इस प्रकार बताया है :

प्रकटै बहुर कल्याण प्रभु श्री गोविन्द सुम कन्द ।

मुगधिर वद सानम नृपति काल काल रस चन्द ॥ १

परन्तु उपर तीनो पंक्तों में फरला संवत् ही अधिक प्रामाणिक है क्योंकि इनके जन्म पर श्रीतत्त्वामी ने एक वधाई का पद गाया था जिसमें कल्याणाराय जी का नाम बताया है। श्रीतत्त्वामी गोरार जी के वंशजों में थे एक शिष्य थे । उस समय तक श्रीतत्त्वामी जीदित थे क्योंकि बागै चलकर स्वतन्त्र रूप से किसी वधाई पद में गोरार पी के विट्ठलनाथ जी के किसी पौत्र का नाम नहीं बताया है। यही ज्येष्ठ पौत्र थे । गोरार पी के अन्य श्वशुर लघु गोपाल ने भी अपने एक पद में गोरार जी के ज्येष्ठ पौत्र कल्याण राय जी की चर्चा की है।

“ श्री गोकुलनाथ वनाथ नाथ सुनाथ नयल खुनाथ साथ ,  
कनस्याम बभिराम धाम श्री कल्याणराय परिपूरन काम ॥

लघु गोपाल ने अपने पद में शाली पालकी का क्रमशः नाम देकर प्रथम पौत्र कल्याणराय जी का नाम दिया है। शाली खिड होता है कि कल्याणराय की है, गोरार जी के साथ ही पौत्र थे । गिरधर जी के तीनों पुत्रों के नाम सर्वत्र बाद में ही चर्चित हैं। उसका तात्पर्य यह हुआ कि कल्याणराय

१- सं० कल्पसूत्र पृ० सं० ७७ ( सं० २५३३ )

२- कति में प्रकट भए कल्याण ।

सकत वर्मगत दूर किए हैं, नासक निमिर उदय मयी धान ॥

मये मनीष सब भवतन के, पायी पद निरवान ॥

श्रीतत्त्वामी गिरिधर भी विट्ठल, वारं तनमन प्रान ॥

जी का ज्येष्ठ पौनस्य सिद्ध होता है। वे मुरलीधर जी कादि से बड़े थे। प्राचीन वंशावली में भी मुरलीधर जी कादि की अवस्थाएँ छोटी ही सिद्ध होती हैं। कल्याणराय जी का द्वितीय विवाह सं० १६४४ में हुआ था। उस समय की दृष्टि में रत्ने से भी उनका जन्म सं० १६१८ निश्चित होता है।

जी हरिराय जी का जन्म वि० सं० १६४७ में गुर्जर भाद्रपद ( ब्रज कास्मिन कु० ) ५ की गोकुल में हुआ था। उनके जन्म के विषय में संप्रदाय में एक कात्यायिका प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि कल्याणराय जी की प्रथम पत्नी के देहावसान पर उन्होंने विवाह न करने का संकल्प किया था। यह बात उनके पितृष्व गौलामो गोकुलनाथ जी ( गुजार्ह जी के चतुर्थ पुत्र ) को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कल्याणराय जी से विवाह करने का वाग्रथ किया और यह भी कहा कि उनके पुत्र्य में भी पिटूठलेश के संयोग उस की वसिष्ठ स्थिति है। वह ज्येष्ठ नहीं पानी बाधिर। गोकुलनाथ जी की इस बाधा को मान्य करते उन्होंने विवाह करना खिन्न होकर लिया और एक उपासीय भट्ट की कन्या से विवाह कर लिया उससे पूर्व गोकुलनाथ जी ने आशीर्वाद दिया था कि इस कन्या की बहुत प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा। इस कन्या का नाम भी जस्ता बहू पड़े था। विवाह के उपरान्त सं० १६४७ में जी हरिराय जी का जन्म हुआ। उनके जन्म के दो वर्ष के उपरान्त सं० १६४९ में भी गोपेश्वर जी का जन्म हुआ। सं० १६५१ में भी पिटूठलेश का जन्म हुआ। ये दीर्घायु नहीं हुए। इसी कारण संप्रदाय में जी हरिराय जी से भी गोपेश्वर जी का ही नाम प्रसिद्ध है। ज्यों की से संप्रदाय की उत्तीम लाभ हुआ। कल्पद्रुम में गुजार्ह जी के द्वितीय पुत्र गोविन्दराय जी का वंश वर्णन इस प्रकार दिया गया है :-

“ गोविन्द तुल कल्याण के, फूटे फिर हरिराय ।

भाद्रपद कृष्ण षष्ठि की मुनि कल कला बधाय ॥

१- कल्पद्रुमकार ने फैसली के स्थान पर इठ लिखा है। संभव है उस दिन फैसली के उपरान्त इठ बागई हो। संप्रदाय में फैसली ही प्रचलित है। देती- उत्तव जलन की टिप्पणी- नाफ्तारे से प्रकाशित।



फ्रंटे बहुर कल्याण गृह गोपेश्वर सुखद ।  
 ज्येष्ठ शुक्ला वास सुमग मभित वैद तस वैद ॥  
 फ्रंटे बहुर कल्याण गृह, विट्ठलेश वरविन्द ।  
 सुख वणाढी तीर्थ कौं लीन प्राण तस वैद ॥

यह तो प्रसिद्ध है कि हरिराय जी वाचार्य वल्लभादीश  
 के वंस में उत्पन्न हुए थे । वे वाचार्य वल्लभ के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी  
 के प्रपौत्र थे । वाचार्य वल्लभ जाति से उच्च कोटि के तैलंग ब्राह्मण थे । यद्यपि  
 हरिराय जी ने अपनी जाति का उत्खन लिया है और न अपनी गीत का किन्तु  
 वल्लभ के विषय में लिखा है :

'ध्यातव्यः स्मरणीयश्च तैलंग तिलकः प्रभुः ॥' १

नाम :

श्री कल्याणराय जी ने अपने प्रथम पुत्र का नाम हरिराय  
 जी रखा था । श्री गुजार्ज जी के प्रभावी ललित स्वल्प होने के कारण उनकी  
 सभी प्रभु चरण फुलारते थे । वास्तव में श्री हरिराय जी में प्रभु चरण की याद  
 कराते थे । श्री गोकुल नाथ जी की तो उन पर अपार ममता थी । वे श्री हरि  
 राय जी की वक्षस से ही अपनी पाल रखते थे । इस कारण संप्रदाय के वाचार्य  
 मर्यादा, सेवा भावना, व्यवहार नान्य, भगवान् एवं गुरु और वैष्णवों में  
 समान्य भाव एवं बड़ा प्रभुपुटिल होमयी थी । वे श्री हरिराय जी की  
 उपरावस्था विप्रयोग तस से परिपूर्ण थी । इसलिए उन्हें सब लोग महाप्रभु  
 भी कहते थे ।

१- श्रीमदाचार्य सत्तावतार साम्य निरूपणम् ॥ श्लोक १० ६६

उनमें महाप्रभु जी जैसे त्याग, विरह, भाव, दीनता एवं स्वानन्दवर्तित्व आदि गुण प्रस्फुटित हुए थे। संप्रदाय में हरिराय जी इसी कारण 'महाप्रभु' 'वीर' 'प्रभुवरण' 'दीनों' ही नामों से पुकारे जाते हैं।

दीक्षा :

श्री हरिराय जी के वय के बाठवें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत ईस्कार कर दिया गया। यह एक प्रकार की कुल रीति थी कि उनका यज्ञोपवीत ईस्कार बहुत अवस्था में ही किया गया था। इसी समय उनको संप्रदाय की दीक्षा ब्रह्म सम्बन्ध भी दिया गया। यह मंगल कार्य गोकुल में हुआ। इस समय श्री विठ्ठलनाथ जी के सात पुत्रों में से प्रथम पुत्र श्री गिरिधर जी, चतुर्थ पुत्र श्री गुरुके गोकुलेश जी, पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जी, षष्ठ पुत्र श्री यदुनाथ जी एवं सप्तम पुत्र श्री धनरयाम जी जीवित थे। उनको ब्रह्म सम्बन्ध भी गोकुल नाथ जी ने दिया। उसका एक मान कारण यही था कि उनके यज्ञोपवीत काल तक गौसार्इ जी के पुत्रीय पुत्र श्री बालकृष्ण जी एवं गौविन्द जी जीवित नहीं थे। कुल रीति के अनुसार कुटुम्ब का वयोवृद्ध ही ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा दे सकता है। अतः गिरिधर जी के विद्यमान होते हुए भी श्री हरिराय जी को श्री गोकुलेश ने दीक्षा दी इसका एक मान कारण यही था कि उनको गिरिधर जी का ऐसा ही वादेश था। एक धारणा यह भी थी कि श्री गिरिधर जी ने अपने प्रारम्भिक काल में केवल कोई चालीस व्यक्तियों को ही ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा दी थी। बाद में एक दो वैष्णवों को जब यह दीक्षा दी तो सीला रस में डूब जाने के कारण उनका देह छूट गया। तब से उन्होंने निश्चय किया कि वे किसी को ब्रह्म सम्बन्ध नहीं देंगे। उनके इस निश्चय के कारण ही श्री हरिराय जी को गोकुल नाथ जी ने ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा दी। इस प्रकार

१- वष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयति

उनके गायत्री मंत्रोपदेष्टा तथा ब्रह्म सम्बन्ध देने वाले गौस्वामी गोकुल नाथ जी थे। इस तथ्य की पुष्टि इस प्रकार भी हो जाती है कि हरिराय जी ने गौस्वामी गोकुल नाथ जी के एक ही बाठ नामों के प्रारम्भ में यह लिखकर प्रणाम किया है कि :

“ श्री गोकुलेशमत्स्यामिन् नामानिनवनुष्टये । ” १

प्रस्तुत पद में “ स्वामी ” शब्द गुरु वाची है। श्री हरिराय जी ने गुरु को सदैव स्वामी कहकर पुकारते थे। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि अपने एक छोटे से ग्रन्थ “ स्वमार्गपर्याया-निरूपण ” में वे लिखते हैं :

“ यथाकथं चत्स्यस्वामि सन्तोषीन्पादनी धितम् ॥ ” २

यहाँ भी स्वामी शब्द गोकुल नाथ जी के लिए है और वे ज्ञाने गुल्मरायण थे कि गुरु को अपना सर्वस्व समझते थे। अपने ग्रन्थों में उनकी इस भावना का मही भाँति पता चल जाता है।

विधाध्ययन :

श्री हरिराय जी का विधाध्ययन आचार्य बल्लभ स्व गौस्वामी विट्ठलनाथ जी के समान समन्कार पूर्ण था। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने ६४ विषयों में आचार्य बल्लभ ने बार मास में स्व गुहाई विट्ठल नाथ जी ने बहुत थोड़े समय में ही सम्पूर्ण तात्त्विक का अध्ययन कर लिया था उसी भाँति श्री हरिराय जी ने भी अत्यन्त अल्प काल में अपने पिता

१- हरिराय बाहुमुक्तावली पृ० ८० २४० ( नहियाद सं०)

२- .. पृ० सं० १७६ ( .. )

श्री कल्याणराय जी से समग्र शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। फिर प्रकार की महाप्रभु जी एवं गौ० विठ्ठलनाथ जी श्रीमद्भागवत की कृपा उष्ट मानते थे, उसी प्रकार श्री हरिराय जी भी श्रीमद्भागवत और सर्वोपम स्तौत की कृपा उष्ट मानते थे। अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं उन की उष्ट ग्रंथों द्वारा बापे ब्रह्माद का ज्ञानार्जन किया था। मुष्टि ईश्वराय की भावना, सेवा, प्रत्यक्ष एवं ऐतिहासिक ज्ञान बापे श्री गोकुल नाथ जी के सतत वाचस्पत्य में प्राप्त किया था। श्री हरिराय जी की बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र थी। अपनी वित्तीय उपरान्त धन से बापे को नवीन ग्रंथों की रचना करते ईश्वराय की भावना एवं ब्रह्माद कर्म की अत्यन्त उत्तम एवं उत्तम पद्धति में प्रवृत्त किया।

शिव से श्री गोकुल नाथ जी के ईश्वर में रहने के कारण उन्होंने श्री वाचाय वल्लभ, गौ० विठ्ठल नाथ जी की मही भाँति समझाया था। उनके ग्रंथों का अनुशीलन भी किया था। बाप ही २४ वैष्णव एवं २५२ वैष्णवों की भावना पद्धति की वृद्धिमान करते हुए भगवान् श्रीनाथ जी बापे स्वस्वों का अनुभव पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। यही कारण था कि बापेपिन उनका मानस भगवन्मय था। पिता, पितामह, प्रपितामह के ऐश्वर्य के प्रति ज्योति बापे माय एवं पमय का भी यही कारण था। यह बात उनकी धृतिवर्ध एवं रचनाओं से भी पुष्ट हो जाती है।

### गृहस्थाश्रम :

यह बात सर्वविदित है कि श्री हरिराय जी ने वाचाय वल्लभ की भाँति २४ वीं वर्ण में विवाह किया था। इसकी पुष्टि उनके पुत्र की जन्म संवत् से होती है। उनके प्रथम पुत्र श्री गोविन्द जी का जन्म सं० १६८५ है। उस समय हरिराय जी की अवस्था बृद्धावस्था वर्ण की थी।

बाफ़ी पत्नी का नाम भी सुन्दरवती था । यह महिला भी कलात्मिक प्रतिभा एवं भाव संपन्न थी । उन्होंने भी बड़े वायु पायी थी । वे तदैव अपने पति की भाँति भगवान् की मानसी लीला में मग्न रहती थी । जहाँ एक गुजराती घौल बहुत प्रसिद्ध है जो उस प्रकार प्रारम्भ होता है :

“ नन्दन सति सुन्दर पाली चिन्तन तेनु करियेजी ”

प्रस्तुत घौल में उन्होंने प्रिया और प्रियतम की निर्द्वेष लीला का पढ़ा भावमय वर्णन किया है। उस प्रकार की रचनाओं के मूल में निश्चय ही हरिराय जी की कृपिणी कृपा का आभास मिल जाता है। पति-पत्नी के लीला भावना में निमग्न रहने की और भी अन्य प्रमाण मिलते हैं। पत्नी का भगवान् के प्रति वाली भाव था । उनकी पत्नी के ब्रह्माणा में भी अन्य एक मिलते हैं । भी हरिराय जी को चार पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई । गोविन्द जी , चिट्ठल राय जी, छोटा जी और भी गौरा जी । उनके पुत्र संवत्सों का उत्कृष्ट कल्परूप में मिल जाता है। भी हरिराय जी का गृहस्थ जीवन अन्यन्त शान्त, भगवत्-परायण एवं आनन्दमय था । सौ पुत्र, धनु और अन्य कृष्णों सभी बाफ़ी के भावना में उदात्त थे । कृष्ण और जाति में उनका बड़ा प्रभाव था । हरिराय जी की भगवत् परायणता और विरह भावना उनकी बड़ी हुई थी कि उस भाव स्थिति की न समझनेवालों के लिए वह एक विनोद मात्र ही जाता था परन्तु मायु हरिराय जी सदैव मानसिक विकलता का अनुभव करने रहते थे । उसे परिहास की भी वे दीनतापूर्वक सहन कर लेते थे । उनका धैर्य अद्भुत था उन्होंने आजीवन किसी पर श्रेय नहीं किया यही कारण था कि विरोधियों को सदैव पराजिताप ही साथ लगता था ।

---

१- सुन्दरवती चरण ललाटे लीला मणि लीला थी ।।

### गुरु-भक्ति :

श्री हरिराय जी की गुरु भक्ति तृतीय थी । उन के गुरु श्री गोकुल नाथ जी जब तक जीवित रहे तब तक उनकी ज़मीम भक्ति-भावना उनमें केन्द्रित थी । वे अपने गुरु के दर्शन निम्न प्रति करते थे और नियमपूर्वक उनके चरण स्पर्श करके ही भोजन करते थे । और जब तक उनके गुरुदेव भोजन नहीं कर लेते थे तब तक वे भोजन ग्रहण नहीं कर लेते थे । प्रातः पल ५ की ढाकती की वे सर्वप्रथम अपने गुरु की पविता चरण स्पर्श करते थे । और बैठ करने के पश्चात् भोजन करते थे । हरिराय जी का शिष्टान्त था कि पराशर जी गौतम विठ्ठलनाथ जी के को भी शिष्य स्वल्प और अपने गुरुदेव का स्थान की भाँति तब तक की दूरी पर भी ही उनके दर्शन वस्त्र चरण स्पर्श किये बिना भोजन न करना । इस नियम को उन्होंने स्वयं भी वाच्य निभाया । इसका परिणाम यह हुआ कि उनके शिष्य पीछाच शिष्य भी ऐसा ही करते थे । हरिराय जी के दृष्टिकोण के अनुसार पुष्टि भक्ति मार्ग में गुरु का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। वे उपनिषद् के इस कथन से पूर्णतः सहमत थे कि १

यस्यैवे पराभक्तितयादेवेत्या गुरो ।

तस्यै कथिताह्वया प्रशन्ते मत्तमनः ॥

गुरु गोविन्द में अनेक भक्ति उनका जीवन व्रत था और उसका परिणाम यह था कि उनमें जो प्रकाष्ठ पांडित्य, ज़मीम भगवद् भक्ति एवं अपार सौजन्य जी भी उनके स्वभाव में था वह अनन्य गुरु भक्ति का परिणाम था । उन्होंने गुरु जी को बनाया उसकी कसौटी भी वाच्य वस्त्र का ही कथन था । अपने 'सर्व निर्णय' प्रकरण में बलभाचार्य ने गुरु का

संज्ञा बताते हुए लिखा है : “ कृष्ण देवा परं वीक्ष्य ” अर्थात् गुरु के लिए तीन ही गुण आवश्यक हैं। १- कृष्ण भक्ति २- श्रीमद्भागवत का पूर्ण ज्ञान ( पूर्ण परिचित्य ) ३- विनयशीलता । ऐसे संज्ञा बहुत दुर्लभ गुणों में पाये जाते हैं। हरिराय जी की स्वर्ण की गुरु परंपरा पर बड़े गौरव की अनुभूति होती थी और इसलिए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :

श्रीमदाचार्यमार्गीय गुणानां संज्ञागतः”

उन्होंने बड़े गौरव के साथ कहा है कि हमारा मूल निष्कर्ष है जिसकी श्रीकृष्ण ने बताया है। इस प्रकार अपने वंश का गौरव हरिराय जी की प्रतिज्ञा रहता था। उन्होंने अपने विज्ञापितों में भगवान् से अपने वंश की रक्षा की प्रार्थना की है। गुरु की प्रसन्न रहता ही उनके जीवन का उद्देश्य था। अपने गुरु की उन्होंने “ स्वामी ” कहकर पुकार है यह कहा जा चुका है। “ स्वामी ” का संतोषीत्पादन ही परम धित है क्योंकि उसके संतुष्ट होने पर समस्त काम-नाश फैलती ही जाती है। संतोष में गुरु भक्ति का जो वादों व्यवहार में और सिद्धान्त में हरिराय जी ने प्रस्तुत किया वह अन्या दुर्लभ है। यह तथ्य संज्ञा में स्वीकृत है कि महाप्रभु जी के संपूर्ण वृत्तित्व का यदि ज्ञान संपादन करना हो तो हरिराय जी के वृत्तित्व का अध्ययन करना चाहिए। उसके मूल में हरिराय जी की गुरु निष्ठा ही थी कि उन्होंने महाप्रभु की भली भाँति समझा था और उनका मानस तादात्म्य प्राप्त किया था। अपने गुरुदेव श्री गोकुलेश जी के स्वर्ण पंजारे पर उन्होंने अपनी संपूर्ण भक्ति भावना वाचार्थ वल्लभ के

१- अस्मत्पुत्रं निष्कर्षक्रीकृष्णानाम्यसाम्कृतं । ”

२- अस्मानिजाचार्यमुपश्रुत्वा विमुपेक्षे ॥ ”

( श्रीकृष्णवरण विज्ञप्ति )

३- यथाकथं वात्सवस्वामिर्संतोषोत्पादनं हितम् ।

तस्मिन्संतुष्टफलसर्वं सिद्धमेव न संशयः ॥ विज्ञप्ति ॥

चरणों में और स्वरण में केन्द्रित कर दी थी।

इस तथ्य का संकेत उनके "सिद्धा पत्नी" से मिल जाता है। सिद्धापत्नी में कहीं तो वे स्वाचार्य शब्द का प्रयोग करते हैं कहीं निजाचार्य शब्द का।

प्रवृत्ति :

श्री हरिराय जी की तीव्र वाढ्यात्मिक प्रवृत्ति थी। वे यह कभी नहीं विस्मृत कर पाते थे कि वे मयाप्रभु जी के पवित्र फुल में उदयन्न हुए। अतः फुल की मर्यादा-पालन की यह कठोरता भी गौकुलनाथ जी के समय तक बाते बाते सिपिल पड़ गयी थी। ब्रह्म सम्बन्ध से करी भी दीक्षित व्यक्तित्व मान मान और स्पर्शस्पर्श का विचार न रखते थे। अतः वैष्णवों की मर्यादा में बाध रहना चाहे उस बात पर गौकुल नाथ जी स्व हरिराय जी ने अन्य-धिक बल दिया। अतः उनके समय से लेकर मर्यादा का प्रवृत्ति बन गयी। श्री वैष्णव उस मर्यादा की पूर्ण स्वीकृति पाते थे वे मर्यादी वैष्णव कहलाये अर्थात् मर्यादा शब्द की विशेष रूप से ध्याना किया गया और वैष्णवों में स्पर्शस्पर्श और भगवद् स्वल्प की सेवा बादि बाचार्यों का विचार रखने वाले वैष्णवों के लिए उन्होंने और उत्तनापूरत करे। उनके इन वचनामूर्तों में वात्तार धर्म और विचार धर्म की व्याख्या मिलती है। वात्तार धर्म से तात्पर्य वात्तार धर्म से है। इन वात्तार धर्मों में मर्यादी वैष्णव की दया, सत्य, सम-दृष्टि, बहिष्ता, हरि-गुरु से अनेक, वैष्णव निन्दा से अपना परहाज गमन से बचना तथा सित की बहिर्मुख न रहना आदि। उनका विधि निषेध मर्यादा के अन्तर्गत है और मर्यादी वैष्णव से लिए पालनीय है। इस प्रकार की मर्यादित प्रवृत्ति बल्लभ वश



में भी हरिराय जी एक स्थिर रही। बागे चलकर भी पुरुषोत्तम जी के समय से जब उभयतः पर्यायार्थों में शिथिलता आने लगी तो उन्होंने उनके प्रायश्चित्तों का प्राविधान किया और वेद विद्यादि की प्रपञ्चिता के लिए प्रायश्चित्त ग्रंथ लिखे, परन्तु हरिराय जी के जीवन में पर्याय का बहुत बड़ा महत्व था।

### सांप्रदायिक ज्ञान :

हरिराय जी नित्य प्रति भी गौकुलिक से लोकान्तिक वार्ता सुनते थे। उस वार्ता प्रवण से उन्हें पुष्टिमार्ग के रहस्यों का गंभीर ज्ञान हो गया था। चौरासी बीर जो भी बापन बैष्णवों की वार्ता पर तीन जन्मों की भावनावाला टिप्पण देने के मूल में थे गुरु मुक्त से रहस्य वार्ता सुनना था। रहस्य वार्ताओं को सुनकर हरिराय जी सदैव बड़ी सोचा करते थे कि पुष्टि मार्ग की विशेष स्थिति किस प्रकार पने। तदर्थ वे कायक, वाक्कि, मानसिक रूप से उनके प्रकार के प्रयत्न करते। निष्काम और निस्साधनता की भावना से वे सब काम भगवान् के उत्तीर्ण के लिए करते थे। वे लोक और वेद से परे वास्तव परीकार वादि भी संपादन करते रहते थे। उन्होंने अपने जीवन में विराज पश्यन किया था और उनके द्वारा वैष्णवों के भाव की पुष्टि करते थे। उन्होंने उनके ग्रन्थों की रचना भी उसी दृष्टि से की थी। उनकी मान्यता थी कि भाव अज्ञान कुछ होगा उन्ने ही मार्ग की स्थिति विशेष होगी क्योंकि पुष्टि मार्ग में सब कुछ भावात्मक है। भावना का स्वायत्तत्व ही पुष्टि मार्ग का स्वायत्तत्व है। अतः हरिराय जी के ग्रन्थों में परमेश्वरत्व की प्रधानता है। वह विद्वान्त केवल उनके संस्कृत ग्रन्थों पर ही लागू नहीं है,

१- त्वाचार्य सात्कृत्यमार्गस्तन्प्राप्यः पुरुषोत्तमः ।

सर्वमप्युक्ता भावाद्य मितियन्तव्यसुभैः ॥

- मार्गस्वरूप निर्णय )

वफ़ि़ उनकी प्रपञ्चाणा खनाबी में भी जो प्रवृत्ति का वर्तन होता है।

### मभित्त भावना

पुष्टिमार्ग कठोर साक्षारीपासक संप्रदाय है। उस एक संप्रदाय में मगवान् के विग्रह की मूर्ति नहीं बना जाता वफ़ि़ "स्वल्प" नाम दिया जाता है। जिस प्रकार भी संप्रदाय में मगवान् की मूर्ति की "वर्णितार" नाम दिया जाता है, उस प्रकार पुष्टिमार्ग में उपासक अपने शैष्य की "निधि" के नाम से पुकारता है, क्योंकि वह उसके जीवन की निधि है और उसका सर्वस्व है। हरिराय जी के शैष्य स्वल्प विट्ठलनाथ जी थे। गौरीहं विट्ठल नाथ जी ने पुष्टिमार्गीय इन निधियों का ध्वारा किया तो अपने कित्तीय पुत्र गौविन्द राय जी के शैष्य स्वल्प भी विट्ठलनाथ जी को सौंपा। ये विट्ठलनाथ जी वाचार्थ महाप्रभु की सं० १५७२ में पीण कृष्णा नवमी दिन पर प्राप्त हुए थे। उसी दिन गौरीहं विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ तब वाचार्थ ने प्रसन्न होकर कहा शैष्य और स्वामी दोनों एक ही दिन प्यारे। विट्ठलनाथ जी ने इसी स्वल्प को गौविन्दराय जी को सौंपा था। जहाँ तब भी हरिराय जी बार बार नामकारे पर वाचार्थ जीनाथ जी को शैष्य में भाग लेते थे। सेवा के कारण उनका चित्त मगवान् में सदैव लीन रहता था। उनके भावावेश की कभी गायार संप्रदाय में प्रवृत्ति है। उदाहरण के लिए एक बार पुरुषोत्तम जी ने ऊष्ण काल में जीनाथ जी की मौती को माया प्रजा की उल्ले मगवान् को दृष्ट हुआ और वे हरिराय जी को अनुभव हुआ तब उन्होंने जीनाथ जी के निज मंदिर में जाकर उसको उत्तप्रा की। हरिराय जी ने अपने उरार मन बुद्धि कि तर्ककार सबकी मगवान् को सेवा में लगा दिया था। सेवा और मभित्त के कारणों ने उन्होंने कभी प्रकरण ग्रन्थों की रचना की थी। जिसमें उनकी मभित्त की अनुभूति और भावना की गहराई का पता चलता है। मगवान् का स्वप्न यथा है १ ए

का क्या स्वल्प है, संयोग एवं वीर विप्रयोग एवं का क्या स्वल्प है, भक्ति के कितने प्रकार हैं ? सुप्ति कितने प्रकार की होती है ? सेवा की क्या विधि है ? लौकिक वीर वैदिक मार्ग वे पुष्टि का तात्पर्य किस प्रकार का है बाणि प्रश्नों पर उनके विचार निरन्तर मौलिक हैं। वे निम्न जीवन का एक साधन भी व्यर्थ नहीं होते थे । दया, त्याग, परीकार वापि देवी धर्म उच्च कोटि की भक्ति भावना के ही परिणाम है, यह उनके जीवन से मलो भौति जाना जा सकता है । भक्तिसागरिय जीव को न्यायान्तर धर्म का ही उपलब्ध होना चाहिए वीर अपने स्वार्थ के लिए भगवान् से भी कोई लौकिक वाचना नहीं करती चाहिए, यह उनका जट्ट शिष्टान्त था । भक्ति की जो सबसे पड़ी मरता है वह वनान्तरा है। कन्याश्रय का न्याय भक्ति भावना की पाली मर्त में। हरिराय जी के ल्पभाष में यह सधुय समा गया था । उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :

कन्याश्रयी नैव कार्यो नैवान्तरा ध्यतो प्रजेत ।

प्राप्यता नैव कृतापि कर्तव्या भगवान्यपि ॥ १

भक्ति में लड़ी लक्ष्मि बाधक अवस्थाएँ हैं। हरिराय जी ने अपनी भक्ति के बादो में वैष्णवों को सावधान दिया है कि वे अवस्थाएँ से बचे । अवस्थाएँ के लक्ष्मिभक्त भक्ति में दुष्टता व्यापक मरता है। मरता के ल्याय के लिए लक्ष्मि-निश भगवत्स्मरण की परम आवश्यकता है, क्योंकि उनका मत था भगवान् का प्रेम हर्षम नहीं है परन्तु उसमें मरता ही बाधक है। मरता के लक्ष्मिभक्त के लिए भगवान् में लक्ष्मिभक्त आवश्यक है। लक्ष्मिभक्त से ल्पसन दशा प्राप्त होती है। ल्पसन दशा प्राप्त होने पर फिर क्या रह जाता है ? भक्ति की लम्पकता

१- स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवा निरूपण ॥ श्लोक १८

२- बाधिका सेव सत्तर्न न दुर्लभतमा रतिः ।

कली विधियः सुधिया श्रीमदाचार्यभियः ॥

३- लक्ष्मिभक्त लक्ष्मिभक्तः समर्पण भविष्यति ।

वासवली ल्पसने जाने पर किमवशिष्यते ॥

वीर देवा से हरिराय जी को मानसी सिद्ध होगयी थी । बाबाजी वल्लभ ने लिखा है "मानसी सा परामता" अर्थात् मानसी परामर्शिन है, श्रेष्ठतम है। संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने छोटे भाई गोपेश्वर जी को एक बन्नाष्टमी पर भगवान् के रत्न जटित पालने में झुलने हुए दर्शन कराये थे । क्योंकि गोपेश्वर जी का वाग्रूप था कि वे भगवान् को रत्नजटित पालने में ही वेत्ता चाहते थे । हरिराय जी के मानसी भक्ति के लोक उपाहरण संप्रदाय में बाब भी प्रचलित है।

शुद्ध-वत्सलता :

हरिराय जी के स्वभाव में उच्च कोटि की शुद्ध वत्सलता थी । यह शुद्ध वत्सलता शीघ्रि ममता ऐसी कलान घृति के रूप में नहीं थी, अपितु भगवत्तु देवा उत्तम वीर भगवान् की परसुती बर्ण के निमित्त थी । शिष्या का की देवा संप्रदाय में सर्वविधित है कि एक बार हरिराय जी प्रभात के लिए गये थे और अपने एष्ट देवता पिटुठनाथ जी की सेवा अपने प्लुच गोपेश्वर बाबा को सौंप गये थे । गोपेश्वर जी उनकी पत्नी के साथ देवा प्नी सावधानी से करते थे । स्वयं छुनार बादि में व्यस्त रहते थे और उनकी पत्नी भगवान् के लिए नैवेद्य बादि तैयार करती थी । हरिराय जी को बचानक वापस हुआ कि उनकी पत्नी जपिक काल एक बीदित नहीं रह सकी । ततः भगवान् को सेवामें गुटि न हो अतिर गोपेश्वरी जी को संप्रदाय को शिष्याएँ का द्वारा देना शुरू कर दिया । उस प्रकार के शिष्या के का परदेत से वे प्रतिदिन भेजते थे । भगवन्दीया से बकराश न मिलने के कारण वे का नहीं प्क पाते थे, परन्तु उन्हें रीष्ट करी जाते थे, जब उनकी पत्नी का देरान्त हो गया और वे जब बहुत शोकग्रस्त हो गये तब हरिराय जी के एक सेवक हरिजीवनदास ने प्रसंगवश

पूछा था कि उन्हें भी हरिराय जी का कोई फा लादि मिलना है कि नहीं। उसी प्रश्न पर उन्हें उन फाँ की स्मृति ही आई और न देखते उन्होंने वे फा फड़े ही लपेटे उनकी टीका भी कर डाली।

### यात्रा :

जी हरिराय जी ने कभी बार भारत प्रमण किया था। उन यात्राओं का उद्देश्य राज्य संग्रह न होकर शैक्षणिक व्यक्तियों को सम्मान में लाना एवं भक्ति भावना में दीक्षित करना ही था। वे नितान्त वनाग्रह-शील थे और क्यालाम संगीत में ही विश्वास करते थे। "कैलमीर" राजा उनके शिष्य थे। जिसको उन्होंने दीक्षा देकर भगवन्सेवा करने का वादित दिया था। कैलमीर में उन्होंने श्रीमद्भगवत का पाठ किया था और वहाँ उनका बैठक भी था। उसी प्रकार कतिपय गुजरात के वैष्णवों के वाग्रह से वाप गुजरात भी गये और वहाँ भगवत का वारायण भी किया। हरिराय जी ने गुजरात मेवाड़ के अविरहित ब्रज की यात्रा भी की थी। "सिमनौर" में राणावाँ ने उनको जमीन भी दी थी। मेवाड़ के राणावाँ ने जब बासोटिया (बापुनिक किरौली) में एक विशाल जलालय बुदवाया उसमें भी हरिराय जी की प्रेरणा ही मूल कारण थी। वह वृक्ष जलालय "राय सागर" नाम से प्रसिद्ध है।

### सिमनौर निवास :

ब्रज में निवास करते हुए हरिराय जी को यो आभास हो गया था कि भविष्य में ब्रज प्रदेश में यानों का उपास होने वाला है। वनः

१- देखिए- श्री शिवा का भी भुक्ति

२- किरौली जिला - रायसागर प्रसिद्ध महाकाव्य तथा विभिन्न विवरण के आधार पर।

ये बार-बार वही भगवान् सेवाशा सेने थे परन्तु वाजा नहीं मिली। वन्त-  
 लोगत्वा सं० १७२६ के चौ मास में श्री गिरिराम जी में जब बीरगणेश का उत्सव  
 शुरू हुआ और श्री नाथ जी के गुप्त प्रयाण के उपरान्त जब ब्रज के मंदिरों की  
 छतें तोड़ी जाने लगी तब हरिराम जी ने बड़े करुण भाव से भगवान् से प्रार्थना  
 की कि उस वन तपी वरुण्य थे उत्पन्न हुए वायान्नि से हम लोग फल ही  
 ग्रस्त हैं। अब आप की कृपा दृष्टि तपी दृष्टि ऐसी ही चाहिए। उस प्रार्थना  
 पर उन्हें मोहित होने की भवभ्रमणा हो गयी। ये वही ठाकुर जी केर  
 गुप्त रूप से भेदात् में जागते। दीनाथ जी के प्यारने से ही श्री भिट्ठनाथ  
 जी तिमनौर में जागते। उस समय तक बाराकालीन भिक्षात् में प्यार हुई थे।  
 भिट्ठनाथ जी की तिमनौर प्यारने की तिथि सं० १७२७ कार्तिक मास से और  
 दीनाथ जी का भेदात् में प्यारने का समय सं० १७२८ ई। तिमनौर जाने के उप-  
 रान्त ही हरिराम जी जीवन पर्यन्त वहीं रहे।

अनुनयः

हरिराम जी स्वल्पतः फल सुन्दर व्यक्तित्व थे। और  
 उनको धीमत्समागत की पथा में भी बन्धुधिका रा प्यार ऐसी थी। उसको  
 सुन करके एक राजकुमारी का मन बड़ा तल मुग्ध हुआ कि वह उन पर बाउपल  
 होगयी। परन्तु हरिराम जी ने उस बालिके पिकार को दूर करके उसको  
 वासन्त भाव की पूर्ण वस्तुति करा दी। हरिराम जी मानव की काम  
 विषयक दुर्बलताओं से भरी भाँति परिणित थे। और शिरोमण्वा काचार्य  
 सं० श्री भगवद्भक्तों के लिए वे काम मायना की परम स्तु सम्कते थे। ततः

१- कानारण्य सज्जातन्त्रि भोगानिरेणतः ।

कृपादण्डनीनेत्रनिःकारा जयीकाः ॥

उन्होंने उच्च कोटि के वाच्य जीवन से मगवपीय ज्ञानों के लिए एक मरान् बापत उपस्थित किया। काम लपी श्रु के कोणों को दिखाने के लिए उन्होंने कामाख्य कीष निररणा नान्क एक प्रकरण ग्रन्थ भी रू ठाला। और उस प्रकार उन्होंने काम की मरत मार्ग का मरान् श्रु पनाया। हरिराय की निरन्तर भाव कता में रहते थे। उनके स्वभाव में दैन्य छूट छूट कर भरा हुआ था। वे हर जण भगवदामर में लुपे रहते थे। वरुणो अनुभवपूर्ण वाणियों से वीष्णवों पर ल पना करी थे। कता जाना है कि ल स कता है उन्ना वीष्णवों के कोता-एल के कारण लिताोर के लै लमाय की कता कष्ट हुआ और लै लमाय ने ल की हरिराय की है ल वीष्णवों की लिताय की ल हरिराय वं ल लयी उन वीष्णवों की उन्माय कता फैले है लि ल नये वीर ल्ने बैल्लर उन्होंने ललाल ही ल ल की लला कर ठाली :

एँ पारी ल पल्लभिल पर ।

मै लली करी लिनीन पील धरी लके ललल पर ।

नालरी ली ल वलिष मउलमज्य लिताय लिपर ॥

वे ली मै प्राण बीमजल, लान लि है बीपल्लमवर ॥

पुष्टिपारम प्राट करी ली प्राटे की लिदुल्ल लि वधुपर ॥

पार ललि वलीया लै , वल्लमोष की लरण ल वधुपर ॥

प्रल्ल का है लली हरिराय की की मागलिष ल का पा लल जाना है। लकी ल ल लल ली बैल्लर लली लै ललाल लुग ली लल लीर कता जाना है ल ल लै ल वीष्णव लीर ।

---

६- ली परोल ली ल ल है कि "कामाख्य कीष निररणा" की लला ली हरिराय की ने ल लल लली के लि ली की ली ।

### हरिराय जी के कतिबय बीपन रहस्य :

कहा जाता है कि श्री हरिराय जी की भगवत्प्राप्ति उनकी पत्नी हुए जी कि उन्हें पीनाथ जी की सेवा की चुटियों का पीप छीछा हो जाता था । वे स्वयं भी अपने निवास स्थान सिन्नौर में और न और हमारी रीति रहते थे जिसे उन्हें भगवान् की प्रेरणात्मक वाता वाता में विश्राम न हो । श्री जी राज जी के समय में राय मीन के उपरान्त जो तप्य पाठ नहीं पढ़ा तो उन्हें कानून उल्ला फना चल गया । और उन्होंने राज जी की सेवा में साधन होने का वादेन किया । यह प्रसंग सन् १९४० का है। क्योंकि उस समय बीनाथ जी की । कृष्ण जी की पुनर्जागरण की द्वारा धर्म का प्रकाश मोपे की है। जहाँ मुद्रिका टोडा प्यास "ने प्रत्यक्ष केर सेवा में स्थापना की की उला फता भी " सिन्नौर " में हरिराय जी की चल गया था ।"

### श्री रणजीत जी की स्थापना :

गुजरात की एक कुटुम्बा नामि है उसमें एक भक्त हुए थे श्री रणजीतराय जी की मुक्ति की भासा है उत्तोर वे पाये थे । उन्होंने बताया है कि बीनाथ जी के समय में रणजीत राय जी भासा में ही थे । उस कुटुम्बा भक्त के कारण ही नरों व्याघ्र से वे उत्तोर गये पाये थे । वानों के उपलव के कारण ने एक पुष्प स्थान में सुरक्षित हो वे परन्तु उनकी सेवा कर्त नहीं हो पायी थी । हरिराय जी की प्रेरणा हुए और उन्होंने उत्तोर में नये मंदिर का निर्माण कराकर रणजीतराय जी की विधिवत सेवा शुरू की । आज भी उत्तोर की भासा में धुष्टिमार्ग में कीर्तित सुखिता जी



ही सेवा करते हैं।

श्री हरिराय जी की सेवा :

हरिराय जी के वनक अनन्य सेवक थे। उनमें चार वाच्यन्त प्रसिद्ध हुए। श्री परिजीवनदास, प्रेमजी, संप्रदाय कल्पद्रुम के लेखक विद्वत्तनाथ भट्ट जीर एक बृद्धा होकर। गोस्वामी श्रुद्धन्त हैं एक शोभा पात्री की विदुषी थीं वे श्री हरिराय जी की अनन्य भक्तता थी। परिजीवनदास जी गोपीचर दास जी से शिक्षा पाएँ की टीका करते थे, प्रेम जी की कर्मा शिक्षा पाएँ में मिल जानी है। विद्वत्तनाथ भट्ट का विरह्य परिचय जीवनी पुस्तक में है चुका है। का संप्रदाय कल्पद्रुम के लेखक थे जीर एक प्रकार से श्री हरिराय जी के संपूर्ण ऐतिहासिक ज्ञान के संग्राहक थे। संप्रदाय कल्पद्रुम में विद्वत्तनाथ भट्ट ने अपना ज्ञान परिचय पड़े विचारों से दिया है और जहाँ संप्रदाय कल्पद्रुम का रचनाकाल की दिया है। कल्पद्रुम की रचना स० १७२६ ई. के तुल्य समझी जा रही है। विद्वत्तनाथ भट्ट जीवार्थ विद्वत्तनाथ जी की बेटों की मृत्यु के बाद में हुए थे। विद्वत्तनाथ भट्ट ने अपने वय के ४० वर्ष के उपरान्त ही कल्पद्रुम लिखा का समय कम साधन की परम उत्कृष्टता का था। तब विद्वत्तनाथ भट्ट ने मूल साधकों के स्थापना नाम की मूल में वाच्य कर की है परन्तु जहाँ उसको मान्य मूल नहीं होती। श्री प्रकार उन पर जिस बृद्धा शिक्षा की कर्मा हुई है वह भी उन कीट की विदुषी थी और 'गवतदा' ग्रन्थ की पुष्कलता की की जहाँ की पुष्कलता की की एक पैरि का रस्य बताया था। श्री प्रकार श्री हरिराय जी के शिक्षा में लिखने किया जानी की रक्षा जहाँ अनुमान बताया है जहाँ है।

१- संप्रदाय कल्पद्रुम पृ० १० १८१

२- मधितमज्ञानि नु विजय राम जन्मतिथि पाय।

उपिल संप्रदाय कल्पद्रुम पुराण कोम बरखाय ।।

- संप्रदाय कल्पद्रुम पृ० १० १८१

श्री शोभा माजी भी हरिराय जी की शिष्या थी, उनकी भी हरिराय जी से ब्रह्म सम्बन्ध मिला था। यह उच्च कौटि की विदुषी थी और भावुक थी। उन्होंने बहुत सस्सी बाधु पायी थी इसलिए वे माजी कही जाती थी। यह कवयित्री भी थी उन्होंने ब्रजभाषा में और गुजराती में कई सस्सी पदों की रचना की थी। श्रीमद्भागवत पर भी उनके कुछ शील मिलते हैं। हरिराय जी के पुष्टि कृपाव की सार रूप में लिखा है। उन्होंने अपने पदों में 'हरिदास' की स्तुति की है और इस प्रकार अपने गुरु का सत्त स्मरण रखा है। साथ में अपना शोभा नाम भी दिया है। यही एक पञ्चान है जिससे उनकी रचना हरिराय जी को ब्रजभाषा रचना से पृक् पृक् जाती है। उदाहरणार्थ-

“हरिदास श्रु शोभा निरख, फलन पवन उनके गुन गार ॥ १

०

०

“हुत जोरी हरिदास शोभा निरख हूँ दर पोरि के करन नमनो ।”

शोभा जी को गुजराती स्तुति इस प्रकार है :

“ए शोभा जी हरिदास दास बलिहारी जी ।” २

उनके शिक्षा में वादि से कल्पित अन्य सेवकों का भी पता चलता है। हरिराय जी अपने सेवकों की हर प्रकार की चिन्ता रखते थे।

बैठें :

-----

श्री हरिराय जी की सार बैठें प्रसिद्ध हैं। ये बैठें ज

-----

१- शोभा माजी के ब्रजभाषा पद

२- शोभा माजी के गुजराती शील

इन स्थानों पर हैं :

१- श्री गोकुल २- जोसलमेर ३- सावली ४- डाकोर  
५- जम्बूसर ६- धीनाथगारा ७- सिमनौर । इन बैठकों में हरिराय  
जी ने भागवत के पाठ किये और कुछ दिनों तक वहीं निवास भी किया ।  
जोसलमेर में तो बापों श्री गिरिधर जी के स्वरूप को पढ़ाया और वहाँ के  
राजा को गुरुण में लिया । 'जम्बूसर' में प्रेम जी माई को 'युगलगीत'  
भी सुनाया था और वहाँ बापों बैठक है। सावली बाप वैष्णवों के बाग्रह  
है गये थे । सिमनौर में बापों वहाँ जीवन के कई वर्षों बितारे ।

सीढा प्रसंग :

श्री हरिराय का महाप्रयाण कनक विमान १७७२ सं०  
मानते हैं तो अन्य विमान १७७५ मानते हैं। इस प्रकार उनकी अवस्था १२५  
या १२८ ठहरती है जो एक उच्च कोटि के संत और भगवद् मन्त्र के लिए  
आश्चर्यजनक नहीं । ये सब तो उनके प्राचीन विनों पर लक्षित मिलते हैं। उनका  
महाप्रयाण सिमनौर में हुआ । वहाँ एक बावड़ी पर उनकी छगरी और  
तुलसी प्यारा बाग भी विद्यमान है। इस प्रकार गोसाँई जी के द्वितीय गृह  
की साक्षात् कथा सराफ़ होकर तिलनाथ के वंश से बालक गोद लेकर जागे  
वंश वृद्धि हुई । उनके सिरोधान के बाद उदयपुर के राजा की सहायता से  
"सैल" नामक स्थान में बिट्ठलनाथ जी का मन्दिर बनवाया क्योंकि हरिराय  
जी की इच्छा थी कि बिट्ठलनाथ जी की सेवा के लिए श्रीनाथ जी का वैभव  
को न्यून न किया जाय । उनके इस प्रयत्न का पालन करते उनकी पत्नी ने भी  
किया । सीढा में पासीवाल ब्राह्मणों की एक देवा थी उन्हीं के स्थान पर  
श्री बिट्ठलनाथ जी का मन्दिर बनवाया गया और देवी सिहाड ग्राम में बा

गई। बाद में जब हरिराय जी की पत्नी ने घीनाथ जी के निकलाया कई  
 बाऊजी महाराज के पुत्र श्री गिरिधर जी को गोद से लिया गया तब पिटूल  
 नाथ जी भी नाचारा जा गये। उसी पूर्व श्री पिटूलनाथ जी का स्वल्प  
 कोटा या जयपुर आदि स्थानों में भी रहा। उसके उपरान्त स० १८७६ में  
 नाचारे में लागये तब से आज पर्यन्त वही है।

**स्वभाव :**

श्री हरिराय जी वृत्तिय विनम्र, धर्मात्मा, शोधशून्य,  
 चरित्रवान् प्रसिद्ध थे। उनके कृतिप्रिय से उनके असीमिक गुणों का परिचय  
 मिल जाता है। वे असीम प्रिय मन्त्र थे। पिताजी के चरणों का निम्न  
 करने करना तबो मौज्ज करना उनका निम्न कर्म था। वे लक्ष्मी पिता की  
 छोटी सी छोटी आज्ञा का उत्तर मनों करते थे और उनके वचनों को वेद  
 तुल्य मानते थे। लक्ष्मी लक्ष्मी पिता के एक ही जाठ नाम उत्कृष्ट में बनाये।  
 उसमें उनकी प्रिय मन्त्र का पूरा कला चलता है। पिता के एक ही जाठ  
 नामों से ५ निम्न नाम इस प्रकार हैं :

१- पितामह कृपा पानं तत् साम्प्रत्युत्तमानः ।

२- भार्यापतिप्रसन्नः ।

३- सम्प्रदायपौलितः ॥ १

इन नामों से हरिराय जी को न केवल प्रिय मन्त्र ही  
 प्राप्त होती है। अपितु उनके पिता कल्याणराय जी की वरिष्ठ का भी पता  
 जाता है। हरिराय जी अत्यन्त स्वाध्यायकाल थे। वे महाप्रभु जी और गोसाईं

१- शुद्धित इति १ के ११-१२

जी की भाँति कबसर के समय कैंक भगवद् रहस्य बातों को कहते थे । इन बातों में महाप्रभु जी कादि की प्रागट्य बातों को भीनाथ जी की मूलत तीलारें और उनकी भावनाएँ चर्चा का विषय होती थी । भगवद् भावनाएँ विरुद्ध और उच्च हृदय में ही स्फुरित होती हैं और वे सिद्ध पुरुषों की ही वस्तु होती हैं । ये भावनाएँ मानसी सेवावालों के लिए अत्यन्त उपयोगी होती हैं । अर्क-वितर्क से मोक्त हुए हृदयों के लिए ये भावनाएँ बोध से परे की वस्तु हैं । लीफ-कल्याण की दृष्टि से हरिराय जी ने सबाचार पर बहुत बल दिया है । संप्रदाय के लिए तो उन्तानि से अलम्ब कल्याण का विधान दिया है कि वे संप्रदाय में शिखर वाचार्थों में से हैं । उनका कृतित्व यह दीप स्तम्भ है जो एक विनाश साधक को गन्तव्य का संकेत देता है । महाप्रभु जी के वचन भी कथा सागर के लिए हरिराय जी का कृतित्व एक सुख मोहत के समान है जिस पर जाकर होकर पुष्टि भक्त विमुक्तार्ण का अमृत मान कर सकता है ।

### ग्रन्थ-सूचन :

श्री हरिराय जी ने संस्कृत और ब्रजभाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की है । उनमें संस्कृत ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है :

- १- मार्गस्वल्पनिर्णयः
- २- स्वमार्गीय कर्णव्यनिरूपणम्
- ३- स्वमार्गीय साधन रहस्यम्
- ४- भक्तिमार्गीय पुष्टिमार्गव्यनिरूपणम्
- ५- भक्तिमार्गीय विध्यनिरूपणम्
- ६- स्वमार्गीय भक्तिमार्गीय विध्यविवेकः

- ७- स्वमार्गीय पुषितैविध्य निरूपणम्
- ८- स्वमार्गीय सेवाफल त्व निर्णयः
- ९- पुष्टिमार्गीयत्वत्पनिरूपणम्
- १०- स्वमार्गीयत्वत्पस्थापन प्रकारः
- ११- धीमन्प्रभोश्चिन्तनप्रकारः
- १२- स्वमार्गीयगणनसमर्पण सेवादिनिरूपणम् ।
- १३- पुष्टिपथमर्पनिरूपणम्
- १४- धीपुष्टिमार्गसम्पन्नानि
- १५- प्रत्यक्षमन्त्रावयकानि विवेचनम् ।
- १६- सर्वान्प्रभावनिरूपणम्
- १७- निवेदनतान्पर्याधि
- १८- गणार्थः
- १९- अष्टाक्षरकीर्त्यः
- २०- अष्टाक्षर सप्तकीर्त्य कुंभदानिरासः
- २१- स्वमार्गीयस्योदितानिरूपणम्
- २२- स्वमार्गीयस्यनिरूपणम्
- २३- पुराष्टकान्तर्यम्
- २४- स्वमार्गीय मूल निरूपणम्
- २५- मूलतत्त्व सत्य निरास रसात्
- २६- ओमन्मन्त्रप्राप्त्य हेतु निर्णयः
- २७- ओम पुरुषोत्तमस्यस्याविभावेनिर्णयः
- २८- मन्त्रप्राप्तुर्भावेसिद्धान्तः
- २९- प्रमुप्राप्तुर्भावे विचारः
- ३०- प्रमु प्राप्तुर्भावेविचारः

३१- चतुर्मुखस्वरूप विचारः

३२- स्वहृत्कारतन्त्रनिर्णयः

३५- भावसाधकवाधकनिरूपणम्

३७- धीमन्प्रभोः सर्वान्तरात्वनिरूपणम्

३६- सर्वभोग्यकुधाधिन्य निरूपणम्

४१- पुष्टिमार्गीययानप्रकार विवेचनम्

४३- स्वमार्गशरणावयनिर्णयः

४५- क्षमा वैफल्यनिरूपणाष्टकम्

४७- कामाख्याय विनिरूपणम्

४६- वशिर्मुखनिरूपणम्

५१- भगवत्पञ्चविधनिर्णयः

५३-सन्तर्गनिर्णयः

५५- मदन्त्यागतिः

५७- धीवत्त्वमर्पादास्तौनम्

५६- प्रान्ताष्टकम्

६१- धीमन्गौडचन्द्राष्टकम्

६२- मुक्ताप्रयाताष्टकम्

६५- स्वप्नविश्लिष्टः

६७- श्रीकृष्णारण्य विश्लिष्टः

६६-दैन्याष्टकम्

७१- श्रीकृष्णस्तौनम्

३२- स्वमार्गीय भावनात्वं प निर-  
पणम्

३४- कृतं गवहि र्गप्रपैवविवेकः

३६- श्रीकृष्णशब्दार्थनिरूपणम्

३८- धीमन्प्रभोः प्रादुर्भावं प्रकार  
निरूपणम्

४०- धीमन्प्रभोवैयोनिरूपणम्

४२- जपसमये स्वरूपकथनम्

४४- स्वमार्गीयस्तन्त्रयासवैलक्षण्य  
निरूपणम्

४६- पुष्टिमार्गविज्ञानप्रकारनिरूपणम्

४८- निष्कामतीला

५०- वशिर्मुखनिरूपणम्

५२- कथानवणवाधकनिर्णयः

५४- कपिण्योदितः

५६- धीनिजाचार्यष्टकम्

५८- धीवत्त्वमभावाष्टकम्

६०- धीगौडेशसिवादिनष्टकम्

६२- धी नवनीत प्रियाष्टकम्

६४- स्मरणाष्टकम्

६६- क्लिष्टा स्वप्नविश्लिष्टः

६८- विश्लिष्टः

७०- स्तौनम्

७२- श्रीकृष्णशरणाष्टकम्

७३- द्वितीयं धीकृष्ण शरणाष्टकम्

७४- भगवत्शरणा विघ्नवर्णनम्

७७- मध्याह्नलीला

७६- प्रमाणिकाष्टकम्

८१- प्रार्थनाष्टकम्

८३- प्रीतयुगलस्मरणम्

८५- विपरीतद्वैतारकष्टकम्

८७- धीमुख्यसहितस्तोत्रम्

८६- धीयमुना विज्ञप्तिः

८९- धीवल्लभशरणा विज्ञप्तिः

८३- हाहा धैन्याष्टकम्

८५- धीवैल्लभशरणाष्टकम्

८७- धीमताप्रभोरष्टोत्तरनामावलि

८६- स्वस्वामिपाण्डुनाष्टकम्

९०९- प्रातःस्मरणम्

९०३- धीविदूतविभीरकष्टकम्

९०५- धीगोकुलताष्टकम्

९०७- धीगुरुदेवाष्टकम्

९०८- स्वप्नप्रभुविज्ञप्तिः

९११- चतुःस्तोत्रो

९१३- द्वितीय भगवदीय शिक्षणम्

९१५- प्रथमं सिद्धान्तं टीका निरूपणम्

९१७- तृतीयसिद्धान्तं टीका निरूपणम्

७४- पञ्चाशदर्थगमस्तोत्रम्

७६- वैद्यसंख्यन्धिस्तोत्रम्

७८- धीगोकुल प्रवेश लीला

८०- धीगिरिधराष्टकम्

८२- धीगोपीजनवल्लभाष्टकम्

८४- धीनागरीनागरस्तोत्रम्

८६- धीमद्राष्टकम्

८८- धीवामिनी प्रार्थनाष्टकम्

८९- धीवल्लभशरणाष्टकम्

८२- धैन्याष्टकम्

८४- धीवल्लभभावाष्टकम्

८६- धीमद्वार्ककलावतास्ताम्यल्प-

निरूपणम्

८८- स्वस्वामिपाण्डुनाष्टकम्

९००- धीमदाचार्यचिन्तनम्

९०२- धीविदूतेश्वराष्टोत्तरनामावलिः

९०४- धीविदूतविभीरकष्टकम्

९०६- धीगोकुलेशाष्टोत्तरनामावलिः

९०८- प्रभुत्वल्पनिरूपणाष्टकम्

९१०- रताम्भभावत्वल्प निरूपणम्

९१२- प्रथमं भगवदीयपरिक्षिप्तणम्

९१४- द्वितीय तदीयानां शिक्षणम्

९१६- तृतीय सिद्धान्तं टीका निरूपणम्

९१८- स्वमार्गत्वत्वम्



- ११६- गवांफाराष्टकम्  
 १२१-बोटिया (बीड़ी) समर्पण भाव-  
 निरूपणम्  
 १२३- फलविवेकः  
 १२५- वायव्यपुर्मुखावनिरूपणम्  
 १२७- चतुर्मुखस्वल्प विचारः  
 १२६- गोपीवचनदिननिर्वाहकम्  
 १२९- श्रीनृसिंहवामनजयन्तसुखमङ्गलवैशिष्ट्य  
 निरूपणम्  
 १३३- गट्टचण्डिरपराधाः फलानि  
 तत्प्राप्तचिक्ताणि च ।  
 १३५- नागसंज्ञानि ( प्रभोः स्तवनरूपाणि )  
 १३६- पद्मयन् ( श्रीमदाचार्यस्तवन  
 लम् )  
 १२०- राज भोग भावना  
 १२२- स्वतन्त्रलैलः  
 १२४- भगवच्छास्त्रनिर्णयः  
 १२६- शर्वाभोग्यसुधाधिभ्यनिरूपणम्  
 १२८- भावपीठकम्  
 १३०- दास्याष्टकम्  
 १३२- श्रीभागवतपुस्तक नित्यपूजन  
 विधिः  
 १३४- अष्टपदीयम्

ऊपर बंतिस्थित अन्य बहुत सी ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी चर्चा सम्प्रदाय कल्पद्रुम में मिल जाती है। जैसे- गुणसागर 'शिखापा प्रत्याद' संयोजनकी भावना 'अष्टपदीया', 'वेष्णावाह्नि' सेवा पद्धति आदि बहुत सी पुस्तकें हैं। इन सबकी संख्या १६६ तक पहुँच जाती है।

भाषाया ग्रन्थों में रैका- भाषना, रैका- भावना, लीला- भावना, लीला- भावना, नाट्य- भावना, नाट्य- भावना, महाप्रभु जी के हजाराव की भावना, पुष्टिवृद्धाव, भाषा निष्ठा पा, स्थाल, रैका,

१- इस ग्रन्थ की चर्चा सम्प्रदाय कल्पद्रुम में मिल जाती है। कतः सिद्ध होना है कि यह कृष्ण हरिराय जी की है। अन्य उपर्युक्त सभी पुस्तकें गट्टलाल जी की संस्था और काँकरोली शिक्षा विभाग एवं गुजरात वनविद्यालय राँगा- हटी की बुकी में हैं।

कीर्तन, भावप्रकाश आदि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। प्रज्ज्वाला की गद्य पद्य की लौह भी बहुत सी रचनाएँ हैं जिनका परिचय अन्य अध्याय में किया जायेगा।

### निष्कर्ष :

श्री हरिराय जी के उपर्युक्त जीवन प्रसंगों से हमें यही उपलब्ध होता है कि उनके पूर्वजों के वाक्यों का पूर्णतः पालन करना चाहिए। स्वाध्याय सत्संग हरि गुरु में महा जीवन के जग बना लेना चाहिए। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए परिवार दुष्टत्व की मगवान् के लिए ही समझना चाहिए। हरिराय जी ने मगवत्सेवा शौक्यर पिछी जीों आदि में जाकर पैर चौड़ना प्रेष्ठ नहीं माना। वे वाधीवन अपने मगवान् की सेवा करते रहे। ऐसे संत जहाँ रहते हैं उस स्थान की ही तीर्थ बना देते हैं। नारदोय भक्ति सूत्र में कहा भी है कि "तीर्थोर्ध्वन्ति तीर्थानि"॥

### हरिराय जी की ज्ञाप और उनका परिचय

श्री हरिराय जी ने वाचार्य बल्लभ गोसाँई विट्ठलनाथ जी एवं गोविन्दनाथ जी के प्रति कसौम दीनता और आश्रय प्रकट करते हुए जन्त फलों की रचना की है। ये फल संस्कृत, प्रज्ज्वाला, फजावी, पाखाड़ी, गुजराती में रहे हैं। उन फलों में काफी सारा प्रकरणों से अपनी ज्ञाप दी है। जैसे "हरिदास", "हरिधन", "रसिक", "रसिकराय", "रसिदास" और "हरिजन"।

रसिदास की ज्ञाप सङ्गदाय के एक अन्य विद्वान् श्री मट्ट जी महाराज की भी है, परन्तु हरिराय जी की रचना शैली भाषा भाव के विशिष्ट

ब्रह्मकार को देखते हुए उनकी वत्सल सी पहचान हो जाती है। हरिदास ब्रह्मप  
वही है जहाँ वापमें वाचायें ब्रह्म के प्रति दास भावना है। "हरिधन" में  
वाक्का चरम दैन्य और निस्साधनता प्रकट होती है। वही हरिराय जो वफा  
वाप को लोक-वेद के समस्त साधनों से शून्य मानते हैं। "रसिक ब्रह्मप" से वापने  
रसात्मक भगवान् का स्मरण किया है। "रसिकराय" से उनका भगवदावेक प्रकट  
होता है। "रसिकदास" में वाप पुष्टिमायित को प्रकट करते हैं और हरिराय  
शब्द से वापवफा मूल वाचायें रूप को प्रकट करते हैं। "हरिधन" शब्द से वाप  
एक मातृ भगवान् श्री हरि की ही सेवा को स्वीकार करते हैं। कहीं कहीं उनकी  
"रसनिधि", महेश्वरहरि "वादि ब्रह्मप" में मिलती है। इन सबसे उनकी एक मान  
रसोपासना प्रकट होती है। कुछ लोगों का मत है कि "रसिक" ब्रह्मप उन्होंने  
रसलिए भी की कि उनकी पत्नी का नाम "रसिकप्रिया" था। उन्होंने  
वफा पत्नी "रसिकप्रियतम" ब्रह्मप से भी पद रचना की है जो भी ही श्री  
हरिराय जो उक्त कौटिल के विद्वान्, कवि, भगवद् भक्त, परम सदाचारी संत  
थे। वे संप्रदाय की वाचायें परम्परा में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। संप्रदाय को  
उन्होंने वफा प्रतिभा से बहुत दिया जिस मन्त्र संप्रदाय पादप का बीजारोपण  
वाचायें ब्रह्म ने किया और जिस वृक्ष का रस नि पीछा में जो ने किया उसकी  
बलिय फलदान् प्रभु भरण हरिराय को ने बनाया। एक प्रकार से वे संप्रदाय  
भक्त हैं उच्चमय भक्त हैं।

---

१- देखो- पद सी० १५८ हरि० पदा० संपा० प्रमुदयाल मीतल

रसिकराय विनली कान्को !

रसिकदास ब्रह्मप कीन्की ।

श्रीब्रह्म रसत हिरं और फल त्यागे ॥

## द्वितीय कण्ठाव

## श्री हरिराय जी का कृतित्व

### (ब) संस्कृत ग्रंथों का परिचय :

श्री हरिराय जी का अत्यधिक महत्व उनके प्रसुर साहित्य और बहुसंख्यक ग्रन्थों के कारण है। संप्रदाय के आचार्य संस्कृत के प्रकण्ठ विद्वान् होते थे। ग्रन्थ प्रणयन भी संस्कृत में होता था। हरिराय जी ने भी उसी परंपरा में ही अधिकारीशैली से संस्कृत में ही किया। उनके संस्कृत ग्रन्थों की नामावली पहले ही दी जा चुकी है। यहाँ उनके विषयों की बर्दा संक्षेप में की जायेगी।

### १- मार्गस्वरूप निर्णय :

यह ग्रन्थ उन्नीस श्लोकों का है। इसमें पुष्टि मार्ग के स्वरूप का निर्णय किया गया है। इसमें संकेत दिया गया है कि यह मार्ग भावात्मक है- " तेन भावात्मको मार्गः " इससे मार्ग का स्वरूप समझ में आ जाता है। मार्ग में साधक कृत्री भाव से भगवान् की उपासना करता है।

### २- स्वमार्गीय कर्तव्य निरूपणम् :

जिस व्यक्ति ने मार्ग का स्वरूप जान लिया उस निष्ठापय भक्त को क्या कर्तव्य करना होता है। इसकी बर्दा इस ग्रंथ में की गई है। इसमें अठारह श्लोक हैं। इसमें भगवान् की सेवा करने पर बल है, उसमें भी भाव-सेवा की श्रेष्ठ बताया है।

### ३- स्वमार्गीय साधन रहस्यम् :

यह आठ श्लोकों का ग्रन्थ है। इसमें लिखा है " भावोहि

मार्गं सर्वस्वम् , कर्तव्यं तस्य रक्षणम् " । तब भाव सन्धि से ही सुलभ है।

#### ४- भक्तिमार्गं पुष्टिमार्गत्वं निश्चयः

इस ग्रन्थ में साढ़े आठ श्लोक हैं। इसमें संकेत दिया गया है कि भगवान् ही साधन हैं और वे ही फल हैं।

#### ५- भक्ति द्वैविधनिरूपणम् :

इस ग्रन्थ में भी आठ श्लोक हैं। इसमें भक्ति के दो भेद ऊष्णा और शीतला नाम से किशेय गये हैं।

#### ६- स्वमार्गीय भक्ति द्वैविध्य विवेकः

इस ग्रन्थ में पन्द्रह श्लोक हैं। इसमें वैदिक भक्ति और स्वतन्त्र भक्ति का भेद किया गया है। ऋषणादि वैदिक भक्ति है और स्वतन्त्र भक्ति गोपीगनार्थी की है। दोनों भक्तियों में स्त्री भाव का अन्तर है।

#### ७- स्वमार्गीय भुक्ति द्वैविध्य निरूपणम् :

इस ग्रन्थ में सात श्लोक हैं। इसमें पुष्टिमार्गीय मोक्ष का स्वरूप बताया गया । कृष्ण के साथ सम्बन्ध ही मोक्ष है और उसी को सायुज्य कहा गया है :

" प्रेतः परमानन्दे तदि सायुज्यताव्ययम् " १

#### ८- स्वमार्गीयैवाकल्यनिर्णयः

इस ग्रन्थ में द्वाविध श्लोक हैं। मानसी देवा किस प्रकार सिद्ध हो यह इस ग्रन्थ में बताया नहीं है। मानसी का फल सायुज्य भुक्ति है।

“ पुष्तिरेव कर्तुं तस्य सायुज्यमिति निश्चयः १

#### ६- पुष्टिमार्गीय स्वरूप निरूपणम्

इस ग्रन्थ में सात श्लोक हैं। इस के मूल रूप स्थायी भाव की स्वामिनी भाव कहा है।

#### १०- स्वमार्गीय स्वरूप स्थापन प्रकारः

इस ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग में किस प्रकार से स्थापन निमित्त स्थापन भगवान् स्वरूप की स्थापना करना इसकी विधि बतलाई गई है। इस ग्रन्थ में बट्ठारह श्लोक हैं।

#### ११- श्रीमत्प्रभोर्विषयन प्रकार :

इस ग्रन्थ में तेरह श्लोक हैं। पुष्टिमार्गीय भक्त की श्रेष्ठ स्वरूप का चिन्तन किस प्रकार करना चाहिए। यह बतलाया गया है।

#### १२- स्वमार्गीयकारण समर्पण सेवादि निरूपणम्

श्री हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में सौ श्लोक लिखे हैं। इसमें कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की बर्णना है। दीप्ता लेकर समर्पण और सेवा का निरूपण किया गया है। इसमें वाचार्य बल्लभ के सिद्धान्त का अनुकरण करके उन्होंने के कथनों की व्याख्या है। पुष्टि भक्त की कुछ विधि नियमों से सावधान किया गया है। पुष्टि भक्त की दम्भ मार्ग का वाज्य कथना देशान्तर का समामय, कथना

१- श्लोक २१

२- , ,

तीर्थात्रय नहीं लेना चाहिए । न कर्तापू का अभिमान रखना चाहिए न किसी भी का न कर्मों का बाधार लेना चाहिए । अपराध निवृत्ति के लिए इस मार्ग में प्रायश्चित्त का भी विधान नहीं है केवल भगवान् की शरण में जाना ही सबसे बड़ा कर्तव्य है।

‘ प्रायश्चित्तादिषु मत्तिर्न कार्या शरणम् ब्रजेत् । ’ २

हर स्थिति में भगवन् स्मृति ही उचित है।

१३- पुष्टिपथमर्प निरूपणम् :

इस ग्रन्थ में बत्तीस श्लोक हैं। इसमें पुष्टिमार्ग के रहस्यों को बताया गया है। पवित्र साधक अपने भावों का उद्बोध करे यह इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।

१४- श्री पुष्टिमार्गलक्षणानि :

इस ग्रन्थ में छकोस श्लोक हैं। पुष्टिमार्ग की इसमें बड़ी सरस व्याख्या की गयी है। इस मार्ग की विशेषता है कि भगवान् ही इस मार्ग में फल है और वे ही साधन हैं।

१५- ब्रह्म सम्बन्ध वाक्य कठिनानि विवेचनम् :

इस ग्रन्थ में सत्रह श्लोक हैं। ब्रह्म सम्बन्ध वाक्य समर्पण गवात्मक मन्त्र के मुख्य शब्दों की व्याख्या की गई है। कहा गया है कि पाप और बलेश में भ्रम मानना ही पुष्टिमार्ग में फल है।

१- श्लोक सं० ११

२- , सं० १६



### १६- सर्वात्मभाव निरूपणम्

इस ग्रन्थ में एकही श्लोक है। इसमें सर्वात्मभाव की बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है। मैं संपूर्ण रूप से भगवान् का हूँ- इस प्रकार का विचार सर्वात्मभाव है। इसमें छन्द्रीयों के विषयों का विसर्जन है। भगवान् मेरे हैं- यह काम भाव है। इसमें साधक की विषय संपूर्ति की छद्मा रहती है। सर्वात्मभाव में स्वरूपा- नंद है। काम भाव में भगवान् से प्रकृता का बोध है।

### १७- निवेदनतात्पर्यार्थं

इस ग्रन्थ में निवेदन ( दीक्षा ) का तात्पर्य दिया गया है। सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ने स्वतः ही जीवों को अपने से प्रकृ किया है। इस प्रकृता में ताप बलेश का अनुभव नहीं है। क्योंकि भगवान् से जीव का सम्बन्ध नहीं है और उसका सम्बन्ध प्रपञ्च से है। निवेदन कर देने पर उसका सम्बन्ध भगवान् से ही जाता है और तभी उसकी ताप बलेश की अनुभूति होती है, क्योंकि प्रपञ्च से उसकी निवृत्ति ही आती है। इसमें जीव की अहमन्यता ही बाधक है। जिस प्रकार अग्नि में घड़े की फा जाने पर वह उपयोगी ही जाता है। गण मैत्र का भाष्य होने के कारण यह ग्रन्थ गणात्मक है। इसमें केवल साढ़े सात पंक्तियाँ हैं।

### १८- गणार्थ :

इस ग्रन्थ में निवेदन मैत्र की विवृति है। इसमें केवल चौदह पंक्तियाँ हैं परन्तु मन्त्र का संपूर्ण तात्पर्य समाहित है।

१- श्लोक सं० ७

२- श्लोक सं० ६

### १६- वष्टादार मन्त्रार्थ :

इस ग्रन्थ का तात्पर्य वष्टादार का निरूपण है। इसमें केवल पाँच पंचित्या गण की वीर एक श्लोक है।

### २०- वष्टादाशरणमन्त्रपूर्वपदानिरास :

वष्टादार मन्त्र का तात्पर्य बताते हुए यह संकेत दिया गया है कि वष्टादार मन्त्र पुष्टिमार्ग में किस प्रकार साधन रूप हो सकता है। इसमें दश श्लोक हैं।

### २१- स्वमार्गमर्यादानिरूपणम् :

इस ग्रन्थ में एकही श्लोक है। इसमें पुष्टिमार्ग की मर्यादा का निरूपण किया गया है, भाव की मर्यादा बताते हुए साक्षात्कृता के त्याग का संकेत है।

### २२- स्वमार्गैहस्यनिरूपणम् :

इस ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग की स्वरूपता निरूपित की गयी है। इसमें बारह श्लोक हैं।

### २३- महुराष्टक तात्पर्यम् :

इस ग्रन्थ में स्वरूप गान वीर गुण गान, गान के दो भेदों के बाधर पर भगवान् के सीता वीर गुणों का वक्तव्य है। गुणगान परोक्ष

में होता है स्वरूप गान प्रत्यक्ष में । इस ग्रन्थ में दस श्लोक हैं।

#### २४- स्वमार्गमूल निरूपणम्

इसमें रसात्मक कृष्ण का ब्रह्मवाद के माध्यम से स्वरूप-निरूपण किया गया है। पुष्टिमार्गीय इस सिद्धान्त की इसमें बर्चा है। इस ग्रन्थ में बीतीस श्लोक हैं।

#### २५- मूल रूप संशय निराकरणम्

श्रुतिप्रतिपादित भगवान् का रसात्मक रूप गौपीजन, ब्रज, श्रीमद्गोवर्धन समन्वित कृष्ण का तीलापरायण रूप किस प्रकार हुआ इस रहस्य का उद्घाटन किया गया है। इस ग्रन्थ में दस श्लोक हैं। वस्तुतः पुष्टिमार्ग में मूल स्वरूप भाव है।

#### २६- श्रीमत्प्राकट्य हेतु निर्णय

मर्यादा मार्ग में भले ही भगवान् के प्राकट्य के कारण दुष्ट दलन धर्म स्थापन हो किन्तु भक्ति मार्ग में भगवान् के प्राकट्य का कारण भक्तों की परमानन्द का दान है। भक्त का लौकिक दुःख दूर कर सर्वस्व समर्पणपूर्वक विरह ताप का स्वीकरण है। इस ग्रन्थ में केवल तेरह श्लोक हैं।

#### २७- श्री गुरु-जीवम स्वरूपाविर्भाव निर्णय

इस ग्रन्थ में परब्रह्म के गुरु-जीवम स्वरूप का शृंगार रसात्मक रूप की बर्चा है। इस पुष्टि के इस ग्रन्थ की महत्ता है। इसमें बीतीस श्लोक हैं।

### २८- भगवत्प्रादुर्भाव सिद्धान्त

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय के प्रथम श्लोक की व्याख्या करते हुए श्री हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में तीन अनुच्छेद लिखे हैं और केवल एक श्लोक दिया है। भगवान् के जन्म विषयक संशय का सुंदर निराकरण किया गया है।

### २९- प्रसुप्रादुर्भाव विचार :

यह भी गणान्तरक ग्रन्थ है। इसकी शैली संशय निरसनवाली शास्त्रीय है। वन्त में दो श्लोक दिये गये हैं। भगवान् के जन्म के सम्बन्ध में शंकापूर्वक के लिए यह ग्रन्थ अतिशय उपयोगी है। हरिराय जी के प्रकरण श्रृंखला में इसका बड़ा महत्त्व है।

### ३०- श्री प्रसु प्राकट्य समय विचार

इस गणान्तरक ग्रंथ में कालः परमशीघ्रतः 'भागवत की इस उक्ति की दिव्य व्याख्या दो गहरे हैं।

### ३१- चतुर्भुज स्वरूप विचार

यह भी गणान्तरक है। इसमें भगवान् के मधुरा में आविर्भूत चतुर्भुज रूप का तात्पर्य परशुदि, धर्म रक्षा, भूमावस्था और मोक्षदान- इन चार क्रियाओं के रूप में समझाया गया है।

### ३२- स्वमार्गीय भावना स्वरूप निरूपणम्

इस गणान्तरक ग्रन्थ में स्वरूप भावना, सीता भावना, भाव

भावना तीनों की व्याख्या की गई है। हरिराय जी के मौलिक विस्तार का कक्षा परिणय प्रसिद्ध है।

### ३३- स्वरूपतारतम्यनिर्णय

इस ग्रन्थ में वैष्णवों को भगवान् स्वरूप के साथ कैसे सम्बन्ध रखना चाहिए उसका निर्देश है। यह गद्यात्मक है और वन्त में एक श्लोक दिया गया है।

### ३४- त्रैलोक्यविहीन प्रपन्न विवेकः

इसमें वाविर्भाव- त्रैलोक्य सीला सिद्धान्त की व्याख्या है। यह गद्यात्मक है और वन्त में एक श्लोक है।

### ३५- भावसाधक-बाधक निरूपणम्

इसमें भाव साधना के लिए आवश्यक गुण और बाधाएँ हैं बचने के लिए सावधानी का संकेत है। इस ग्रन्थ में 'त्रैलोक्य' शब्द के भी श्लोक हैं।

### ३६- श्रीकृष्ण तत्त्वार्थ निरूपणम्

इस ग्रन्थ में चौबीस श्लोक हैं। हरिराय जी ने श्रीकृष्ण तत्त्व की व्याख्या अपनी ढंग से की है। भगवान् श्रीकृष्ण का सदानन्द, स्थायी भावतत्त्व और यशोदोत्सव साहित्य तीनों का स्वीकरण कर दिया है।

### ३७- श्रीमत्प्रभोः सर्वान्तरत्वं निरूपणम्

इसमें दस श्लोक हैं। इसमें पुरुषोत्तम के अन्तर ब्रह्म रूप, जगत् का निरूपण किया गया है।

### ३८- श्रीमत्प्रभोः प्रादुर्भाव प्रकार निरूपणम्

मगवान् के रसात्मक रूप का प्रादुर्भाव किस प्रकार होता है। यह इस ग्रन्थ में निरूपित है। इसमें चौबीस श्लोक हैं।

### ३९- सर्वोभोग्यसुधाधिक्यनिरूपणम्

इस ग्रन्थ में पुनः मगवान् के रसात्मक स्वरूप का वर्णन है। इसमें केवल पाँचे सात श्लोक हैं।

### ४०- श्रीमत्प्रभोर्ज्योतिरूपनिरूपणम्

इस ग्रन्थ में केवल आठ श्लोक हैं। इसमें भक्त के ऐव्य मगवान् का स्वरूप दो वर्णों का निरूपित किया गया है। पुष्टिमार्ग की बाल सेवा की यही परमावधि है।

### ४१- पुष्टिमार्गीयध्यानप्रकारविवेचनम् :

पुष्टि भक्त की वष करते समय पित्त प्रकार ध्यान करना चाहिये। इसकी चर्चा की गयी है। यह ग्रन्थ भी गण पञ्चात्मक है। इसमें पाँच श्लोक हैं।

#### ४२- जपसमये स्वरूपध्यानम्

इस ग्रन्थ में जप के समय भगवान् के किस लीलात्मक स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इसकी चर्चा है। ग्रन्थ में पच्चीस श्लोक हैं।

#### ४३- स्वमार्गशरणादयनिर्णय

इस ग्रन्थ में दो प्रकार की शरणागति की चर्चा है। एक में संपूर्ण त्याग है, जिसे सिद्ध शरणागति कहा। दूसरी साधन शरणागति है इसमें देवा के लिए त्याग की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थ में छक्कीस श्लोक हैं।

#### ४४- स्वमार्गीय संन्यास वैतदाण्य निरूपणम्

पुष्टिमार्गीय संन्यास पर्यादीमार्गीय संन्यास से भिन्न होता है। पुष्टिमार्गीय संन्यास में वैराग्य के बदले भगवत्प्रेम की प्रधानता होती है। वहीं संन्यास साधन रूप है। पर्यादीमार्गीय संन्यास में वैराग्य साधन नहीं साध्य है। वहीं भिन्नाटन शरीर रक्षा के लिए आवश्यक है। वहीं मोक्ष की कामना रहती है। पर्यादीमार्गीय संन्यास में ऐसी कोई कामना नहीं होती। इस ग्रन्थ में उन्नीस श्लोक हैं।

#### ४५- जन्मवैफल्यनिरूपणादिकम् :

किसाकि ग्रन्थ के नाम से प्रकट होता है यह एक तच्छक है। इसमें जीवन की शार्कता बल्लभ श्रीभद्रभागवत और कृष्ण की भक्ति में ही है। श्री हरिराय जी ने इसी बात पर बल दिया है। भगवल्लीला चिन्मन और

विरह भावना यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए । यह ग्रन्थ एक प्रकार से हरिराय जी का स्कान्द संगीत है।

#### ४६- दुर्लभविज्ञान प्रकारनिरूपणम्

यह ग्रन्थ गीता के सोलहवें अध्याय के आधार पर देवासुरी संपन्नियुक्त जीवों के लिए लिखा है। वृत्ति कथना जीविका का लक्ष्य स्वार्थ न होकर परमार्थ होना चाहिए- हरिराय जी का यही उद्देश्य था प्रस्तुत ग्रन्थ में छवतालीस श्लोक हैं। इसमें भगवद् भक्त को पालम्पट से बनने के लिए शिक्षा दी है।

#### ४७- कामाख्यदोषविवरणम्

इस ग्रन्थ में भक्तों को सबसे पर्यंकर शत्रु काम वासना से बचने के लिए सावधान किया है। कहा जाता है कि यह किसी राजकुमारी को उद्देश्य करके हरिराय जी ने यह ग्रन्थ लिखा था । इसमें छान्नीस श्लोक हैं।

#### ४८- निष्काम लीला

इसमें भगवान् को रास क्रीड़ा को लक्ष्य करके भगवान् को इन्द्रियालीत निष्काम सिद्ध किया है। हरिराय जी ने रासलीला को बतलाकर काम विषय का उदाहरण माना है। यह ग्रन्थ भी विषययुक्त प्रतिपादन शैली के अन्तर्गत होने से गद्यात्मक है। अन्त में एक श्लोक है।

#### ४९- बहिर्गुणान्वितनिरूपणम्

इस ग्रन्थ में धनासक्ति, गृहासक्ति, विषयासक्ति, से



भगवान् कृपित होते हैं। इसमें यही दर्शाया गया है। इसमें केवल हः श्लोक है।

#### ५०- बहिर्मुक्तत्व निवृत्तिः

हः श्लोकों की इस ग्रन्थ में बहिर्मुक्तता से बचने के उपाय बताये गये हैं।

#### ५१- भगवत् प्रकृति वर्णनम्

यह विषय प्रतिपादक ग्रन्थ होने से गण्यम् है। यह गद्य केवल उन्नीस बीस पदितयों में है। इसमें भगवान् की बाल प्रकृति का चित्रण है।

#### ५२- कथाश्रवण बाधक निर्णयः

पन्द्रह श्लोकों के इस ग्रन्थ में हरिराय जी ने निद्रा, चिन्ता और श्रृंखलाता आदि बाध के सहज दौष बताए हैं। ये व्रतान के हेतु हैं। इनके मूल में व्रतान अन्य ज्ञान तथा अन्यथा ज्ञान ही है। इसका उपाय वैराग्य और कृष्ण प्रेम ही है।

#### ५३- सत्संग निर्णय

इस ग्रन्थ में बारह श्लोक हैं। इसमें हरिराय जी का आग्रह है कि भक्त को सत्संग निरन्तर करते रहना चाहिए।

#### ५४- कावण्योक्तिः

हरिराय जी की वैभवं भावना के इस ग्रंथ में दर्शन होते हैं।

१- ज्ञानमन्यविज्ञानमन्यथाज्ञानमेव च ।

कार्यकमपिधाया जीव स्वैत निश्चयः ॥

इस ग्रन्थ में बाईस श्लोक हैं।

उपर्युक्त प्रकरण ग्रन्थों में हरिराय जी ने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों और रहस्यों का उद्घाटन किया है। जो उनकी दधि मय का परिणाम है। इनमें वनेक ग्रन्थ विषय निरूपण की दृष्टि से है और बहुत से पुष्टिमार्गीय भक्ति साधना की दृष्टि से। इनका वर्गीकरण यथास्थान किया जायेगा। वंदनात्मक, स्तुतिपरक एवं वाचार्थ वल्लभ, विट्ठल एवं स्वगुरु गोकुल नाथ जी के प्रति दैन्य स्मरण आदि निर्माकित ग्रन्थों में हैं। इन ग्रंथों में कतिपय ग्रन्थ ऐसा भावनापरक भी हैं।

#### १- श्रीनिवाचार्याष्टकम्

इस ग्रन्थ में आठ श्लोकों में वाचार्थ वरण की स्तुति की गई है। स्तुति में वाचार्थ के स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है।

#### २- श्रीवल्लभपराशर स्तोत्रम् :

आठ श्लोकों में श्री हरिराय जी का श्री वाचार्थ वल्लभ के प्रति आत्म निवेदन है।

#### ३- श्रीवल्लभ भावाष्टकम्

इन आठ श्लोकों में वल्लभ के प्रति हरिराय जी की भावार्जसि है।

#### ४- प्रभाताष्टकम् :

इसमें माता यशोदा की आत्मा कृष्ण के लिए जगाने की और प्रातः कृति करने की बात है। इस ग्रन्थ का अन्त माधुर्य है।

### ५- श्री गोकुलेश सेवावृत्तिकम् :

इस ग्रन्थ में चालीस श्लोक हैं। गोकुलनाथ जी की प्रातःकाल से लेकर रात्रि पर्यन्त की सेवा की विधियाँ हैं।

### ६- श्रीमद्गोकुलवन्दनाष्टकम्

संप्रदाय के शिष्य स्वल्प श्री गोकुलवन्दना जी की स्तुति के वाठ श्लोक हैं।

### ७- श्रीनवनीत प्रियाष्टकम्

इसमें वाचार्थ वल्लभ के शिष्य श्री नवनीतप्रिय के स्तुतिपरक वाठ श्लोक हैं।

### ८- मुर्जगप्रयाताष्टकम्

मुर्जगप्रयात <sup>२</sup> छन्द में स्तुतिपरक वाठ श्लोक हैं।

### ९- स्मरणाष्टकम्

इन वाठ श्लोकों में रास लीला में जानेवाली गोपिकाओं की चर्चा है। इस वष्टक छन्द उपजाति है।

१- इति श्रीगोकुलेशस्य सेवाविधि समाप्तिम् ।

वाङ्मनिकं रचितं पूर्णं तेन सन्तुष्टु प्रभुः ॥

२- मुर्जग प्रयातं चतुर्विंशतीः चार खण्ड ( । ) इस छन्द का लक्षण है।

३- उपजाति छंदवर्ग उपेन्द्रवर्ग से मिलकर बनता है।

### १०- स्वप्नुविज्ञप्ति

इस ग्रन्थ के बारह श्लोकों में हरिराय जी ने भगवान् के प्रति आत्म निवेदन किया है।

### ११- द्वितीया स्वप्नु विज्ञप्ति:

यह ग्रन्थ भी आत्म निवेदनात्मक है।

### १२- श्रीकृष्णचरण विज्ञप्ति

इसमें उनचास श्लोक हैं। इसमें हरिराय जी के भगवान् से प्रत्यक्ष आत्म निवेदन पठनीय है।

### १३- विज्ञप्ति

इस विज्ञप्ति में एकठावन श्लोक हैं जो चरम आत्मनिवेदनात्मक हैं।

### १४- वैन्याष्टक :

इसमें दीनता भरी आठ श्लोक हैं। प्रत्येक चतुर्थपाद में "मयि दीने कृपां कुरु" की टंक है।

### १५- स्तोत्रम् :

आठ श्लोकों के इसमें भगवान् कृष्ण के प्रार्थना के छः श्लोकों के उपरान्त एक श्लोक गीताई जी पर है। अन्तिम श्लोक भगवान् के लिए नमस्कारात्मक है।

### १६- चौदशस्तोत्रम् :

हरिराय जी ने इस स्तोत्र में किशोर और किशोरी की प्रार्थना करते हुए भवितव्य वात्स्य विश्वास का सूचन किया है।

### १७- श्रीकृष्ण शरणाष्टकम्

इसमें अष्टाक्षर मंत्र श्रीकृष्ण शरणं मम टेक के साथ दीनता पूर्वक शब्दों में भगवान् कृष्ण की स्तुति की गयी है। ऐसा कि ग्रन्थ के नाम से प्रकट होता है। इसमें आठ श्लोक हैं।

### १८- द्वितीय श्रीकृष्ण शरणाष्टकम् :

इस ग्रन्थ में भी अष्टाक्षर मंत्र की टेक पूर्वक आठ श्लोक हैं। परन्तु इसमें स्वामी का वियोगात्मक लिपि है।

### १९- अष्टाक्षर मंत्र गण स्तोत्रम् :

निवेदन गण मंत्र का अन्तिम वर्ण कृष्ण त्वारिम “ की टेक देकर चार श्लोकों का यह स्तोत्र बहुत ही मधुर और विनयपूर्ण है। भक्त की शरणा भावना का जितना वाग्रह इस स्तोत्र में है वैसा अन्य नहीं मिलता। इसमें संस्कृत का “शशिवचना” छन्द का प्रयोग हुआ है।

### २०- भगवत्पञ्चशतविधुन वर्णनम् :

इस ग्रन्थ में उनपचासी श्लोक हैं। भगवान् के वाहिनी और अग्नि चरणों के चिह्नों को वर्णन है। प्रत्येक चिह्न का तात्पर्य भी ध्वनित है।

### २१- नैवेद्य सम्बन्धिस्तोत्रम् :

छात श्लोकी में भगवान् की नैवेद्य ग्रहण करने का वाग्रह है।  
 वीतिम श्लोक में राधाजी से भी नैवेद्य ग्रहण करने की प्रार्थना है।

### २२- मध्याह्नलीला :

इस ग्रन्थ के नौ श्लोकी भगवान् कृष्ण की मध्याह्न की  
 गोचारण लीला का संकेत देते हैं। गोप बालक एवं बलराम सहित स्मणीय  
 यमुनातट पर वेणुनाद करते हुए लोक प्रसार के फल वीर भोजन ग्रहण करते  
 हुए कृष्ण का वर्णन मिलता है।

### २३- श्रीगोकुल प्रवेश लीला :

इन नौ श्लोकी में कृष्ण के सर्ववर्णन के साथ सार्वकाल  
 में गौरी के साथ गोकुल में प्रवेश का चित्रण किया गया है।

### २४- प्राणापिडाष्टकम् :

यह नमस्काराष्टक नौ श्लोकी का अष्टक है। वीतिम श्लोक  
 में फल भुक्ति है।

### २५- श्रीगिरिधराष्टकम् :

गोवर्धन लीला की तैर यह आठ श्लोक भक्त का वात्स-  
 निवेदन प्रकट करते हैं।

१- नैवेद्यं मां व्याज प्राणाप्रिये गोवधूषतेः ।

त्वन्मुतापीदधुरमि भीष्य भुङ्क्वन्तो धिक् प्रियः ॥

२- नानाकैलीरतं कृष्ण मध्याह्ने गौगणान्वितम् । प्रकृष्टं सः स्त्रीणां वेणुनादेन

### २६- प्रार्थनाष्टकम् :

इस वृष्टक में स्कान्त वात्पनिवेदन है।

### २७- गोपीजनवल्लभाष्टकम् :

इसमें गोपीजन वल्लभ की प्रणाम करते हुए भगवान् के श्री-विग्रह के सौंदर्य का चित्रण किया है।

### २८- प्रातःसुगतस्मरणम् :

बसंततिलका छन्द में लिखे गये दस श्लोकों में कवि ने सुगती-पासना की है। यह रचना बड़ी शोभनी है।

### २९- धीनागरीनागरस्तोत्रम् :

“मातिनी” छन्द में लिखे गये ये तीस श्लोक निर्दुजलोला का वर्णन करते हैं। कवि ने मन को सम्बोधित करते हुए कहा है कि तू० राधा सहित श्रीकृष्ण का वात्पय कर जो स्कान्त ध्रुव भवन में विराजे हुए हैं।

### ३०- विपरीत शृंगार फलकम् :

इसमें जीवन वस्तुष्टय है। भगवान् के विरहताप से पीड़ित स्वामिनी की उन बाणों की स्मरण कर रही है जिनकी उन्होंने भगवान् के साथ बिताये थे। संयोगकाल में जो सौभाग्य वाभूषण आदि धारण किये थे, उन सब वाभूषणों की वियोग के समय तर्पण करके स्वामिनी वपता हुआ सती से निवेदन करती है। प्रत्येक वस्तुष्टय की दूसरी पंक्ति में “स कालः पुरागन्ता,

यती में दुःसहोमम ' की पुनरावृत्ति हुई है। इस ग्रन्थ में विरह भावना की गहनता देखने योग्य है।

### ३१- श्रीमदराधाष्टकम् :

ठाठ शिलरिणी छन्दों में लिखा गया यह ग्रन्थ राधा की मानसीला का पीतक है। अन्त में श्लोक में कवि ने राधा से कृपा की याचना की है।

### ३२- श्री मुख्यशक्ति स्तोत्रम् :

जायाँ जीर उपगीति की छन्दों से मिला जुला चौदह, श्लोकों का यह ग्रन्थ राधा के प्रति कवि की उत्तम भक्ति भावना प्रकट करता है। कवि का विश्वास है कि वल्लभ का आज्ञा लेने से भगवान् शीघ्र ही फलदान करते हैं।

### ३३- श्रीस्वामिनी प्रार्थना अष्टकम् :

छात उपगीति छन्दों में कवि ने स्वामिनी राधा से कृपा की याचना की है। अन्तिम श्लोक शिलरिणी छन्द में है जिसमें उसने अनिश्चय दैन्य के साथ कृपा की याचना की है।

### ३४- श्री यमुनाविजयि :

ती श्लोकों की इस विजयि में कवि ने यमुना से कृष्ण भक्ति की दृढ़ता की याचना की है। ये श्लोक कतुष्टुप छन्द में हैं। प्रत्येक श्लोक



में कृष्ण और कृष्णा का प्रयोग बड़ी चतुराई से किया गया है।

#### ३५- श्री वल्ग्वशरणाष्टकम् :

छाठ अष्टक और एक फल भुक्ति इस प्रकार नौ श्लोकों में कवि ने वल्ग्व से मज्जनन्द वान की प्रार्थना की है। साथ ही वाचाय वल्ग्व के स्वभाव और माहात्म्य का भी पुरा संकेत दिया है।

#### ३६- श्री वल्ग्ववर्ण विज्ञप्ति :

छः श्लोकों की इस विज्ञप्ति में कवि ने तत्कालीन यमव्यवस्था के संकेत दिये हैं। कवि ने लिखा है कि मैं यमों के मय से पीड़ित हूँ। वाप हम को इस दुःख से मुक्त कीजिए। इन छः श्लोकों से हरिराय जी कालीन भारतीय स्थिति का पता चल जाता है।

#### ३७- वैन्वाष्टकम् :

प्रस्तुत ग्रन्थ के छाठ श्लोकों में कवि ने वाचाय वल्ग्व के प्रति अतिशय वैन्व प्रकट किया है और उनकी कृपा और की याचना की है।

#### ३८- हा हा वैन्वाष्टकम् :

जैसे अतिशय वियोग न सह सकने के कारण कवि ने हा हा शब्द का प्रयोग किया है। प्रत्येक श्लोक के कतुर्थ वर्ण में देहि में निज दर्शन की पुनरावृत्ति हुई है। इन श्लोकों में वल्ग्व के शारीरिक सौंदर्य का

भी संकेत मिलता है।

### ३६-वल्गुनमावाष्टकम् :

इस वाष्टक में वल्गुन के माहात्म्य का विवरण है। वाष्टक परंपरा के अनुसार - 'मावेदाविर्भावी यदि न भुवि वागीश भवनः' व्यक्ति की बार बार पुनरावृत्ति हुई है।

### ३७- श्रीवैष्णवराष्टकम् :

शिवरिणी हन्दी में ये नौ श्लोक आचार्य वल्गुन का न केवल माहात्म्य ही प्रकट करते हैं बल्कि यह भी सिद्ध करते हैं वे भगवान् के मुक्त कर्म के अवतार हैं।

### ४१- श्रीमदाचार्यवत्सलवतार साम्य रूप- निरूपणम्

यह ग्रन्थ गद्य पद्योत्पन्न है। गद्य के अतिरिक्त इसमें उनकार श्लोक हैं। इसमें वराह से लेकर अंतिम कल्कि अवतार तक आचार्य वल्गुन का सभी अवतारों से साम्य दिखाया । इसी कवि की बहुमूल कल्पना का परिचय मिलता है। एक बात इस ग्रन्थ से प्रकट होती है कि तैत्तिरीय जाति के वैष्ट ब्राह्मण थे । एक प्रकार से यह ग्रन्थ अन्तःसाध्य के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसमें आचार्य वल्गुन के भाता पिता का नाम, जन्म स्थान, कनकाभिषेक की ऐतिहासिक घटना, भारत पर्यटन, सुबोधिनी पद्मावतम्बन जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लेखन आदि महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है। इस ग्रन्थ का इस दृष्टि से बहुत ही महत्व है। इसे हरिराय जी की वैश कल्पलता प्रकट होती है।

१- अथात्म्यः स्मरणीयश्च तैत्तिरीयतिलकः प्रमुः श्लोक सं० ६६

### ४२- धीमहाप्रमो वष्टोपर शतनामानि :

वाचायं वल्गु के १०८ नामों के नाथ दो अनुष्टुप श्लोक एक वादि में और एक वन्त में दिये हैं। इन नामों से वल्गु के स्वभाव का अच्छा परिचय मिलता है। उन दोनों ग्रन्थों में हरिराय जी ने विट्ठलनाथ जी के सर्वप्रथम स्तोत्र का आधार अवश्य लिया है।

### ४३- स्वस्वामिपाण्डुगुलाष्टकम् :

१९ ग्रन्थमें वल्गु विट्ठल दोनों वाचायों की एक साथ प्रार्थना की है। बाठ श्लोकों में उनकी कृपा कामना करते हुए हरिराय जी ने प्रार्थना की है कि वे अपना हाथ मेरे मस्तक पर रख दें।

### ४४- धीमदाचार्यं चिन्तनम् :

यह ग्रन्थ बाईस श्लोकों का है। इसमें वाचायं की मन्त्र पद्धति पर चिन्तन किया गया है। धीमदाचार्यं चिन्तनम् में बीस भाग हैं। दूसरे भाग में बीस श्लोक हैं। इन बीस श्लोकों में विट्ठल जी मन्त्र पद्धति का संकेत मिलता है।

### ४५- प्रातःस्मरणम् :

इस श्लोकों में गोसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रति मन्त्र-भावना प्रदर्शित की गई है।

### ४६- श्री विट्ठलेश्वराष्टोपर शतनामावलि:

यह ग्रन्थ श्री वल्गु वष्टोपर शतनामावलि की परम्परा

में जाता है। इसमें गोसाईं विठ्ठलनाथ जी का संपूर्ण चित्र है। गोसाईं विठ्ठलनाथ जी का शारीरिक सौंदर्य, स्वभाव, प्रवृत्ति उनका परिवार, सभी का परिचय मिल जाता है। ऊपर नीचे दो वस्तुओं का संफुट है।

#### ४७- विठ्ठलविमोचकम् :

शिवरिणी इन्द्रों में लिखे गये इन नौ श्लोकों में गोसाईं विठ्ठलनाथ जी की परंपरा प्रार्थना की गई है।

#### ४८- श्रीगोकुलेशाष्टकम् :

शिवरिणी इन्द्रों में नौ श्लोकों में लिखा हुआ यह ग्रन्थ है। इसमें इन्द्रोंने अपनी धीमा गुरु जी गोकुलनाथ जी का बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। उनका गेहुवा सुन्दर वर्ण बड़े बड़े काले घात, फीने रेशमी दुफटे बादि के वर्णन से बहुत कुछ गोकुलनाथ जी के व्यक्तित्व का फल चल जाता है।

#### ४९- श्री गोकुलेशाष्टोत्तरनामावलि :

यह भी नामावलि की परंपरा का ग्रन्थ है। दो वस्तुओं के संफुट में गौरी गोकुलनाथ जी के एक ही जात नामों का उल्लेख है। इनमें उनके पूर्वज पत्नी आदि के नामों का उल्लेख मिलता है। कल्पित जीवन की घटनाओं का संकेत है। जैसे विद्वत् के मत का लण्डन, सारी से श्रेष्ठ, कंठी माला की रत्ना, काश्मीरी राजा, सौरी यात्रा आदि ऐतिहासिक बातों का फल चल जाता है। अतः साक्षात्की दृष्टि से यह नामावलि बड़े महत्व की है।

#### ५०- श्रीगुरुदेवाष्टकम् :

इस ग्रन्थ में साढ़े वाठ श्लोक हैं जिसमें श्रीगुरुदेवनाथ जी की महिमा का वर्णन है।

#### ५१- प्रभुस्वरूपनिरूपणाष्टकम् :

एक वाठ श्लोकों में श्री हरिराय जी ने अपने घर के निज श्रेष्ठ श्री विठ्ठलनाथ जी के स्वरूप का वर्णन किया है।

#### ५२- स्वप्रभुविजयि :

वसंततिलका, शिशिरिणी, शार्दूलविश्रीदित एवं मालिनी तथा पृथ्वी जादि संस्कृत शब्दों में यह वर श्लोकों का ग्रन्थ विठ्ठलनाथ जी की बड़ महिमा का वर्णन करता है।

#### ५३- भावस्वरूप निरूपणम् :

इस ग्रन्थ के पन्द्रह श्लोकों में हरिराय जी ने भगवान् की शृंगार रूप बताते हुए उनके भावस्वरूप का निरूपण किया है।

#### ५४- बहुरश्लोकी :

चार श्लोकों में हरिराय जी ने साधक भक्तों के लिए कुछ पालनीय नियमों का उक्ति किया है।

५५ से ५७ तक

इन तीनों ग्रन्थों में कुल मिलाकर तेरह अनुष्टुप छन्द हैं। भक्तिपथ में जाखू रहने वाले साधकों के लिए इसमें कतिपय शिष्टावर्गों की व्यवस्था है।

५७, ५८, ६० सिद्धान्तसौधोपनिरूपणम्

चत्वारसी एतकीं में भक्तों के लिए सिद्धान्त निरूपण किया गया है। भक्ति सेवा सिद्धान्त का भी इसमें संकेत मिलता है। हरिराय जी का मत है कि अपने प्रभु को सेवा भाव से जो भजते हैं उनकी मर्यादा भक्ति होती है और जो अपने प्रभु को 'प्रिया' भाव से भजते हैं उनकी पुष्टि भक्ति। भाव जो हो वे भक्ति मानते हैं।

६१- त्वमार्गसौधोपनिरूपणम्

इस ग्रन्थ में बारह अनुष्टुप छन्द हैं। साधक को पुष्टिपथ में रहकर किन बातों पर अधिक ध्यान देना है। यही इस ग्रन्थ में दर्शाया गया है।

६२- मर्ताफलाराधनम् :

वाठ बसन्ततिलका छन्द का यह ग्रन्थ मन को उद्बोधन देने वाला है। शरीर और धन का अभिमान छोड़कर नश्वरार्थों के भगवान् भक्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। यही इस ग्रन्थ का विषय है।

१- पति भावो हि मर्यादा, प्रिया भावो हि पीषणम् ।

भाव स्व यतो भक्तिस्तथात तदाण रूपणम् ॥

### ६३- राजभोग भावना :

इस ग्रन्थ में बारह श्लोक हैं। राजभोग में संयोग हुंकार की कल्पना की गई है।

### ६४- वीटिका समर्पण भाव निरूपणम् :

इस ग्रन्थ गजात्मक है। इसमें सम्प्रदाय विधि से ताम्बूल वर्पण करने की प्रवृत्ति और उसकी रसात्मक भावना का निरूपण है। इसमें ताम्बूल वर्पण करने की अन्तर्गम भावना हरिराय जी के स्कान्त भक्ति का निदर्शन करती है।

### ६५- स्वतन्त्रतैल :

इस ग्रन्थ में हरिराय जी के स्वतन्त्र चिन्तन का परिचय मिलता है। श्री गुरुना दी और श्रीकृष्ण का स्वरूप साम्य है। दक्षिण हस्त में नवनीत धारण करने का कारण जादि अनेक स्वतन्त्र चिन्तन के परिणाम इस ग्रन्थ में दिये हैं। इसमें बारह श्लोक हैं।

### ६६- फलविधिक :

हज्जीस श्लोकों के इस ग्रन्थ में हरिराय जी ने फल का विवेचन करते हुए क्लेश वीर्य और पूर्ण स्वरूप तीन प्रकार से इस आनन्द की प्राप्ति का रहस्य बताया है।

### ६७- भगवच्छास्त्र निर्णय :

इस ग्रन्थ में बीस श्लोक हैं। इसमें शास्त्रानुसार भगवान्, जातु और जीव आदि की व्याख्या की गयी है।

#### ६८- वाक् चतुर्मत्यात्वनिरूपणम् :

इस ग्रन्थ में तेजस श्लोक हैं। उन श्लोकों के द्वारा वाक् को कितना कष्ट होता है, उसको कैसे बश में करना चाहिए वादि का वर्णन है।

#### ६९- सर्वमोग्यसुधाधिव्य निरूपणम् :

सात श्लोकों के इस ग्रन्थ में भगवान् के रसान्तरूप का निरूपण है।

#### ७०- चतुर्भुजस्वरूप विचार :

यह नव अष्टात्मक ग्रन्थ है। इसमें नैताल्य त्रिभुज रूप श्री वसुदेव जी के धर्म का चतुर्भुज रूप के स्वरूपों का उद्घाटन किया गया है।

#### ७१- भावपीठकम् :

भावपीठकम् में पन्द्रह श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में यह सिद्ध किया गया है कि वाक् को वाक्पीठक के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि पुष्टिमार्ग में भावपीठक ही सर्वोत्तम फल है।

#### ७२- गोपीव्रजनदिन निर्वाणकम् :

इस ग्रन्थ में पञ्चीश श्लोक हैं। हरिराय जी इस ग्रन्थ में भक्तों के लिए वादेश देते हैं कि उन्हें ब्रज समय गोपियों की भाँति ब्रजाना चाहिए।

१- पुष्टिमार्ग भाव रूप फल सर्वोत्तम फलम् ।



### ७३- वास्याष्टकम् :

शाङ्ख्यविहीनित्त्व इत्येव मे तिस्रे गये ये जाठ एतौक प्राप्तापरक  
है।

### ७४- श्री नृसिंह वामन जयन्तिसुख व्रत वैशिष्ट्य निरूपणम्

संप्रदाय मे स्वीकृत चार जयन्तियां नृसिंह, वामन जादि  
जयन्तियां क्यों करनी चाहिए और कैसे करनी चाहिए इसका निरूपण किया  
गया है।

### ७५- श्री भागवत पुस्तक नित्य पूजन विधि :

इसमे वैदिक धर्मों से श्रीमद्भागवत महापुराण की बीहड़ो-  
फार पूजन विधि है।

### ७६-षट्पञ्चदशपरामर्शान्कजनि प्रायश्चित्तानि च :

यह एक प्रकार मे प्लगमठ अपराधों की सूची है। जिन्हें  
भगवद् अपराध कहा जाता है। उन अपराधों के फल और प्रायश्चित्त की हरिराय  
जी ने किये हैं। एक प्रकार से यह भगवद् भक्तों के लिए सदाचार की संहिता है।  
तन्त्र मे उन्होंने समस्त अपराधों के क्षम का उपाय गुरु को प्रसन्न करना और  
दीनता रहना बताया है।

### ७७, ७८, ७९- ८० अष्टपदियां सर्व जन्म फल हैं।

इस प्रकार हरिराय जी का समस्त बाह्यजय भक्ति सिद्धान्त

संप्रदाय रहस्य, शास्त्र निरूपण एवं व्याख्या और भाष्यात्मक है। उनका संस्कृत साहित्य उस प्रकार से वल्गु विद्वत् के ग्रन्थों के व्याख्या ही है। वे संप्रदाय के वाचार्थ थे वतः उन्होंने मुख्य रूप से संस्कृत में ही लिखा, किन्तु उनका भाषा ज्ञान भी उच्च कौटि का था। वे ब्रज, पंजाबी, मारवाड़ी, गुजराती आदि के भाषाओं के पंडित थे। वतः उन्होंने इन भाषाओं में भी पद रचना की है। उनके भाषा ग्रन्थों का परिचय आगे दिया जा रहा है।

#### (ब) श्री हरिराय जी के भाषा ग्रंथों का परिचय

श्री हरिराय जी का सर्वाधिक उपकार जो ब्रजभाषा के साथ हुआ था गण ग्रन्थों और विविध वार्ताओं की रचना करना। उनकी गण रचनाओं से न केवल हिन्दी साहित्य का ही कल्याण हुआ बल्कि संप्रदाय का भी कल्याण हुआ। उनके भाषा ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :

- १- महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता
- २- श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता
- ३- निज वार्ता
- ४- निज वार्ता दूसरी
- ५- महाप्रभु जी और गुहाई जी के स्वरूप की विचार
- ६- सीनाथ जी के चरन विष्टन
- ७- श्री गोकुलनाथ जी के बैठक चरित
- ८- चरण धन और व्याख्या
- ९- मार्ग शिक्षा
- १०- नवग्रह आषाढ़
- ११- वेष्णाव निच्य कृत्य

- १२- तृतीय घर की उत्सव पात्त्रिका
- १३- ६४ अपराध वर्णन
- १४- रास की प्रसंग
- १५- बन यात्रा
- १६- समर्पण गथार्य
- १७- समर्पण गथार्य ( दूसरा )
- १८- जप प्रकार
- १९- भगवत् स्वरूप निरूपण
- २०- प्रितलात्मक स्वरूप विचार
- २१- स्फुट वचनामृत
- २२- चौरासी वैष्णव की वार्ता भावनावली
- २३- दौ सौ भावन वैष्णवन की वार्ता भावनावली
- २४- सदाग्रसु जी की प्राकट्य वार्ता भावनावली
- २५- निज वार्ता भावनावली
- २६- घर की भावना ( दूसरी )
- २७- सात स्वरूपन की भावना
- २८- सात स्वप्न की भावना ( दूसरी )
- २९- चरणाचिह्न की भावना
- ३०- स्वाभिनो चरण चिह्न भावना
- ३१- सात वाक्मन के स्वरूपन की भावना
- ३२- बन यात्रा की भावना
- ३३- नवग्रहों की भावना
- ३४- शीनाथद्वारे की भावना
- ३५- सेवा भावना

- ३६- उत्सव भावना
- ३७- वसन्त हरी की भावना
- ३८- उत्सव भावना
- ३९- हृष्ण-योग की भावना
- ४०- हास-हरी की भावना
- ४१- भावना नय ।

श्री हरिराय जी ने संस्कृत के गद्य पद्य-आत्मक तथा ब्रज भाषा के गद्यात्मक विविध ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्रजभाषा काव्य की भी रचनाएँ की हैं। उनमें निम्नलिखित विशेष प्रसिद्ध हैं :

- १- निम्न लीला २- सनेह लीला ३- दानलीला
- ४- गोवर्धन लीला ५- दामोदर लीला ६- श्याम सगाँव जादि ।

श्री हरिराय जी द्वारा रचित सनेह लीला की अनेक हस्त-लिखित प्रतियाँ रसिकराय कृत "उदवलीला" जनमोहन कृत "सनेहलीला" मुकुन्ददास कृत "सनेह लीला" के नाम से मिलती हैं। यह कहा जा चुका है कि "रसिकराय हरिराय जी की ह्राप थी जो उनकी काव्य रचनाओं में मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जनमोहन और मुकुन्ददास भिन्न व्यक्ति थे जिन्होंने हरिराय जी रचित "सनेह लीला" की प्रतिलिपियाँ कर ली और वस्तु में अपने नाम भी लिख लिये। और बाद में लोगों ने उन्हें प्रमथश "सनेह लीला" के रचयिता मान लिये। हरिराय जी ने गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं में भी काव्य रचना की है। इनकी गुजराती रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

- १- महाप्रभुजीन स्वरूप नी भावना २- श्रीनाथजीनी भावना, ३- श्रीनाथदासी भावना ४- श्रीमहाप्रभु जीन स्वरूप नी भावना ,

५- श्री गुसाई जी न स्वरूप नी भावना ६- सात ब्रज बालकों न भावना  
 ७- चरणचिह्न की भावना ८- श्री स्वामिनी जी न चरण चिह्न नी भावना  
 ९- हृप्पन भाग नी भावना १०- श्री गोकुलनाथ जी नी रास नी प्रसंग वादि ।  
 इसके अतिरिक्त बधाई, दीनता वाग्य वादि के अनेक पद हैं। ऐसा प्रतीत होता  
 है कि कुछ ब्रज भाषा ग्रन्थों का अनुवाद गुजराती में हो गया और कुछ गुजराती  
 ग्रन्थों का अनुवाद ब्रजभाषा में हो गया । क्योंकि भावनापरक ग्रन्थ गुजराती  
 और ब्रजभाषा दोनों में ही मिलते हैं। जो भी हो उनके ग्रन्थों का संक्षिप्त  
 परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

वार्ता ग्रन्थ :

### १- महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता

गोसाई विठ्ठलनाथ जी ने इस ग्रन्थ की लिखा और  
 हरिराय जी ने इस पर टिप्पण दिया । यह ग्रन्थ विशुद्ध ब्रजभाषा में है।  
 इसकी ब्रजभाषा बड़ी मधुर है। उदाहरण के लिए - " तब श्री गुसाई जी  
 श्री वाचार्य जी की सेवक भाति तथा अधिकारी जानि के आज्ञा प्रमाण मानस  
 गयो सो मास है पर्यन्त श्री गुसाई जी भिनाथ जी द्वार पाव न धारे । "

" तब श्री वाचार्य जी महाप्रभुन की दक्षिण में प्रकट  
 होखे की कारण यह जो दक्षिण में भक्ति की जन्म है। तहाँ कोई सदिह करे,  
 जो दक्षिण में भक्ति जन्मी ताकी प्रमाण कहा ? "

### २- श्री गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता

इस ग्रन्थ में श्री नाथ जी के गोवर्धन फल पर प्रकट होने  
 की वार्ता है। सं० १४६६ ई लेकर सं० १८७८ तक की इतिहास है। प्राकट्य वार्ता

की भाषा अन्य बातों से मिलती जुलती है। उदाहरणार्थ -

“ सवारे राजमोग जाती बेग मई, एय की अधिवासन  
करै और शृंगार करै और एय सिद्धि कियो और खरास के बेत एय में जोत  
के दैहोली शिलाये लायै ठाढी कियो, ता पावै उस्ताकै बुलाय के सब उपहार  
कराये । ”

### ३- निजवाता

यह वाचार्थ वल्सम के व्यक्तित्वगत जीवन के अन्तर्गत प्रसंगों पर आधारित है। इसकी रचना चौरासी वैष्णव की वाता के अन्तर् ही हुई है, क्योंकि इस में ८४ वाता के उत्प्रेष कई स्थानों पर मिलते हैं। इसमें जो “भाव प्रकाश” है वह भाषा और लेखन शैली की दृष्टि से ८४ वाता के “भावप्रकाश” से बहुत कुछ मिलता है। अतः इसके संकलन और रचना का सारा श्रेय गी० हरिराय जी को ही दिया जा सकता है।

### ४- निज वाता द्वितीय

इसमें श्री वाचार्थ वल्सम के जीवन की रहस्य वाचार्थ है।

उदाहरणार्थ-

“ सौ अनुमान जो के मन में ऐसे काहे को वाई जो श्री  
वाचार्थ जो महाप्रभुन के स्वरूप को अनुमान जी का ज्ञान नाहीं है। तहाँ कोउ  
ऐसे कहै जो अनुमान जी तो श्री रामचन्द्र जी के अत्यन्त कृपा पात्र हैं। इनको  
श्री वाचार्थ जो महाप्रभुन के स्वरूप को ज्ञान नाहीं सो कैसे समझे लावो है ।  
यह है जो श्रीगुसाई के सर्वनिम में । श्री वाचार्थ जो महाप्रभुन को नाम कहै है,  
जो । ”

### ५- महाप्रभु गीसाई जी के स्वरूप को विचार

इस ग्रन्थ में हरिराय जी ने आचार्य वल्लभ स्व गीसाई जी के तीन स्वरूपों- वादिभौतिक, वाधिदैविक और वाज्यात्मिक पर विचार किया है। कहते हैं उन्हें महाप्रभु जी का और गीसाई जी का साक्षात् दर्शन भी हुआ था। इस प्रसंग की चर्चा वल्लभ कल्पद्रुम में आई है। महाप्रभु जी के दर्शन करने पर हरिराय जी ने एक पद की रचना की थी।

“ केसरि की धौवनी कटि केसरी उपरना लीडे ”  
वेऊ मुसिकात जात फुले न समात गात,  
कहत हरिदास मैं निहारे दुग भरि कै । ” १

महाप्रभु जी के साथ ही उन्हें गीसाई विठ्ठलनाथ जी के भी दर्शन हुए थे।

### ६- श्रीनाथ जी के चरण चिह्न

इसमें भगवान् श्रीनाथ जी के चरण चिह्नों की भावना और उनका रहस्य है। हरिराय जी की गहरी भक्ति भावना का गहरा परिचय मिलता है।

### ७- श्री गोकुलनाथ जी के बैठक चरित्र

इस ग्रन्थ में गोकुलनाथ जी की गोकुल, जतिपुरा, सोर, नाथदारा आदि की बैठकों की चर्चा है। वहाँ के वैष्णवों का सन्तुष्ट वल्लभता का भी संकेत मिलता है।

---

१- श्री हरिराय जी कृत महाप्रभु जी के बधाई के पद

### ८- शरणार्थी और व्याख्या

इसमें ब्रह्म सम्बन्ध के गण मन्त्र की व्याख्या की गई है। यह ग्रन्थ संस्कृत गण में भी मिलता है। इसका ब्रह्म भाषानुवाद श्री हरिराय जी ने स्वयं किया है तथा अन्य किसी ने इसका पता लगाना कठिन है।

### ९- मार्ग शिक्षा

इसमें पुष्टिमार्ग के मन्त्रों के लिए वाचरण का उपदेश है।

### १०- नवग्रह वाचार

इस ग्रन्थ में हरिराय जी ने सूर्य आदि नवग्रह धीनाथ जी में ही पटित किये हैं।

### ११- वैष्णव नित्य कृत्य

इसमें वैष्णवों के प्रतिदिन की चर्चा का वर्णन है।

### १२- तृतीय घर की उत्सवमालिका

इसमें श्री हरिराय जी ने तृतीय गृह के उत्सवों एवं सेवा पद्धति को चर्चा की है।

### १३- चौसठ अपराध वर्णन

इस ग्रन्थ में भक्त को भगवान् के प्रति जिन अपराधों से बचना चाहिए। ऐसे चौसठ अपराधों की व्याख्या है।



### १४- रास की प्रसंग

इसमें रासलीला विषय और फल साहित्य एवं भावनाएँ हैं।

### १५- वनयात्रा :

इसमें ब्रजभूमि में स्थित भगवान् कृष्ण की लीला स्थलियों की चर्चा है।

### १६- समर्पण गद्यार्थ :

इसमें ब्रह्म सम्बन्ध मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट किया गया है।

### १७- समर्पण गद्यार्थ ( द्वितीय )

इसमें श्री समर्पण का तात्पर्य और प्रयोजन है।

### १८- जप प्रकार :

इसमें शिष्टाक्षर मन्त्र एवं ध्यानाक्षर मन्त्र की जप विधि है।

### १९- भगवत्स्वरूप निरूपण :

ये भगवान् के द्विभुज और चतुर्भुज स्वरूप का निर्णय है।

### २०- दस धर्म :

इसमें भगवद्गीता के द्वावधरण योग्य दस सिद्धान्त हैं।

### २१- मार्गस्वरूप सिद्धान्त :

इसमें पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों की विशेषता समझायी गयी है।

### २२- पुष्टि दृढाव

इसमें भगवदीय अपनी भावना को किस प्रकार दृढ़ करे, इसकी चर्चा की गई है।

### २३- द्विजदत्तात्मक स्वरूप विचार

इसमें भगवान् के रसराज शृंगारात्मक स्वरूप का विचार है जिसमें शृंगार के उभय पक्ष संयोग और विप्रयोग की चर्चा की गई है।

### २४- स्फुट वचनमृत

इसमें श्री हरिराय जी के उपदेशात्मक वचनमृतों का संग्रह है।

### २५- चौरासी वैष्णवों की बातें ( भाव प्रकाश )

इसमें महाप्रसू बल्लभ के चौरासी शैक्तों के तीन जन्मों की भावनारें दी गई हैं।

### २६- दो सौ वैष्णवों की बातें ( भाव प्रकाश )

इसमें श्री० विट्ठलनाथ जी के दो सौ भावन शैक्तों के तीन जन्मों की भावनारें दी गई हैं। बातों पर भावप्रकाश नाटक टिप्पण हरिराय जी के मौलिक कल्पना का संग्रह है, जिसमें उन्होंने संप्रदाय के सिद्धान्तों का लक्ष्य रखा है।

### २७-२८ बातें भाव प्रकाश के टिप्पण सहित

इन बातों पर श्री हरिराय जी का भावनात्मक टिप्पण है।

३०- ३४ इनमें छान स्वर्णों, श्रीनाथ जी के चरण  
चिह्नों एवं स्वायिनी के चरण चिह्नों की भावनाएँ हैं।

#### ३५- नित्य लीला की भावना

इसमें भगवान् की नित्य सेवा की भावना है।

#### ३६- दादश निर्गुण की भावना

भगवान् की निर्गुण लीला की भावना की गई है।

#### ३७- वनयात्रा की भावना

इसमें भगवान् की लीला स्थलियों की वर्ण है। ब्रजभूमि  
का एक प्रकार से वाध्यात्मिक वर्णन है।

३८- नवग्रहों की भावना में सूर्यादि नवग्रह की श्रीनाथ जी  
के परिकर में ही वर्णना की गई है। संभवतः इसकी प्रेरणा श्री हरिराय जी  
श्रीमद्भागवत के पंचविं स्कन्ध से मिली हो ।

#### ३९- नाथद्वारे की भावना

इसमें नाथद्वारे के मंदिर की श्रीनंदराय जी की हथेली मान  
कर प्रत्येक स्थान को ब्रजभूमिफलक भावना की गई है।

#### ४०- सेवाभावना

इसमें श्रीनाथ जी की सेवामें मगवलीय की किस प्रकार भावना  
करना चाहिए उसकी वर्ण है।

### ४१- उत्सव भावना

इसी प्रकार उत्सव भावना भी तिलो गर्ह है जिसमें जन्माष्टमी से लेकर ज्येष्ठमे वसयाना तक के उत्सव हैं और उनकी वाध्यात्मिक भावना की गर्ह है।

### ४२- वसन्त वीरी की भावना

इसमें हरिराय जी ने वसंतोत्सव और होलिकोत्सव के वाध्यात्मिक तात्पर्य को समझाया है।

४३- उत्सव भावना में भी यही किया गया है।

### ४४- छप्पन भोग की भावना

हरिराय जी ने जन्मकुट की भावना में भी पूरा वाध्यात्मिक स्पष्ट दिया है।

### ४५- बाक वीरी की भावना

इसमें भगवान् की ताम्बूल सेवा के रसात्मक स्वरूप का तात्पर्य समझाया गया है।

### ४६- भावनात्रय

इसमें आधिमौक्तिक, आधिदैविक एवं वाध्यात्मिक भावनाओं का तात्पर्य स्पष्ट किया गया है।

निम्न लीला, सनेह लीला आदि लीला परक पदों में हरिराय जी ने कृष्ण चरित्र के प्रसंगों को लेकर ब्रजभाषा में बड़ी मधुर रचना की है।

उपरोक्त बियालीस ग्रन्थों में कतिपय संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद रूप में जागये हैं और कतिपय ग्रन्थों की पुनरावृत्ति हुई है। इस दृष्टि से हरिराय जी के ब्रजभाषा ग्रन्थ बीस - बाईस ही ठहरते हैं। सिद्धान्तपरक अथवा प्रकरण-परक ग्रन्थ तो कतिपय वैधित्यों के ही हैं, किन्तु विषय के महत्त्व और प्रतिपादन की सूक्ष्म शैली के कारण उनकी ग्रन्थ संख्याबिंदी गयी है। जो भी ही हरिराय जी का ब्रजभाषा साहित्य भी कम महत्त्व का नहीं है। उनका जेकरा बार्तावों का भाव प्रकाश ही स्वतन्त्र ग्रन्थ का स्वरूप ग्रहण किये हुए है।

श्री हरिराय जी के हिन्दी संस्कृत ग्रन्थों को यदि वर्गीकृत किया जाय तो केवल संस्कृत ग्रन्थों की ही बीस- बाईस प्रकार से बाँट सकते हैं जिसके अन्तर्गत भाव निरूपण, निराकरण, तात्पर्य अथवा रहस्य, विवृति लक्षणा, वर्णन और विधि आदि भाग किये जा सकते हैं। यहाँ केवल तात्पर्य उनके हिन्दी ग्रन्थों से ही है जिसका विभाजन चार प्रकार से किया जा सकता है :

- १- भावना प्रधान - जिनमें बार्तावें आदि जाती हैं।
- २- सिद्धान्त प्रतिपादक - जिनमें वैष्णवों के कर्तव्य, संप्रदाय के रहस्य एवं आचार्य वत्सल एवं गौसाई जी की उक्तियों की व्याख्याएँ समाहित हैं।
- ३- वैधित प्रधान ग्रन्थ - जिनमें उनका वैय्य भगवदीय के कर्तव्य स्तोत्र, साहित्य, दीनता और वाक्य आदि पद जाते हैं।
- ४- वर्णनात्मक - इनमें बनयात्रा, निम्न नियम, तीसा प्रसंग, भगवत् स्वरूप बर्णन आदि समाहित होते हैं।

उसके अतिरिक्त उनकी फुटकर विचार, प्रसंग, पौल, वंश वत्सलता के प्रसंग प्रकट हो रहे जा सकते हैं। वस्तुतः हरिराय जी का ज्ञान विपुल साहित्य है कि उसकी समझों में नहीं बाँधा जा सकता है। अपने वाक्य के शब्दों में उन्होंने जो लिखा है वह विचार के चारों ओर के सेतु से भिन्न है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा और भाषा पर असाधारण अधिकार, भरपूर अध्ययन और गहन चिन्तन की वपेक्षा रहती है। भगवद्गोपा के उपरान्त उनका सकल समय अध्ययन, मनन, चिन्तन और सेतु में व्यतीत होता था। उन्होंने एक ही पञ्चीस वर्ष से अधिक वायु पायी थी। इतनी बड़ी वायु के इतने महान् व्यक्तित्व से इतने अधिक ग्रन्थ लिखे जाना विशेष आश्चर्य की बात नहीं है।

#### प्रामाणिकता :

हरिराय जी के ग्रन्थों की प्रामाणिकता का प्रश्न अधिक जटिल नहीं है। उन्होंने अपने ग्रन्थों के वादि कथा अन्त में काँची न कहीं अपनी कर्तव्य अवश्य कर दी है। उनके संस्कृत ग्रन्थों के कृतत्व के विषय में तो कोई संदिग्ध ही नहीं। सभी में उन्होंने अपना नामोल्लेख कर दिया है। हिन्दी ग्रन्थों के विषय करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। कहीं तो हरिदास, हरिधन कथा हरिराय नामों का स्पष्ट उल्लेख ही है। अन्य भी रसिक, रसिकप्रियतम, रसिकराय, रसिकदास वादि उपनामों की बाप मिलती है। कहा जा चुका है कि रसिक बाप गोपी गोपिकातीकार मट्ट जी महाराज की भी रही है किन्तु भाषा-भाषा सेतो से हरिराय जी वलग से पहचान लिये जाते हैं। फिर गोपी-कातीकार मट्ट जी उनसे बहुत परवर्ती हैं। वे गिरिधर जी के प्रथम गृहपातों की द्वितीय शाखा के अन्तर्गत आते हैं। उनका जन्म भी हरिराय जी के देहावसान के एक ही साल वर्ष उपरान्त ही १८७६ में हुआ था।

हरिराय जी का महत्त्व संप्रदाय में संप्रदाय के वाचार्थ के रूप में, मबत रूप में उच्च कोटि का है ही , ऐस्क के रूप में भी वे सर्वोपरि हैं। वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ , विविध राग रागिनियों में रहे हुए उनके कीर्तन के पद वाज भी संप्रदाय के पैदिर में गाये जाते हैं। ब्रजभाषा के कवि के रूप में उनका अनुशीलन करने से पूर्व उनके वाचार्थ रूप और मबत रूप की नवीं जागे के अध्ययन में की जायेगी ।

श्री हरिराय जी का पत्र साहित्य :

हरिराय जी ने अपने परिवार के व्यक्तियों के लिए जो पत्र लिखे वे अनिषार्थकः सब संस्कृत में थे । जो अपने सेवकों को पत्र लिखते थे वे ब्रजभाषा में होते थे । सेवकों को लिखे हुए पत्र उपलब्ध नहीं । उनके अनुचर गोपेश्वर जी के लिए जो उन्होंने पत्र लिखे वे संस्था में झकतालीस हैं और श्लोक संस्था में लगभग छः सौ सात सौ होगी । इन श्लोकों को ब्रज भाषा टीका अनुज गोपेश्वर जी ने किया जो ब्रजभाषा गय साहित्य की अमूल्य निधि है। यह ब्रजभाषा टीका स्वयं एक ग्रन्थ के रूप में है। इनका विषय दैन्य, भावपूर्वक भगवान् का दुःख बाधय करने हुए जीवन की विवेक और वैराग्यमय बनाना है। लिखा पत्र पर विस्तार से विचार वागे प्रस्तुत किया जायेगा । यही लिखा पत्रों का विषय दिया जा रहा है। पुष्टिबीज के कर्तव्य, स्वरूपानुपास, दुःस्वर्ग का स्वरूप, भगवत्स्वरूप ज्ञान, शरण कृष्ण और दैन्य , धैर्य, रक्षाण, लोक-वेद-त्याग, दुःख विषयाद्य , प्रेमासक्ति, व्यसन स्वरूप कलप्राप्ति विचार, चार-कर्तव्य स्वापिनी भावना, दीनता की कलरूपता, चार सदाण, स्पर्ण संग और बाधय चिन्ता त्याग, त्यागा-न्याग विचार, विरह भावना, अष्टाक्षर स्मरण, सत्संग दुःस्वर्ग त्याग, भाव संरक्षाण, सत्संग से भाव- पीनण, बहिर्मुक्ता, कृपा से

कारण है। श्रीमदाचार्य चरण निष्ठा, भावगोपन, चात्सीस बाधक, विरहात्मक  
 वीरता, सुदिरत्नरक्षण हेतु, बः साधनों का विचार, वर्ण विचार, किस  
 प्रकार के हृदय में भगवान् पधारते हैं, निस्साधनता, दो प्रकार की भक्ति  
 का निरूपण, विवातीय संन त्याग, जल कमलतल स्थिति, निस्साधनता भावना  
 प्रकार, व्यापी बंकुण्ठ विचार, निवेदनानुसंधान सेवा, स्वदुःख निवेदन, सर्व-  
 सिद्धान्त संग्रह, भाव स्वरूप वादि बयालीस विषय शिखा फलों के हैं। संस्कृत  
 में इनके बृहत् शिखा फल प्रकार जाता है और ब्रजभाषा में बड़े शिखा फल  
 कहे जाते हैं। भाव प्रकार और बड़े शिखा फल यही दो ग्रन्थ हरिराय जी  
 की ब्रजभाषा और साहित्य के सेवा के लिए पर्याप्त हैं। उनका काव्य अपना  
 बला महत्त्व रखता है।



द्वितीय अध्याय

### कव्याय तृतीय

जी हरिराय जी के ग्रन्थों में तीन जन्म की भावना  
और सेवाओं का सेवा भाव का स्वरूप :

प्रवर्ण हरिराय जी का भावना साहित्य भी संस्कृत साहित्य में पुष्टि सिद्धान्तों, भावना पद्धतियों और पवित्र मार्ग की कृष्ण सरणियों से मग्न है। उनके कारण सम्प्रदाय का साहित्य वृत्तिय समृद्ध हुआ है। दर्शन, भगवत्सेवा और पवित्र सिद्धान्त तीनों चीजों में ऐसी कोई समस्या कदा प्रश्न नहीं है जिस पर हरिराय जी ने लेखनी न बताई हो। वस्तुतः वे सम्प्रदाय के सिद्धान्तों, पवित्र भावना और कोमल अनुभूति के वक्षाय कोश हैं। उनकी कृतियों में पुष्टि सिद्धान्त वाणीमान्त अनुस्यूत है। वाचार्य श्री बल्लभ में और गुलार जी में जो अटिलताएँ या दुर्लभताएँ हैं हरिराय जी उन सबके महाभाष्य हैं। उसका मूल कारण यह था कि हरिराय जी ने वाचार्य बल्लभ एवं पिटठल के ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया था। सुबोधिनी के तो वे एक प्रकार से वे वृत्तिय पण्डित थे। उन्होंने लिखा है कि जिसने श्रीवत्सभादीश का वाच्य नहीं लिया जिसने सुबोधिनी नहीं पढ़ी, जिसने राधावर श्रीकृष्ण की वाराधना नहीं की उसका इस भूतल पर जन्म ही व्यर्थ है।

इस प्रकार हरिराय जी ने जो कुछ भी लिखा है, उनके तीन ही प्रीत हैं। वाचार्य बल्लभ के प्रवर्ण ग्रन्थ और उनकी सुबोधिनी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा उनके जीवन पर्यन्त के कार्यों में ये तीन ही तत्त्व हैं

१- नाशितो वत्सभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी ।

ना राधि राधिकानाथो कृपा तज्जन्म भूतले ॥

- जन्मकल्पनिरूपणाष्टकम्- श्लोक सं० १

यह अनेक बार कहा जा चुका है श्री हरिराय जी महाराष्ट्र जी के पुष्टि सिद्धान्तों के व्याख्याता हैं, वतः उनकी पुष्टि सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए पहले बातों साहित्य को ही लेंगे । बातों साहित्य के अन्तर्गत लगभग दस बातोंवाली बातें हैं जिन पर हरिराय जी का टिप्पण उपलब्ध है। यथा-

- १- श्री नाथ जी की प्राकट्य बातें
- २- श्री बाबाय जी की प्राकट्य बातें
- ३- निज बातें
- ४- परा बातें
- ५- बैठक चरित्र
- ६- भाव सिन्धु
- ७- वष्ट सप्तान की बातें
- ८- षट् क्लृ की बातें
- ९- बीरासी वैष्णव की बातें
- १०- दो सौ बावन वैष्णवों की बातें

जिनमें से श्रीनाथ जी की प्राकट्य बातें एवं वष्टसप्तान की बातें के अधिकारी प्रसंग बीरासी एवं बावन वैष्णवों की बातें में उल्लिखित हैं। निज बातें, परा बातें एवं बैठक चरित्र प्रसुक्तः बाबायं दय की पारिभिक विशिष्टताओं से सम्बन्धित हैं। जिनमें से पुष्टिमार्ग के प्रारंभिक इतिहास के निर्माण के साथ ही मध्यकालीन विचार धाराओं का भी इतिहास भली भाँति निर्मित किया जा सकता है। 'भाव सिन्धु' में वैष्णव चरित्रों की संज्ञा सांप्रदायिक रहस्यमय भावों का उद्बोधन किया गया है। बातों साहित्य में उपलब्ध धर्म के सिद्धान्त

पदा के लिए हरिराय जी की व्यावहारिक समीक्षात्मक व्याख्या जी 'भाव-  
प्रकाश' के नाम से उन्होंने प्रस्तुत की है उसका अनुशीलन आवश्यक होगा।  
यह अध्ययन तीन प्रकार से प्रस्तुत किया जायेगा :

- १- धर्म का सिद्धान्त पदा
- २- साधन पदा
- ३- धर्म के सामान्य लक्षणों की प्रारंभिक विवेचन  
से सम्बन्धित है।

भाव प्रकाश में हम वस्तुम की दार्शनिक विचारधारा के सिद्धान्त पदा का  
स्वरूप देखना चाहेंगे। इसके अन्तर्गत -

- १- ब्रह्म का स्वरूप
- २- ब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व
- ३- ब्रह्म की बाधित्व तिरौभाव शक्ति
- ४- पुष्टिमार्ग में जीव की कौटिल्य
- ५- भाव प्रकाश विधित निरीध मुक्ति एवं संन्यास

वार्ता के दार्शनिक सिद्धान्तों पर विचार श्री हरिराय  
जी के भाव प्रकाश 'नामक टिप्पण के प्रकाश कथना संदर्भ में करना समीचीन  
प्रतीत होता है। 'भाव प्रकाश' हरिराय जी के महान् चिन्तन मन के आधार  
पर लिखा गया पुष्टिमार्गीय ग्रंथों का सुमेरु है। उसमें साम्प्रदायिक मति का  
स्वरूप पुष्टि जीवों का कर्तव्य निरूपण आदि सभी कुछ समाहित है। अतः  
भाव प्रकाश के सम्यक् मन्त्र से ही हरिराय जी का हार्दिक कथना मन्त्र स्पष्ट  
हो सकेगा।

भाव प्रकाश की तीन जन्म की भावना का रहस्य और उसके प्रीत :

पुराणों में जन्मान्तरवाद :

पुराणों में वृत्ति प्राचीन काल से चला आ रहा है।

गीता का प्रसिद्ध श्लोक :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय  
नवानि गृह्णति नरो पराणि ।  
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि  
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥  
- गीता २

जन्मान्तर का संकेत जो देता है। परन्तु पौराणिक जन्मान्तरवाद इससे कुछ वागे बढ़कर प्राणी की इच्छा, कर्म फल वगैरा कर्म भाग का आधार बताते हुए उसमें कार्य कारण का तार्किक जपता परंपरा का भी संकेत देता है । श्री हरिराय जी की तीन जन्म की भावना के मूल में विद्वानों ने पुराणों विशेषकर श्रीमद्भागवत का प्रभाव अधिक माना है। वतः यहाँ भागवत के कतिपय वे उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनकी एक से अधिक जन्मों की चर्चा बड़ी व्यवस्थित ढंग से मिल जाती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पुनर्जन्म वगैरा जन्मान्तर के मूल में जीव की इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप प्रवृत्तियाँ ही मुख्य हैं। पुनर्जन्म, फल कृपादि से युक्त, विकासवादि पुनर्जन्म के मूल कारण हैं। एक जन्म

में देहात्मा पूर्ण विकास होने के लिए कई वर्ण लगते हैं। उसी प्रकार दीव्रज वात्मा के पूर्ण विकास के लिए अनेक पुनर्जन्म आवश्यक होते हैं। दीव्रज के दीर्घ जीवन में एक जीवन एक दिन के समान है। अनेक श्रेणियों की सृष्टि में इस विषय-लय में एक जीवन एक श्रेणी कथमा एक कथा के समान है। जीवात्मा के विकास क्रम में एक सीपान है। अतः बाधिमौलिक, बाधिदैविक और बाध्यात्मिक तीनों प्रकार की पूर्णता प्राप्त करने की अन्तिमःसकृत् श्रेयणा जीवन में स्वाभाविक होती है। ब्रह्म के सिवा इस जगत् में और कुछ नहीं है। फिर भी अज्ञान दशा में स्थूल, सूक्ष्म शरीर और उनके स्थूल सूक्ष्म लोक व्यवहार बन्धनवत् प्रतीत होते हैं। यह अज्ञान दूर हो, इसके लिए बार बार इनका अनुभव प्राप्त कर उन्हें आत्म-सात् करके सहजावस्था में आ जाने के लिए इस लोक में व्यावश्यक पुनर्जन्म ग्रहण कर कर्म, उपासना, ज्ञान आदि योग साधन करना आवश्यक होता है। पुनर्जन्म या जन्मान्तर ग्रहण करने का यह एक व्यापक हेतु है। दूसरा हेतु विकासवाद है। विकासवाद अज्ञान से ज्ञान की ओर अभाव से भाव रूप की ओर ले जाता है। भारतीय विकासवाद का जोष के कर्मफल-मोक्ष सिद्धान्त से टकराव नहीं। कर्म कथमा वासना से बाध्य होकर भी जीवात्मा की नैसर्गिक प्रवृत्ति पूर्णता कथमा विकास की ओर ही है। पौराणिक जन्मान्तरवाद भी पूर्णता का लक्ष्य रखता है। अतः श्री हरिराय जी के तीन जन्म की भावनावी में भवितविष्ट भगवत्प्रेम का लक्ष्य निर्गुणा भवित की प्राप्ति है। हरिराय जी की इन तीन जन्मों की भावना पर विचार करने से पूर्व यहाँ श्रीमद्भागवत के जन्मान्तर के कतिपय उदाहरण अप्रसंगिक न होंगे।

राम मन्त्र श्री काल मुकुण्ड जी ने अपनी कई जन्म की चर्चा की है। वे भी शाप से प्रेरित होकर अनेक जन्म धारण करते रहे अन्त में

लोमश ऋषि के शाप से कौवा बने परन्तु वासनाशून्य होने से उन्हें वैशान्तर प्राप्ति के कष्ट से छुटकारा मिला ।

### श्रीमद्भागवत महापुराण में जन्मान्तर प्रसंग

नारद जी ने वात्स्य चरित्र बतलाते हुए व्यास जी से कहा है कि मैं पूर्व जन्म में एकदासी पुत्र था, विदुर जी स्वयं माण्डव्य ऋषि के शाप से दासी पुत्र हुए वे पूर्व काल में धर्मराज थे । भगवान् विष्णु के द्वार पाल जय विजय सनकादिक के शाप से तीन जन्म तक असुर हुए और बाद में भगवद् धम्म सिधारे । उसी प्रकार भगवान् कणभक्त के पुत्र भरत एक जन्म में मोह के कारण मृग हुए फिर ब्राह्मण हुए। उसी प्रकार वृत्रासुर चिकित्सु गंधर्व था और वह शाप के कारण वृत्रासुर हुआ ।

उसी प्रकार गजेन्द्र भी पूर्व जन्म में मद्र देश का राजा था और शाप के कारण गजेन्द्र हुआ । दशमस्कन्ध में यमलार्जुन पूर्वजन्म में कुबेर के पुत्र नलकुबेर और मणिग्रीव थे । शाप के कारण वृषा हो गए थे । सुदर्शन और शैलशूक उदार के मूल में भी शाप और अनुग्रह की कथा है।

१- श्रीमद्भागवत १।३

२-        ..     ३।१

३-        ..     ५।८-९

४-        ..     ● ६।१७

५-        ..     ८।२

६-        ..     १०।१०

७-        ..     १०।३४

बौद्ध वातकों में भी जन्मान्तर को सिद्ध करनेवाली कथाएँ हैं। वाराणसी में होने वाले बौद्धसत्त्व के पुराने जन्मों की कहानियाँ हैं। बौद्ध सत्त्व बौद्धों से मुक्त होकर बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं।

इस प्रकार भावप्रकाश में जिन भक्तों सेवकों की कथाएँ कही गई हैं उनके सात्त्विक राजस, तामस भाव के अनुसार उन्हें भगवान् लीलापथिक देख देते हैं और वे उस देख में अनुसार लीला में बार बार अवतरित होकर लीला कृ में प्रवर्तित होते रहते हैं।

वाधिमौक्तिक ५ वाधिदैविक और वाध्यात्मिक इन तीनों रूपों की कल्पना स्पष्ट हो सके, स्वार्थ वाचार्थ बल्लभ ने अपने ग्रंथ सिद्धान्त मुक्तावली में गंगा के तीन रूपों का उदाहरण प्रस्तुत किया है। कृष्ण साक्षात् पञ्चम पुरुषोत्तम सच्चिदानन्दघन हैं उनका वाध्यात्मिक रूप मानसी सर्वव्यापक बण्डु बण्डु में निहित है। यह उनका वाधिदैविक रूप भगवन्मन्दिर में स्वरूप भावना में प्रतिष्ठित है। दृश्यमान जगत् उनका वक्षर ब्रह्म रूप वाधिमौक्तिक रूप है। इसको और अधिक सुस्पष्ट करने के लिए वाचार्थ ने गंगा के प्रवाह रूप को वाधिमौक्तिक नक्ष पर स्थित देवी रूप वाधिदैविक और भक्तों के हृदय में विराजने वाला रूप वाध्यात्मिक है।

यही सिद्धान्त भाव प्रकाश में वाणीपान्त श्रीहरि राय जी ने गृहीत किया है। बीराजी वैष्णवों की वार्ता में प्रथम सेवक वामीदर दास हरशानी का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा।

१-बौद्ध वातक

२- सिद्धान्त मुक्तावली श्लोक ४-५-६-७



वामोदर हरसानी की वार्ता बीरासी वैष्णवों की वार्ताओं में प्रथम वार्ता है। श्री हरिराय जी के 'भावप्रकाश' के अनुसार वामोदर दास हरसानी का परिचय इस प्रकार है :

“ श्री वाचार्य जो महाप्रभु वामोदर दास को ‘दमला’ कहते हैं। सो यातें, जो - दमला , सो ‘वमला’ मखस करि कै रहित । तहाँ यह संदिह होय, जो साधारण वैष्णव में कबहू मत नाही, सो वामोदरदास के दरसन तें एना के नाम लिये तें पाप जाय, सो इनको नाम दमला सो वमला कहै, ताकाँ प्रयोजन कहा ? यह संदिह होय तहाँ कहत है, जो यह भक्ति मारग में श्री ठाकुर जी में प्रीति होइ तहाँ नाचें वमल है। जब श्री ठाकुर जी ने अधिक श्री वाचार्य जी में प्रीति होय तब तासों वमला कहिये । वामोदर दास को एक पुढ़ भाप श्री वाचार्य जी में है। बयौं, जो वामोदरदास की गोदि में मापी धरि के श्री वाचार्य जी पीढ़ें हते, सो गोवदनधर सादासत प्यारे तब बरषे “ निकट मति बावो, महाप्रभु जी जागै, “ ऐसी पुढ़ भाप है, जो उठि के श्री ठाकुर जी को दंडोत हू न किये । ” ----- और इन को नाम वामोदरदास याते हैं, जो - ‘पुरुषोत्तमसहस्र नाम’ में श्री वाचार्य जी कहै हैं, “ वामोदरी भक्तवश्यो ” और श्री सुबोधिनी जी में विस्तार करै लिखी है। जो पुरुषोत्तम सादासत भक्तन के बस दिसाये । ----- और और वामोदरदास को कौंफिक स्वरूप है जो ललिता जी को प्रणट्य है। उहाँ सगरी रहस्य सीता में श्री स्वामिनी जी की आज्ञाकारी जैसे ललित जी तैसे ही यहाँ वाचार्य जी की आज्ञाकारिनी ललित रूप वामोदरदास । जो जन्म हो तें बात ब्रतचारी सती रूप गृहस्थान्नम को जानत नाही । सो ललिताजी को भाव यह कीर्तन में जाननी-

हंसि हंसि दूध पीवत नाथ ।

मधुर कीमल वचन कहि, प्रान प्यारी साथ । १॥

कनक कटोरा मरुयो वसृत, दियो ललित हाथ ।

लाहिली कववाय फरसे, पावै वाप बजात ॥ २॥

चिन्तामनि चित्र बरयो सजनी, निरसि पिय मुसकात ।

श्यामा स्याम की नवल की नवल कवि परि<sup>१</sup> रसिक<sup>२</sup> बलि बलि  
जात ॥ ३॥

याको यह भाव है, जो दोऊ स्वरूप रतन ललित सज्या ऊपर बिराजे है,  
तहाँ ललिताजी कनक कटोरा में दूध लोटि के मिथी सुगंध डारि से वारें ।<sup>१</sup>

वातावरणों में शेरों के ही आधिदैविक या आध्यात्मिक  
रूप नहीं दिखाये गए हैं अपितु स्वयं वाचाय जो का भी आधिदैविक रूप स्व  
आध्यात्मिक रूप दिखाया गया है। भाव प्रकाश को प्रस्तुत पंक्तियों में वाचाय  
वल्लभ के स्वामिनी रूप की चर्चा इस प्रकार है :

“ ताको तात्पर्य यह है, जो श्री ठाकुर जी की बातों वापु  
श्री स्वामिनी रूप दामोदरदास ललिता सती रूप से नाहीं करी<sup>२</sup> । ”

उपर्युक्त उदाहरण दामोदरदास हरसानी का दिया  
गया है। चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की बातों में यावन्मात्र वैष्णवों

१- चौरासी वैष्णवों की बातों- भावप्रकाश सहित पृ० ४-६ ( करोल संस्करण )

२-

..

..

पृ० १३

के वाधिवैयक रूप एवं उनकी भक्ति का प्रकार प्रस्तुत किया जाता है :

वार्ता साहित्य के प्रतिभु निर्गुण भक्तों का वाधिवैयक रूप एवं कर्म

( श्री महाप्रभु जी के सेवक )

वार्ता सं०	सेवक नाम	कलौंकि लीला रूप	सेव्य स्वरूप	वस्तु
१	दामोदरदास हरसाहनी	तल्लिा जी श्रीस्वामिनी जी की सखी	मानसीसेवा के वधिकारी	प्रमलदाणा भक्ति की सिद्धि
२	कृष्णदास धन	श्रीस्वामिनी जी की दाया रूप विषासा सखी		
३-	दामोदरदास संपल वाले	चित्रा सखी	श्रीदासनाथ जी तरुजा- विजया है राजसेवा, यमुना भाव से जल- सेवा मानसी सेवा का वधिकार	दासभाव के
	लकी सेविका	कृष्णावैशिनी श्रीयमुना जी की सखी		
४	पद्मभिरदास	चैकलता सखी (श्रीस्वामिनी जी की )	श्रीमपुरानाथ जी	

- ४११ तुलसी श्रीमथुरानाथ जी सात्विक भक्त  
(पद्मनभिदास की पुत्री) मणिहृदला (चम्पकलता की सखी) देव्य
- ४१२ एक वैष्णव, जो सोरमा सखी  
तुलसी के घर काया ( श्री ललिता जी की)
- ४१२ पार्वती पद्मनभिदास की रूपविलासिनी श्रीठाकुर जी राजसी भक्त  
पुनवधू (सुचरिता की सखी)
- गुरुजीतमदास सुचरिता  
( चम्पक लता की सखी )
- ४१३ रघुनाथदास गुनाभिरान्या श्रीठाकुर जी तामसी भक्त  
(पार्वती का पुत्र ) ( सुचरिता की सखी )
- परमानंद सोनी चन्द्रका
- ५- रबीदाब्राणी रतिकला  
( ललिता जी की सखी )
- ६- छैठ गुरुजीतमदास हनुलिता श्रीमदनमोहन जी राजसी सेवा  
(काशी निवासी ) ( श्रीस्वामिनी जी की सखी ) के अधिकारी

६।१	शेठ की बेटी रुक्मिणी	मोदिनी (छन्दुलता की सखी )	श्री मदन मोहन जी	
६।२	शेठ का पुत्र गोपालदास	गौयत-कला (छन्दुलता की सखी )	श्री मदनमोहन जी	तलना गायक
७-	रामदास सारस्वत	प्रेममंजरी (राधा सहचरी की सखी कुमारिका के ग्रुप में हैं)	श्रीमदनमोहन जी (गंगा तट पर इन स्वरूप की प्राप्ति)	वैभ्य प्रधान
८-	गदाधरदास कपिल	कर्तव्य ( राधा सहचरी की सखी कुमा- रिका के ग्रुप में हैं )	श्रीमदनमोहन जी ( गौखर्ण ) ( यमुना जी का ज्ञात्रय )	देवीजीव तनुजा, विजया, भाव से मानसी सेवा की सिद्धि देकी जीव
९-	बेनीदास, माधव दास दोनों भाई- बड़ा निवासी	बेनीदास-मृगभाजन जी गाढ़ा के बेटे हैं। माधवदास- " रत्नप्रभा " तल्लता जी की सखी	श्रीमदनमोहन जी प्रिय जी	

माधवदास की

प्रशिक्षण

वैश्या

चन्द्रलता

( चन्द्रावली की  
सती )

श्री लालजी

देवी जीव

१०

हरवस पाठक

उतालिका

विद्याता जीकी  
सती

श्री ठाकुर जी

११

गोविन्ददास

भल्ला

मनमुखा गौप

(१) श्रीमधुरानाथ जी तापसी  
(महावन के) भवत

(२) श्रीगीवर्धनधर जी  
की सेवा-श्रीनाथ  
जी द्वार जाकर

(३) श्री कैचौराय जी  
(मर्यादापार्श्वीय )

१२

बम्पा राजाणी

रोहिनी

श्रीबालकृष्ण जी

बाताभाव के  
सेवा करती

१३-

गजबनधावन राजिय

(बागरा निवासी)

सुमवानना

(चन्द्रावली जी  
की सती )

श्री नवनीतप्रिय जी

मानसी सेवा  
के अधिकारी

१४-नारायणदास जी	मधुरदाणा (राधासहचरी की सखी )	श्री गोकुल चन्द्रमा जी	स्वरूपासक्त की प्रधानता
नारायणदास की भतीजी	चतुरा (मधुरदाणा की सखी )	श्री गोकुलचन्द्रमा जी	
कृष्णदास स्वामी	मृदुबेनी ( मधुरदाणा की सखी ) .	श्रीगोकुल चन्द्रमा जी	
१५- एक दावाणी (महावन निवा- सिनी )	मद्रा श्रीस्वामिनीजी की सौतरंगिनी सखी	श्रीस्वामिनी जी के भाव से, श्री वाचार्य जी के पद धरणाँ की क्षाप्ताले वस्त्र की सेवा	सुद्ध जीव
१६-जीयदास घुरी (बागरा- निवासी )	स्यामन (श्रीयमुनाजी की सखी ) स्यामा की सखी पाव है	श्री लाडिलेस जी	देवी जीव, उत्तम बधिकारी
गुरुजीवन दास	कावेरी	श्री लाडिलेस जी	

(जीयदास के पुत्र ) (स्यामा की सती )

बबूलदास

मनोहर

श्रीलाहिरस जी

(जीयदास जी के पुत्र ) ( स्यामा की सती )

कृष्णदास

हीरा

श्री लाहिरस जी

(जीयदास के सासु ) ( स्यामा की सती

हर जी

बबिधामा

श्री लाहिरस जी

(कृष्णदास के मित्र)

( स्यामा की सती

मथुरायत्त जी

मंजुलि सती

श्री लाहिरस जी

कृष्णदास के मित्र

( स्यामा की सती )

१७- देवाकपुर

प्रसीना

श्रीललितत्रिभंगी जी देवी जी

(जीयदास जी की सती )

देवाकपुर की स्त्री

रससीना

( जीयदास जी की सती )

१८-दिनकर सेठ

मनुवातुरी

श्री वाचार्य जी

देवी जी

(प्रयाग-निवासी )

(श्री ठाकुर जी सती )

द्वारा

कथा सुनने में ही

वासवित



- १६-दिनकर दास      धरानन्द      ब्रह्म सम्बन्ध की पुत्री  
(मालवा-निवासी)      ( नंदराय जी के      लिखी हस्ताक्षर की सेवा  
पाठ )
- मुकुन्ददास      भुवनन्द      देवी जीव  
(मालवा-निवासी)      ( नंदराय जी के पाठ )      मानसी सेवा  
के अधिकारी
- २०- प्रमुदास बलीटा      मम्मयमोदा      भीमवनमोहन जी  
तलिबा जी की सती
- २१- प्रमुदास पाट      कतईसी      श्री ठाकुर जी      देवी जीव  
सिंहनंद निवासी      (तलिबाजी की सती)
- २२- गुरुजीमदास      माधवी      श्री ठाकुर जी      देवी जीव  
(भीमन्दावली जी  
की सती )
- गुरुजीमदास की      पात्नी      श्री ठाकुर जी      देवी जीव  
स्त्री      (भीमन्दावली जी  
की सती )
- २३-विपुलदास कायस्थ      हरनी      स्वरूपासवित  
(श्री ठाकुर जी की      की सिद्धि  
की सती )

- २४- पुरनमत जात्री      चित्रलेखा      मानसी सेवा  
के अधिकारी  
( श्री तल्लिता जी की सती )
- २५- जादवेन्द्र दास      मनीम्पता      देवी जीव  
कुम्हार  
( नन्दराय जी की गाय )
- २६- गुणार्धदास सारस्वत      गोविन्द कुँड स्थित      श्री ठाकुर जी  
कदम्ब वृक्ष का एक  
" " सुखा " "
- एक वैष्णव      चतुरा      श्री ठाकुर जी  
( श्री बन्द्रावली जी की  
सती )
- २७- माधवभट्ट काश्मीरी      रत्ना      श्री सात जी  
( सुबोधिनी के लेख ) ( श्री यशोदा जी की  
दासी राधा सहचरी  
की सती )
- २८- गोपालदास      रत्नासिका      श्री ठाकुर जी      देवी जीव  
( श्री यमुना जी की सती )      कुम्हार की  
प्रधानता
- पद्मारामस      विमला      देवी जीव  
( श्री लक्ष्मणी जी की सती )      दासका  
सीता के  
अधिकारी

भाव की पंक्ति	रूपा	राजसी भक्त
	( श्री चन्द्रामयी जी की सती )	
विराजो	हरदा	
	( श्री चन्द्रामयी जी की सती )	
२६- पद्मारावत	विमला	श्री ठाकुर जी
	( श्री रुक्मिणी जी की सती )	
२७- पुरुषोत्तम जीशी	गुनझुटा	श्री लाल जी
	( विमला जी की सती )	
पुरुषोत्तम जीशी की स्त्री	हुवासा	श्री लाल जी
	( गुनझुटा की सती )	
२८- जगन्नाथ जीशी	श्रीरमी	श्री ठाकुर जी
	( हविर्बलि की सती )	
२९।१ जगन्नाथ जीशी की माता	हविर्बलि	श्री ठाकुर जी
	( श्रीस्वामिनी जी की सती )	देवी जीव ( एक अक्षर से प्राप्त )

३१।२	नरहरि जोशी	गन्ध रेशा	श्री ठाकुर जी	
		(कविप्रिय की सती )		
	महीधर	कर्णावती	श्री ठाकुर जी	देवी जीव
	( नरहरि का यथमान)	(श्रीचन्द्रावली जी		
	फुलवार्ह	की सती )	ठाकुरजी	देवीजीव
	(महीधर की बहिन )	(श्रीचन्द्रावली जी		
		की सती )		
३२-	राना व्यास	नागवैलिंग	श्रीठाकुर जी	
		(कन्दुलेखा की सती )		
	एक राजपूतनी	रसनी	वस्त्र-सेवा	देवीजीव
		( नागवैलिंग की		
		सती )		
३३-	रामदास सचौरा	सुमगा	दक्षिण के एक	देवीजीव
		(कन्दुलेखा की सती )	एक ब्राह्मण	
			द्वारा प्रत्य	
			श्री ठाकुर जी	
	रामदास की स्त्री	सुमगा		देवीजीव
		(सुमगा की सती )		

३४-गोविन्द दुबे	तनमय्या (सत्यभाषा की सखी )	श्री ठाकुरजी	राजसी भक्त
३५-राजा दुबे	कंजरी ( श्रीललिताजी की सखी )	श्रीठाकुर जी	शुद्ध भक्त दैव्य की प्रधानता
माधो दुबे	रसात्मिका (श्रीललिताजी की सखी )		
३६-उच्चमशलीकदास	सुशीला  (श्रीबन्ध्यावलीजी की सखी )	श्रीगीवर्धनधर जी की रसोई रीवा	सात्विक भाव की प्रधानता
३७- ईश्वर दुबे	मैना (श्रीबन्ध्यावली जी की सखी )		
३८-वासुदेवदास	मनसुखा  (श्री नन्दराय जी के त्वास )	सरस्वती नदी तट से प्राप्त श्रीवामीदर जी	
३९- बाबा केतु	श्रीरमणी (विवाता जी की सखी )	श्रीकल्याणराय जी	देवी जीव

कृष्णदास	कामलता		देवीजीव
( विद्यालयाजी की सही )			
यादवचन्द्रदास	तिलकनी		देवीजीव
( सी.सेनी की सही )			
४०-जगतानन्द	माधुरी	श्रीठाकुरजी	देवीजीव
( मामा की सही )			
४१-वानन्ददास	नागरी	श्रीठाकुरजी	उपमजीव
विशम्भदास	मल्लिका	श्रीनवनीत प्रियजी के प्रसादी वस्त्रों की सेवा	उपमजीव
४२- एक ब्राह्मणी	शशिकला	श्रीबालकृष्णजी	
कैल निधा- सिनी	( श्रीललिताजी की सही )		
४३- एक दात्राणी	नीला	श्रीबालकृष्णजी	देवीजीव
( श्रीस्वामिनी जी की सही )			
४४-गौरवा (साध)	नन्दा	श्रीदामोदरजी	
( बन्धुभागा की सही जी श्रीस्वामिनिजी की सही हैं )			

समराई (बहू)	पुन्दा (चन्द्रभागा की सती जी श्रीस्वामिनी जी की सती है )	श्रीवामीदर जी	
४५- कृष्णादासी	ब्रज पैगला (श्रीस्वामिनीजी की सती )		देवीजीव
४६- बुला मिश्र	सुभन्दिरा (मिसाताजी की सती जी श्रीस्वामिनी जी की सती है )	थीठाकुरजी की मानसी सेवा	
४७- रामदास पुरीहित	कन्दर्पा (मिसाताजी की सती )	प्रसादी वस्त्रों की सेवा	देवीजीव
४८- रामदास चौहान	मनुस्त्री ( सल्लिताजी की सती)	श्रीनाथ जी	
४९- रामानन्दपंडित	निर्गुज के तमचर		
५०- विष्णुदासकृपा	कमला (श्रीचन्द्रावली जी की सती )	पीरी के सेवक	

- ५१- जीवनदास जात्रिय हंशवरी      श्रीनवनीतप्रिय जी  
( श्रीयमुनाजी की सखी )      के प्रसादी वस्त्रों की सेवा
- ५२-भगवानदास साबौरा सुन्दरी      श्रीनाथ जी के भीतरिया  
( सखिताजी की सखी )      रसोई बालभोग की सेवा
- ५३-भगवानदास सारस्वत सुगंधिनी      श्रीवाचार्य जी की पादुका  
( विसाखाजी की सखी )      सेवा
- ५४-वज्रयुतदास सनीढिया मधुरा      मानसीसेवा के      देवी जीव  
( सखिता जी की सखी )      अधिकारी
- ५५- अज्युतदास गौड़ मोहिनी      श्रीमदनपीहन जी  
( विसाखाजी की सखी वन्सगृहस्था में )
- ५६-वज्रयुतदास सारस्वत रसात्मिका      श्रीवाचार्य जी की  
( यमुना जी की सखी )      पादुका जी की सेवा
- ५७-नारायणदास सारस्वत ब्रजवितासिनी      देवीजीव  
कुमारिका की सखी



५८- नारायणदास माट	श्रीगीकृत के वानर	श्रीमदनयोदन जी	
५९- नारायणदास लुहाणा	कैतकी (विद्यासा जी की सती )	हनुम युक्त वस्त्र पर चरणारविन्द की सेवा	
६०- एक राजाणी	सुनान्दा (बड़े उपनन्द की स्त्री )	श्रीनवनीतप्रिय जी	देवीजीव
६१- दामोदरदास की माँ वीरबाई	वनदेवी ( लीला में यह पुतिदी हैं )	(१) श्रीकपूरराय जी (२) श्रीनवनीतप्रिय जी	देवीजीव
६२- सिंहनंद के श्री पुरुष दीनों	पुरुष का रूप रंग स्त्री का रूप- हँसा (श्रीविद्यासाजी की सती )	श्रीठाकुरजी	
६३- जूल का एक सुतार	श्रीदामा सता के प्राकट्य		
६४- एक राजिय	मोहिनी ( कुमारिका के युग में की )	श्रीठाकुर जी	देवीजीव

सका वन्यमार्गीय फिल्म	लक्ष्मि मोहिनी की सखी	देवी जीव
६५- लघु पुरुषोत्तमदास कवि	उमाशंकर (भीमदराय जी के भाट )	देवी जीव
६६- कविराज भाट	श्रीहृदय मुनि (भीमदराय जी के पुरोहित )	
६७- गोपाबदास	नृत्तकाल (भीललित्तजी की सखी )	
६८- जनार्दनदास चौफड़ा	कृष्णावली ( कुमारिका के रूप में की )	देवीजीव
६९- गुरु स्वामी	ईदी (भीमदराय जी की दासी )	
७०- कन्हैयाशात दात्रिय	कौदिनी (बागदा निवासी ) (भीललित्तजी की सखी )	

७१-नरहरवास गौड़िया (ब्राह्मण बंगला निवासी )	सुनीधरा ( कुमारिका के दूध की )	मीमदनमोहनजी मानसी सेवा देखोबीव
७२- नरहर संन्यासी	गुलाबी	स्वरूपानन्द प्राप्ति मानसी सेवा के वधिकारी
देणी कौठारी	गुलाबी की सली " पहिारी "	
७३- सद्गु पाण्डे	धन्वनाथ गौम (गुलामानजी के भार्य )	(नागदमन, उन्मदमन देवदमन का प्राकट्य)
सद्गु पांडे की स्त्री भवानी	श्यामदे ( जसोदा जी की ननद )	
सद्गु पाण्डे की पुत्री	रामदे ( जसोदा जी की सहो )	
७४-गौपालवास ( प्रयाग निवासी )	रत्नमहा (भीलहिता जी की सली )	मीमीवर्धनधर के बाग की सेवा । बाद में भीमाय जी के बाग की सेवा । तत्पश्चात् पान घर की सेवा ।

७५-कृष्णदास	नैदा ( मदन गीत की बेटी )	श्रीनिवनीतप्रिय जी के वस्त्रों की सेवा	
कृष्णदास की स्त्री	हमदा ( मदनगीत की बेटी )		देवीजीव
एक बनिया ज्ञानचन्द्र	फली ( गीत )		देवीजीव
७६-संतदास	चन्द्रिका ( चन्द्रावली की सखी )	श्रीनिवनीतप्रिय जी के प्रसादी वस्त्र सेवा	देवीजीव
७७- सुन्दरदास	सीता ( राधा उदारी की सखी )	श्रीठाकुर जी	देवीजीव
मीथीदास ( पहले बन्धावली सुन्दर दास के साथ से पुष्टिमार्गिय )	सीता ( राधा उदारी की सखी कुमारिका के रूप में )	श्रीठाकुरजी	
७८- भावजी पटेल	रुपा ( श्रीचन्द्रावली जी की सखी )	श्रीनिवनीतप्रिय जी के केलने के ठाकुर में से एक ठाकुर	

बिराजी	हरसा ( भीमन्नावली जी की सखी )		
७६-गोपालदास	कसबन्स ( भीमबराय जी के सगास )		देवीजीव
८०-बादरायदास	बुतिरामा ( भीमल्लिताजी की सखा )	भीमवनीतिप्रिय जी के प्रसादी वस्त्रों की सेवा	
बादरायदास की स्त्री	नीमा ( भीमल्लिताजी की सखी )		
८१-सुरदास	भीमपुरुषो के दृष्ट- सखाओं में से एक कृष्णसखा का प्रसूय कृष्णसखा का दुसरा स्वयं सखी है- बाम है- जन्मा लता	अमोघधर्मधर जी के यहाँ कीर्तन- कार	प्रेमलक्षणा पवित्र की सिद्धि मानसी सेवा में तल्लीन स्वरूपानन्द का अनुभव
एक बनिया	बिरसा ( भीमल्लिता जी की सखी )		देवीजीव

८२-परमानंद स्वामी

ब्रह्मसत्ता में तोक  
सत्ता के प्राकट्य  
निर्द्वय में तोकसत्ता  
का सती रूप है-  
नाम है 'चन्द्रभागा'

देवीजीव

एक चात्रिय

छीन लुकी  
( चन्द्रभागा की  
सती )

८३-कुम्भनाराज जी

ब्रह्मभाव में लुकी  
तथा सती रूप में  
( विद्यादाता )

कीर्तनकार

भतीजी

सरीवरी

एक राजपूत

नैना

८४- कृष्णदास

दिन की सीता में  
कामसत्ता हैं और  
रात्रि की सीता में  
नीलकण्ठाजी की  
कीर्तन सती हैं।  
जी तत्तिताजी के  
बार स्वल्प हैं :

श्रीगोवर्धनधर  
मंदिर के  
अधिकारी

१- स्वयं पाछ्या, जिसमें  
 श्रीगोवर्धनाय जी  
 श्रीस्वामिनी जी की  
 सीला निर्हुज सम्बन्धी  
 अनुभव करती हैं ।

२- कान्धसला रूप में वन  
 में जाकर दिन को सीला  
 रूप का अनुभव करती हैं।

३- दामोदरदास हरसानी होकर  
 श्री आचार्य जी के संग सदा  
 रहते हैं।

४- कृष्णदास रूप में सदा  
 श्रीगोवर्धनधर के पास  
 रहने का अधिकार है।

कान्धसला

केतिनी

( कुमारी का के रूप में हैं )

रामदास

मनोरमा

( श्री कान्धसली जी की  
 सती )

स्याम कुम्हार

रुतर्गिनी

( विद्याता जी की सती )

वैश्या की लक्ष्मी

बहुमासिनी

( श्रीसत्ताजी की सती )

नगायाई

( मुसिकमा के रूप की हैं )

तामस भक्त देवीजीव

**“ वाता- साहित्य में वर्णित निर्गुण पदा के ८४ अधिकारी एवं**

**उनके धर्म- रूप २५२ वैष्णवों का आधिदैविक**

**विवरण ”**

वा०७० ८४ निर्गुण वैष्णव	निर्गुण वैष्णवों	२५२ वैष्णवों	मूल भाव	२५२ वैष्णव
सं०	के आधिदैविक	के आधिदैविक		
	रूप	रूप		

१- दामोदरदास हरिदानी	हजिताजी	धर्मभावती	तामस भाव	१-नागजी
		सखिलाक्षिणी	सात्विक भाव	मट्ट
		चन्द्रकला	राजसभाव	२-कृष्ण
				मट्ट
				३-बसन्त
				हरिदानी
				जी
२- कृष्णदासमेघन	विशालाजी	मंदाकिनी	सात्विकभाव	१-मराठी
		प्रेमलता	राजसभाव	दास
		वत्सली	तामसभाव	२-नारा-
				यणदास
				३-बिट्ठल
				दास
३- दामोदरदास संभर	विप्रा जी	विप्राकिनी	राजसभाव	१-असुराजी
दास		मकरकिनी	तामसभाव	दास
		सुरी	सात्विक भाव	२-माधीदास
				३-हरजी



४-पद्मनाभदास	वम्पकलता	कौमोदिनी सारंगी रागिनी	राजसभाव १-भास्ता कीठारी सात्विकभाव २-गौपातदास तामसभाव ३-मानिकचंद
५-रजौ दात्राणी	रतिकला	जानन्धी प्रमोदिनी सरला	तामसभाव १-स्क ब्रासण सात्विकभाव २-गनेश व्यास राजसभाव ३-हरिदास
६-सीठ पुरुषोत्तम दास	कल्लुलता	बिदिनी सोनखी सारसिनी	तामसभाव १-मधुसुदनदास राजसभाव २-हर्षद्वन्द्व सात्विकभाव ३-माधोदास
७-रायदास	प्रमोदरी	प्रजांगना  मग्धा मालिनी	तामसभाव १-बाप-पेटा कायस्थ सात्विकभाव २-दीह माहं पेटल राजसभाव ३-स्क पेटल
८-गदाधरदास	कल्लुठी	रसिका भुद्वी  नीलवर्णी	सात्विकभाव १-स्क विह्वल तामसभाव २-स्क विह्वल परिभावासा राजसभाव ३-कृष्णदास
९-माधोदास	रत्नप्रभा	विमला प्रवातिका धुमति	राजसभाव १-जनादनदास तामसभाव २-हरिदास सात्विकभाव ३-मानिकचन्द

१०-हरिर्वश पाठक	गतिउतालिक	विष्णुत्न प्रमदा	तामसभाव १-एक नागर सात्विक २- सनादय ब्राह्मण भाव
		रसात्मिका	राजसभाव ३- एक राजपूत
११-गीविन्ददास भल्ला	मनसुखामोप	राजन परमानंद	राजसभाव १- एक छैठ की सात्विक २- एक कुम्हार भाव
		गुल्कला	तामसभाव ३- गीविन्ददास
१२-जम्पा राजाणी रीहिनी श्री		गौपदेवी लमसादेवी स्याम सैहिनी	राजसभाव १-एक ब्राह्मण तामसभाव २- एक सनीदिया सात्विक ३- माँ. बेटा भाव
१३-गज्जन धावन	सुम जानना	चन्द्र सलीनी चन्द्रमुसी प्रेम वत्सरी	तामसभाव १-पौरजादी राजसभाव २- एक ब्राह्मणी सात्विक ३- मयुरादास भाव
१४-नारायणादास	क मधुरेदान	गौपदेवी रूपदेवी दुर्गा	सात्विक १- वैष्णवकासहि भाव राजसभाव २- एक बदनागरी तामसभाव ३- गौहरदात्री

१५- एक पात्राणी	मद्राट	कामा	राजसभाव	१- एक साहूकार की बहू
		प्रेमकली	सात्विकभाव	२- स्यामदास
		कलतीतरिता	तामसभाव	३- इण्जी
१६- जीवदास	स्यामा	कृष्णारंग	सात्विकभाव	१- बेनीदास
		सुसदा	राजसभाव	२- एक पात्राणी कठयकठि
		कल्याणी	तामसभाव	३- दुर्गादास
१७- देवाकपुर	प्रसीना	त्रिवेनी	सात्विकभाव	१- पुराणीमदास
		वनराजी	राजसभाव	२- लक्ष्मीदास
		धानहीदेवी	तामसभाव	३- ध्यानदास
१८- विनकर सेठ	मनजाहूरी	कपीनिधि	राजसभाव	१- एक सेठ
		केसिनी	तामसभाव	२- एक राजपूत
		कौरी	सात्विकभाव	३- एक पेट
१९- मुकुन्ददास	धुवनव	करदिनी	सात्विकभाव	१- निहालबंद
		बर्ननिनी	राजसभाव	२- ज्ञानबंद
		रूपरसिका	तामसभाव	३- जनुनाथदास
२०- प्रभुदास कछोट्टा	मम्भय- पीदा	बकला	सात्विकभाव	१- पापी
		बीदेवी	तामसभाव	२- एक धीबी
		रतिभामा	राजसभाव	३- धीबीराजा

२१- प्रमुदास पाट	कलईसी	कामकता रासरसिका बहुरूपिणी	सात्विकभाव १- पकित कावेडा राजसभाव २- एक राजा तामसभाव ३- दयाभक्ष्या
२२- पुरुषोत्तमदास	मकखी	उषियारी भूमिनी कासिनी	सात्विकभाव १- एक पेटेस तामसभाव २- गंगाबाई राजसभाव ३- राजाजीतसिंह
२३- त्रिपुरदास	बहनी	श्रीभाग्य- सुन्दरी कुंजादेवी सौमिनी	राजसभाव १- प्रीतित सात्विकभाव २- विरक्ततावली तामसभाव ३- कंजरी
२४- पुरनमल पैवत	विनईसा	नरौ मंगला ब्रजगिरी	तामसभाव १- हतित पतित सात्विकभाव २- दीऊ विरक्त राजसभाव ३- साठौदर नागर ब्रासण
२५- गीर्विंददास भल्ला	मकीम्पता	नृत्यनिपुणा वातमति रसिकप्रिया	तामसभाव १- बैस्याकी कौरी राजसभाव २- बाघापी रणपूत सात्विकभाव ३- बीरवत की कटी
२६- गुर्वासास	सुवा	बादागी वातगीप विहिया	तामसभाव १- एक कुनबी सात्विकभाव २- डूधरी कुनबी राजसभाव ३- एक ब्रासण

२७- पाधनदास	रत्ना	गीवर्धनदास प्रणिमा भावोद्बोधिका	तामसभाव १-गीवीनापदास सात्त्विकभाव २- दीर्घ कुनबी राजसभाव ३-परमवैष्णव
२८-गोपालदास	लक्ष्मीकांतिका	गीरसिरी लिंगना रमना	सात्त्विकभाव १- एकगोडिया राजसभाव २- एक दाजाणी तामसभाव ३- वैष्णवविरक्त
२९-फुमा रावल	विमला	परमेश्वरी प्रणिता महोदरी	तामसभाव १- एकगुपर के पेटा की बहू राजसभाव २- एक दात्री चन्दनवाला सात्त्विकभाव ३- गोपालदास
३०-गुलामोयम जोशी	गुलकुटा	कृष्णाप्रिया कृशोदरी सत्यव्रता	सात्त्विकभाव १- एक दात्री राजसभाव २- लैन ब्राह्मण तामसभाव ३- एक कुनबी
३१- ज्ञानाथ जोशी की माता	इजिबिसंधि	मनीष्या ज्ञानन्ददायिनी जयडी	राजसभाव १- एक साहूकार मयुरा का । तामसभाव २- एक बनिया सात्त्विकभाव ३- तीन तैनावाला विरक्त
३२- राणा व्यास	नागवेलिका	मन्त्रिभा काभेश्वरी सिनिनी	राजसभाव १- परमानन्द सीनी सात्त्विकभाव २- रामदास लैनाथ तामसभाव ३- रेडिउर्वर ब्राह्मण

३३- रामदास सचीरा	सुमना	रामबाता रामाधिनी बातुरी	सात्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१-स्त्रीपुरुष २-स्वयं कुंवरी ३-एक ब्राह्मण
३४- गोविंद दुबे	तन्मय्या	सत्या रतिश्री कृष्णानुबरी	सात्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१- एक कुनबी २- देवा कुनबी ३- एक वैष्णव की बेटा
३५- राजा दुबे	कुंवरी	वैष्णवी गोरीबनी बागामाया	सात्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१- दोस्तीसंसार २-एक राजा ३-स्त्री पुरुष प्रयाग के
३६- उम शतीकदास	सुशोला	रत्नीगीप मत्तारंगिनी मधुरिमा	तामसभाव राजसभाव सात्विकभाव	१-एक ब्रह्मासी २- जन-भागवान दास ३- कल्याणमट्ट
३७- हरिवर दुबे	पैना	काली, कागना कन्या प्यारहुतारी	सात्विकभाव तामसभाव राजसभाव	१- दोहं माहं पेटल २-एकब्राह्मणी ३-मा-बेटा
३८- बासुदेवदास कम्हा	कासुता	तुरंगा गीप दोपा गीप स्नेहला	तामसभाव राजसभाव सात्विकभाव	१-एकबोर दिल्ली का २- तानधन ३- एक बलात

४६- बाबा हेतु	सौख्येनी	वीर-धीरा	सात्त्विक भाव	१-वैष्णोदास
		बभसा	राजसभाव	२- फनादनदास
		वचनबाहुरी	तामसभाव	३- ताराचंद
४७- जगतार्जुन	माधुरी	गौहनी	तामसभाव	१- एकम्लिख
		प्रवागना	राजसभाव	२- एक बाबाणी
		पुसिदिनी	सात्त्विकभाव	३- दोह मीस
४८- बानन्धदास	नागरी	मनोहपा	तामसभाव	१- एक बौहरा
		महामाया	सात्त्विकभाव	२- एक सैन्यासी
		किहटा	राजसभाव	३- राजा वासकरन
४९- एक बाबाणी	सशिक्षा	प्रधानदिनी	सात्त्विकभाव	१- मोची
वहिस की		उस्तामिनी	राजसभाव	२- एक सेठ बागरे
		दोहिनी	तामसभाव	३- एक वैष्णव
५०- एक बाबाणी	नीला	फन्द्र प्रभा	सात्त्विकभाव	१- दामोदर फा
प्रयाग की		बीरबाला	तामसभाव	२- मधुवनदास
		मनमोदिनी	राजसभाव	३- एक राजा पूर्व
				का
५१- गौरबा	नन्दा	ठीसिनी	सात्त्विकभाव	१- मुरारी बाबाय
		बनभूया	तामसभाव	२- एक बनिया
				राजमगर
		गावली	राजसभाव	३- एक दात्री पूर्व
				का

४५- कृष्णादासी	भक्तितनि	भक्तितनि	तामसभाव १- दोहोभाई पेट विरहात्मिका सात्विक २- एक विरहत भाव दानानी का नागईजबी राजसभाव ३- एक दात्री बागरी का
४६- ब्रुता मि	मैजिरा	मैजिरा मवातुरी प्रसविषा	तामसभाव १- मेहाधीवर राजसभाव २- दुष्टिके सात्विकभाव ३- एक पेट
४७- रामदास मेवाड़ा	ईदया	दीनवत्सला श्रवणप्रिया गुनप्रिया	सात्विकभाव १- स्त्रीपुरुष तामसभाव २- हरिदास राजसभाव ३- देवजीभाई
४८- रामदास चौहान	महस्ती	भावप्रसीना मैरनी-मैरनी कमयपुणां	सात्विकभाव १- एक डोकरी तामसभाव २- स्त्री पुरुष राजसभाव ३- एक डोकरी
४९- रामानन्द वैठित	तमवर	पेसुगोप कान्था रासी	सात्विकभाव १- एक विरहत तामसभाव २- एक नाऊ राजसभाव ३- एक पठान का पेटा
५०- विष्णुदास झीपा	कगला	पुदुभारिणी नजीड़ा रेणुका	सात्विकभाव १- स्त्री पुरुष तामसभाव २- साहकार के पेटा की कट्टी राजसभाव ३- उदव जवाडी



५१- जीवनदास श्री	हंसवरी	गीबर्धनी मनमाधुरी दर्शनातुरी	तामसभाव १- सीताबाहं सात्विकभाव २- प्रीता बबता राजसभाव ३- एक कायस्य वागरे का
५२- भगवानदास सारस्वत	सुनीधिनी	रोहित गीप रसाविसिनदी बीणा	तामसभाव १- एक ब्रजवासी राजसभाव २- एक बनिया सात्विक- ३- बीनकार भाव
५३- भगवानदास शचीरा	ईदरी	प्रेमकाशिका वाराधिका कलसिका	राजसभाव १- प्रेमजी लुहाणा तामसभाव २- वृन्दावनदास सात्विक ३- स्त्री पुरुष भाव
५४- वच्युतदास सनौडिया	मधुरा	कमलाक्षी मुक्ता भावनिपुणा	राजसभाव १- स्वभगवदीय तामसभाव २- स्वर्ध्याव गिरि राज वाता सात्विक ३- एक विरक्त भाव ब्राह्मण
५५- वच्युतदास गौड़	मोहिनी	कीरति कविता मुक्ता	सात्विकभाव १- एक दासी पूर्व का तामसभाव २- एक अन्य मार्गीय राजसभाव ३- एक राधा गौड़ वाता

- ५६- बभ्रुसदास धारस्वत सात्त्विका रासी गीष राजसभाव १-रूपा भीरिया  
बनरानी तामसभाव २- बूछो  
पीतवर्णी सात्त्विकभाव ३- स्त्री पुरुष  
राजगर् ६
- ५७- नारायणदास ब्रजविलासिनी कन्दिया तामसभाव १- कान्तबाई  
कायस्थ दुर्गता राजसभाव २- भीष्मदास  
दात्री  
नारायणी सात्त्विकभाव ३- नारायणदास  
पाण्डे
- ५८- नारायणदास वानर कृष्णाञ्जुली सात्त्विकभाव १- एक ब्राह्मण  
माट कल्पा राजसभाव २- माधुरिदास  
नयनप्रात तामसभाव ३- धर्मदास  
ब्राह्मण
- ५९- नारायणदास कैतकी रत्नप्रकाशिका तामसभाव १- दात्री दक्षिणा  
सुहाणा का  
वाराधिका सात्त्विकभाव २- सुर्ददास  
शेखर  
पूर्या राजसभाव ३- राजामानसिंह
- ६०- एक दात्राणीसिंह सुनन्दा प्रधनिवाहक सात्त्विकभाव १- कबूतर  
नंद की जतवर राजसभाव २- एक शैठ  
राजगर् का  
रिंदी तामसभाव ३- एक पुरुष  
दी स्त्री

६१- वीरबाई	वनदेवी	रत्ना	सात्विकभाव	१- एक बनिया वैष्णव
		मनोहर गीम	तामसभाव	२- रावल की ब्रजवासी
		नृदेवी	राजसभाव	३- राजा भीम
६२- बीजा स्त्री पुरुषदत्त	सहय रंगा	माया	सात्विकभाव	१- विरक्त ब्राह्मण
		संशयशीला	राजसभाव	२- राजापूर्व का
		ब्रजप्रिया	तामसभाव	३- कायस्थ सुरत का
६३- सुतार लडैत का	धीवामा	सिन्दुरी	तामसभाव	१ बनिया वैष्णव
		ईसा	सात्विकभाव	२- ईस
		विष्णुकसेनी	राजसभाव	३- पारधी
६४- एक दात्री मुरब की	मीहिनी	ब्रह्मल्लो	सात्विकभाव	१- पीताम्बरदास
		साध्या	तामसभाव	२- बेनीदास दात्री
		कमलाकान्ता	राजसभाव	३- एक वैष्णव
६५- लघुपुरुषगीम वास	उमाकिर	मनीषवा	तामसभाव	१- एक वैष्णव गुजराती ब्राह्मण
		बलदेवी	राजसभाव	२- गीपालदास
		सुन्दारति	सात्विकभाव	३- मां डेटी
		श्रीङ्गा		
६६- कविराव माट	साहित्य मुनि	वामनहरि	तामसभाव	१- दो ठग बीर
		वन:कामना	राजसभाव	२- सेठ विरक्त
		धीनरानी		
		देवकी	सात्विकभाव	३- गीवर्धनदास

६७- गीपालदास	सुत्कसा	सगुना मरुवी- गरुवी मीरंगी	राजसभाव तामसभाव सात्विकभाव	१- ब्रासणवैष्णव २- एक बाई- बेटा ३- उमदास दात्री
६८- जगद्वनदास	कृष्णावती	रामा सौत्रुहरी	राजसभाव तामसभाव	१- साहकार की बेटा २- एक सेवी ब्रासण का बेटा
		ब्रह्मभण्णा	सात्विकभाव	३- निर्मलन वैष्णव
६९- गुरु स्वामी	बन्दी	सुगन्धा तारा वरविन्दी	तामसभाव राजसभाव सात्विकभाव	१- कुनवी, साहबनिया २- ज्ञानन्ददास ३- गोकुल भट
७०- कन्हैयालाल दात्री	कमोदिनी	चर्किता फिलोरी सुर्मगल, धीर्मगल	राजसभाव सात्विकभाव तामसभाव	१- चाँपाभाई दात्री २- किलोरी बाई ३- दोउ भाई पेट
७१- नरहरि दास गोडिया	संगधरा	धीदेवी मनीहरणीम न्द्रा-का	तामसभाव सात्विकभाव राजसभाव	१- गुलाबदास दात्री २- एक बहटा ३- नी धन्यानी
७२- नरहरि सैन्यासी	गुलाबी	जन्ती गोपा श्री-पुरी	सात्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१- एक दात्रणी प्रयाग २- नारादास गोरेव ३- पुरुषास्त्री बतार्ह

७३- सद्गु पठि	चन्द्रमान	नखुरी	राजसभाव १- एक साहूकार (सभाज्य का)
		वस्त्रात	तामसभाव २- एक ब्राह्मण (सभाज्य का)
		कीधरी	सात्विकभाव ३- एक दात्री वैष्णव
७४- गोपालदास	रसमन्त्रा	वसुमति	सात्विकभाव १- एक दात्री वैष्णव
		कधरी	तामसभाव २- एक दानाणी जागरा
		धरानिमन्त्रा	राजसभाव ३- एक सेठ का बेटा
७५- कृष्णदास स्त्री-पुत्राण	मंदा	शुष्काहिता, मार्गी	सात्विकभाव १- सेठ की बेटा विश्वत
		भ्रातृलो	राजसभाव २- सेठ
		नवाहुरी- चैवता	तामसभाव ३- स्त्री- पुत्राण
७६- संतदास	चन्द्रिका	निर्मला- बाहुरी	सात्विकभाव १- सरावली की बेटा
		गोपासी	तामसभाव २- एक वैष्णव गजराव की
		धरा	राजसभाव ३- एक वैष्णव गुजरात का बनिया

७७- सुन्दरदास	शीता	मिन्दुरा, कक जानकी पीपासादेवी	राजसभाव तामसभाव मनोरमा	१- ताठवार्ह, धारवार्ह २- एक राजा गुजरात का ३- मदनगोपाल दास
७८- मावजी फेल	रूपा	रूपमयी कृष्ण मीता कधीरा	सात्त्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१- रूपमयी २- जाडा कृष्णदास ३- राधोदास
७९- गोपालदास नरोडपारी	दशवन्त	स्वामनीय मनमोहिनी हरि ली	तामसभाव सात्त्विकभाव राजसभाव	१- कटहरिया २- ब्रतवासगीरवा ३- एक राजा
८०- बादरामणदास	तुतिस्मा	प्रावती तुलसी नीकता	राजसभाव तामसभाव सात्त्विकभाव	१- पूखीसिंहजी २- तुलसीदास सात्त्विक ३- वृन्दावनदास
८१- सुरदास	दम्पति लता जी	चन्द्रेशा वैषा धरा	सात्त्विकभाव राजसभाव तामसभाव	१- नंददास २- सगुनदास ३- धीधी
८२- परमानन्ददास	चन्द्रभागजी	कुमा रसिद्धा यादवी	तामसभाव राजसभाव सात्त्विकभाव	१- इतिस्वामी २- रसतान ३- यादवेन्द्र दास

८३- कुम्भनदास	विशाखाजी	माया	सात्त्विकभाव	१- गोविन्दस्वामी
		चतुरा	राजसभाव	२- चतुरविहारी
		जासमति	तामसभाव	३- चतुर्भुजदास दात्री
८४- कृष्णदास	सक्तिाजी	विमला	तामसभाव	१- चतुर्भुजदास
		कोकिलकंठी सात्त्विक		
			माय	२- नाथदास
		वर्देश्वरी	राजसभाव	३- मगवानदास सहित

चतुर्थं अध्याय



## श्री हरिराय जी की भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भागवत महापुराण पुष्टि संप्रदाय रूप महाप्रासाद का मूलधार ग्रन्थ है। इसके प्रणीता बादरायण वेदव्यास ने इसकी एक सीधी परंपरा का संकेत दिया है। यह परंपरा स्वयं पछत्त परमात्मा भगवान् नारायण वीर ब्रह्मा के संवाद से प्रारंभ होती है। ब्रह्माभगवान् की नाभिकमल से उद्भूत पुष्टि के वादि कर्ता हैं। उन्होंने उद्भूत होकर परम तपस्या की। तपस्या की प्रेरणा भी उन्हें भगवान् की वशीरीरी वाक् से हुई थी। उसे ज्ञान की विज्ञान समन्वित था उसे सरहस्य सगीपणि बताया। यही विज्ञान समन्वित परम गुह्य ज्ञान जिसका रहस्य प्रेम लक्षणा भक्ति है भागवत का मूल कथ्य है। वाचार्थ वल्गु के प्रस्नान वतुष्टय में श्रीमद्भागवत पुराण ब्रह्म स्थानीय है। अतः उनके भक्ति मार्ग का प्रासाद भी भागवत की मूल भिन्नि पर स्थित है। अतः भागवत की भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। भागवत शब्द ही यह बतलाता है कि वह भगवान् उनके भक्त, उनका नाम, उनका रूप, उनकी लीलाएँ वीर उनका धाम आदि जिस ग्रन्थ में वर्णित है ही वह भागवत है। श्रीमद्भागवत के मंगलाचरण में भगवान् की परम सत्य स्वरूप बताया गया है। इसलिए भागवत के प्रतिपाद्य का संकेत भागवत के मंगलाचरण में ही दे दिया

१- इदं भागवतं नाम यन्मै भागवतोदितम् ।

संग्रहो यं विभूतंतीर्ना त्वमेतद्विपुली कृतम् ॥ २।७।५९

२- स चिन्तायन् दयदार मेकदाम्पस्युपा मणीद् दिगं दिर्त वयो विभुः ।

स्पर्शेषु जी दामिर्विर्त निर्वचनानानुत्त । यद्धर्माविदुः ॥ २।९।६

३- ज्ञानं परमं गुह्यं मे वद्विज्ञान समन्वितम् ।

सरहस्य तदीयं गुह्यंनविर्त मया ॥ २।९।३०

गया है :

“सत्यं परं धीमहि ।”

और इस परम सत्य रूप परमेश्वर की उपलब्धि केवल रहित धर्म से होती है। भागवत सात्त्विक ग्रन्थ है जिसके अधिकारी भासुक रहित है भागवत ग्रन्थ भगवान् की अवतारलीलाओं का निरूपण करता है। ये लीलाएँ इसमें हैं और भासुक भक्त उनसे वास्वाह । भगवान् का अवतार प्राणियों के दोष और भक्त के लिए है श्रीमद्भागवत में भगवान् परमस्व स्वरूप है उनकी भक्ति प्राणियों में वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है। भागवत में भगवान् की जिन लीलाओं की चर्चा की गयी है वह अनन्त होकर ही भक्तों ने उन्हें दस प्रकार की बताया है जिन दस प्रकार की लीलाओं का भागवत में निरूपण हुआ, वे हैं :

अत्र सर्गा विमर्शश्च स्थान पीषण मूलयः ।

मन्वन्तरे शानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ २।१०

निरोध श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की लीला है। अर्थात् दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध दोनों के ६० अध्यायों में कही गयी कृष्ण कथा का उद्देश्य ‘निरोध’ लीला है। निरोध ही जीव का लक्ष्य है। निरोध से तात्पर्य जीव का भगवान् में निरुद्ध होना अथवा प्रीतिर्हित होना । भगवान् में निरुद्ध होने वाली देवी जीव भक्त कहें जाती हैं। दशम स्कन्धीय कृष्ण कथा में जीवों का भगवान् में निरुद्ध होना अथवा भगवान् का जीवों में निरुद्ध होना बताया गया है।

१- श्रीमद्भागवत २।१।२

२- “ २।१।३

३- यस्यावतारी भूतानां जीमायकभाषय ॥ २।१।२३

वाचार्य बल्लभ उसी दृष्टि से स्वमार्ग में श्रीमद्भागवत महापुराण की और उसमें भी दशम स्कन्धीय श्रीकृष्ण लीला को महत्त्व देते हैं कि जीव अन्य मार्गों जयवा अन्य साधनों की अपेक्षा दशम स्कन्ध की मगवल्लीला से अति शीघ्र जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर ले । वाचार्य बल्लभ ने अपने परिवार, पुत्रों एवं शिष्यों को सदैव दशम स्कन्ध के पाठ का ही उपदेश दिया । इसका तात्पर्य यह है कि मन का निरोध दशम स्कन्ध की कृष्ण लीलाओं के अनुशीलन से होता है। निरोध का तात्पर्य है प्रपंच की विस्मृति पूर्ण भक्तों की श्रीकृष्ण में वासवित और श्रीकृष्ण की भक्तों में वासवित- इस अनुशीलन के सानिध्य से, भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह, वासवित और व्यसन की स्थिति होती है। भक्ति की अनुभूति में आराध्य श्रीकृष्ण फैलता हुआ बला जाता है और भक्त का हृदयस्थ भाव पुष्ट होता बला जाता है। पुष्टिमार्ग में भाव की प्रधानता है। यह भाव भावना से सिद्ध होता है। वाचार्य ने भाव पर ही सर्वाधिक बल दिया है। भाव की प्रधानता के कारण उच्च कृत , जाति , धर्म, वाचार सब गौण हो जाते हैं। ब्रज गोपिकाओं में भाव की ही प्रधानता थी । इस कारण बल्लभ ने गोपियों की भक्ति के क्षेत्र में गुरु माना था । ब्रज गोपियाँ सर्वथा वाचार-विचार, श्रवणार से शून्य थीं किन्तु वे कृष्ण से स्नेह भाववाली थीं । अतः

१- युवतो हरेस्तुविर्न परिवर्त्ययासी श्रीकृष्णमाय

निर्या दशमस्य पाठात् ॥ पद्म पुराण ( श्रीमद्भागवत महा० ४।८१)

२- मावो भावनया सिद्धः सार्धं नान्यादिष्यते ॥ स० नि० ८

३- कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रीयतागुरुवः सार्धं चतत् ॥ स० नि० ८

४- कवेमाः स्थियो वनवरीव्यमिचार दुष्टाः ।

कृष्णो नव वैद्य परमात्मनि स्नेह भावः ॥ १०।४७।५६

पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति संदीप में गोपी भाव पद्धति है जिन्हें दर्शन से कोई प्रयोजन नहीं। गोपी भाव में न तो ज्ञान साधना है न भव है न तीर्थाटन न अन्य कोई साधन। केवल तीव्र भावना की ही प्रधानतः है। इसलिए वाचायें ने कहा है -

“ सर्व भवता गोपिकावधयः ” अर्थात् सभी भक्तों की प्रेम की सीमा गोपिकाओं के भाव तक ही है। इसलिए गोपीजन सबसे अधिक श्रेष्ठ भवत है। स्वयं भगवान् ने स्वीकार किया है कि ज्ञान और वैराग्य सबसुख कल्याणप्रद है परन्तु पुष्टिमार्ग में ये कल्याणप्रद नहीं। स्वयं पुष्टिमार्ग के वाचायें महा-प्रभु वल्लभ स्त्री भावात्मक है। अतः स्त्री का परमधर्म सेवा तत्त्व। पुष्टिमार्ग में सेवा ही भक्ति का प्रथम और प्रसुत रूपान है।

पुष्टिमार्ग में सेवा का स्वरूप :

वफे <sup>४</sup> सिद्धान्त मुक्तामली <sup>५</sup> में वाचायें जी ने कहा है, “ कृष्ण सेवा सदा कार्या ” सेवा से भिन्न का निरीध होता है। सेवा से तात्पर्य यही है कि सेवक का मन वफे स्वामी में प्रीति हो जाय। तब तक भिन्न आराध्य में प्रवण नहीं होता तब तक भावना नहीं होती। इसलिए सेवा और भावना दोनों समान हैं <sup>६</sup> चेतस्तत् प्रवणम सेवा <sup>७</sup> और भावना से

१- श्रीमद्भागवत ११।२०।२५

२- स्त्रीभावपूरित विश्वः। सर्वाः : ११

३- पुष्टिमार्ग हरेदर्शयः। सुबोधिनी का० स्क० ६ अध्याय ११

४- सि० मु० १

भाव सिद्ध होता है। सेवा की सिद्ध भी भाव में ही है। भावयुक्त सेवा तत्त्व की प्राप्ति कराती है। इस प्रकार सेवा भाव, भक्ति सब परस्पर सम्बन्ध है और पुष्टिमार्ग में इनका वफा महत्व है।

हरि राय जी ने सेवा तत्त्व का बहुत गंभीर निरूपण किया था और उसकी विधि पर उनके बने ग्रंथ मिलते हैं। ब्रजभाषा में "सेवा सिद्धा" नामक ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने पुष्टिमार्गीय वैष्णव की दैनिक चर्चा का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। इस दैनिक चर्चा में वैष्णव की अपनी निज चर्चा और विग्रह चर्चा दोनों परस्पर गुम्फित है। वे लिखते हैं :

“ प्रातःकाल उठके श्रीमदाचार्य चरण की प्रणाम करने तापाहे देह कृति करके यथाविध स्नान करके श्रीमदाचार्य की स्मरण करके भगवन्मंदिर की प्रार्थना करके, मंदिर तोल के नमस्कारपूर्ण मार्जनादि करने मंदिर तोलती विरिया श्री बल्लभाष्टक को पाठ करिये झुहारी करत में अन्तःकरण प्रबोध को करिये । मंदिर वस्त्र करत सिद्धान्त रहस्य को पाठ करिये । तापाहे सिंहासन बिहाइर ता समय गोकुलाष्टक को पाठ करिये । तापाहे मयनी ज्ञान के भरिये, तासमय भक्तिवर्धिनी को पाठ करिये रात्री के फारी बँटादि पात्र ताय माँझि धरिये । ता समय सेवाफल को पाठ करिये । फारी भरती विरिया नवरत्न को पाठ करिये । मंगल मीन को पात्र तैयार करिये । तापाहे प्रभु को शय्या ते विज्ञप्ति करके जगहये” जय जय महाराजाधिराज, महामंगल रूप, कीटिकंदपं लावण्य श्रीमदाचार्य के वीतकरण भूषण, श्री गुसाईं जी के ताडिते , यशोदीत्संगला तित श्रीमदाचार्य के लोचन अक्षरणाशरण , शरणागतवत्सल जय जय जय ॥ ”

१- चित्तार्सता न हतारो । ( नवरत्न )

२- भगवदाम भगवन्ममस्ते । सेवा सिद्धा १

३- मार्जनात् कृष्ण गेहस्य ॥ .. २-३

४- पानी पाने हि ॥ .. ५

तापाह्ने सिंहासन पधाराह्ये<sup>१</sup> । तापाह्ने प्रभु हँ नमस्कार करने । तापाह्ने श्रीमदाचार्य पादुकाहँ नमस्कार करके जाह्य । तासमय सप्तश्लोकी को पाठ करिये । तापाह्ने मंगलमोग सजाके घर के विज्ञापन करिये । सामग्री साजने में मधुराष्टक को पाठ करिये । ता पाह्ने शय्या समारिये , तासमय दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका को पाठ करिये । पाह्ने मंगल मोग सरायके को फाही तच्छी बाढी प्रभुति सिद्ध करत में श्रीयमुनाष्टक को पाठकरिये । पाह्ने वाचमन कराह्ये । तापाह्ने फाही उठाय ठताय फेर महे समर्पिये । पाह्ने मुत्त्वस्त्र कराह्ये पाह्ने बीहटा समर्पिये । तापाह्ने मंगलार्ति करके शृंगार के लिये विनति करके स्नानशृंगारादि करिये । शृंगार करके सिंहासन पे पधराय पास में सामग्री घर के " ब्रजस्वीकर हत्यादि डेढश्लोकम् बीर" भाषण " हत्यादि दोय श्लोकम् विनित करे । तदुपरान्त गुप्त रस स्वामिनी स्तोत्र स्वामिन्यष्टक को पाठ करिये । तापाह्ने वाचमन कराह्ये सीर को डबरा समर्पिये<sup>७</sup> । फिर वाचमन कराय के वार्ति करिये । तापाह्ने सेतके के लिये फसादि धरनेक । तापाह्ने राजमोग धरके धूप दीप शैलोक कर तुलसी समझे । तापाह्ने नामावलि पाठ बीर वष्टादारादि जप करने । तापाह्ने समय अनुसार पूर्ववत् विनित कर वाचमन कराय बीहटा समर्पिये । पाह्ने मोग के पात्र स्यतादि सासा करिये । तापाह्ने सिंहासनके लैह पाटादि

१- भावात्पकतया ---- कृपयीपविशप्रभो । सेवाशिष्या ८

२- विंता सैतान । नवरत्न

३- ब्रजस्वीकरयुग्म० सेवाशिष्या १३-२०

४- कुरुवाचमन कृष्ण । बही २१

५- ताम्बूल स्वप्रिया । बही २४

६- प्रियावर्धन ॥ कृपाम ॥ बही २४- २८

७- ब्रजस्वीकृत०-- मे । बही ४७

विद्याय प्रभु को पधराय माता धरिये । पाछे कर्मगत नी निवृत्ति के लिए विनैति करनी । पाछे वस्त्रप्रदातनादिक सेवा करनी । पाछे प्रहर दिन फिक्कलो रहे तब प्रभु विज्ञप्ति सुं जगाय फलादिक समपिये । पाछे ब्रजमें पधारते प्रभु विनैति करनी भोग के दर्शनानंतर लंडपाट प्रभृति उठावन में वैष्णुगीत गीपी गीत को पाठ करिये । पाछे बनि बावे सो मोदकादि संध्याभोग समपिये । पाछे संध्याति कर शृंगार बड़े करके की विनैति कर शृंगार बड़े करके पैर्या कथवा दूध को छबरा वारोगाथ्ये । पाछे दोवा जोरि के सेन भोग की दूध भात हत्यादि सामग्री धरनी । पाछे समय में वाचमन कराय बीठा वरोगाय शयनाति करके पौडवे की विनैति कर शय्यार्थ पौडाथ्ये । सेन कराये पीछे सबौत्रमादि स्त-  
न्यार्गीय ग्रंथ को पाठ करिये, तथा श्रीमद्भागवत अवश्य पढिये सुनिये । ”

उपर्युक्त अष्टयाम सेवा में हरिराय जी के विषय में पाँच बातें स्पष्ट हैं।

- १- भगवान् के श्रेष्ठ विग्रह के प्रति चरम भक्ति भावना
- २- उनका स्वयम् का कृतित्व
- ३- निज कृतित्व में वाचार्थवरण बल्लभ के सार भूत कृतित्व का समावेश ।
- ४- श्रीमद्भागवत का चरम वाच्य
- ५५ श्रीहरिराय जी के मानस में श्रेष्ठ विग्रह का स्वरूप

१- परमकारुणिको नमोऽस्तुतः परमशोक्यतमो नहि मत्परः ।

कति विधित्य सदा मयि किं करे यदुन्मिर्त्तव्यमाप्तयाचार ॥

२- वस्त्रप्रदातनाहुष्ट संसर्ग ॥ से० शि० ७०

३- यथागोवधोन्मिर्त्त फलपुतादिर्क हरे ॥ से० शि० ७१

४- बलभद्रादयो ॥ वही ७३

५- श्रीमन्मन्त्रादिप्रिया ॥ वही ७५

६- दुग्धाभ्यादियमाभुषत ॥ से० शि० ७६ ७- मायात्मक ॥ वही ८०

### १) शैव्य विग्रह के प्रति शैवामास का स्वरूप :

श्री हरिराय जी की सेवा शिखा के आधार पर उनकी भक्ति का स्वरूप एवं उपर्युक्त पाँच तत्त्वों पर विस्तार से वित्तार करना यहाँ अप्रार्थनिक न होगा ।

१- शैव्यविग्रह के प्रति चरम भक्ति भावना में भक्त का भगवान् से कुछ इस प्रकार का तादात्म्य है कि वह सेवा में " यथा देहि तथा देव " के सिद्धान्त का प्रतिफल अनुसरण करता है। यह सेवा भगवान् को निज जन जान कर की जाती है। भक्त ममादमार्गीय मंदिरों के पुजारियों की भाँति एक लौटा जल चढ़ाकर चंदनादि लेप कर नैवेद्य के नाम 'पर दो बताशे रखकर वापसी करके छुट्टी पाजाता है। इस प्रकार की यह कर्मा नहीं वफ़ी सेवा है। उसमें भाव की गहनता फल फल पर वपिदिता है। चरम निष्ठा , आत्म निवेदन पूर्वक तत् सुख सुखित्व के सिद्धान्त का कठोर अनुसरण है। पुष्टिमार्गीय शैव्य त्रिभुवन नामक भगवान् से अधिक शैवक के निज जन है। वह उनसे कोई लौकिक वांछा न रखकर वितान्त उनकी सेवा में ही चरम आनन्द का अनुभव करता है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त वह अपनी स्वामी की सेवा में लगा रहकर निज योग योग की वासना का विमर्जन कर देता है। ऐसे भक्त के लौकिक का चरितार्थ स्वयं उनके स्वामी को करना पड़ता है। क्योंकि उनकी गौतोवत प्रतिज्ञा है, " योगयोग ब्रह्महम् " भगवान् के प्रति सुदृढ़ आश्रय भावना से ही हरिराय जी की सेवा शिखा का निर्वाह ही सकता है अन्यथा शेषमान भी यदि निज के योग योग की चिन्ता होगी तो सेवा निम नहीं सकेगी । महाशु बल्लभाचार्य ने इसी कारण सेवा के प्रसुत तीन प्रतिबन्धों में उद्विग्न को सबसे पहला प्रतिबन्ध



बीजित किया है। इस उद्देश की निवृत्ति भी भगवदुत्प्रेष बाधित है। जिस सेवक के मानसिक 'उद्देश' का सर्वथा निवर्तन हो गया है वही सेवा करने के योग्य है। सेवा के सच्चे स्वरूप को वही प्राप्त कर पावेगा अन्यथा सेवा एक फल भी लागे नहीं बढ़ पावेगी। सेवामें भाव ही बीज है और वही फल है। अतः उपस्थिति दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भाव रूप बीज, त्याग और श्रवण, कीर्तन से दृढ़ होता है। भाव बीज की दृढ़ता का प्रकार बतलाते हुए आचार्य ने कहा है :

बीजदाढ्यं प्रकारस्तु गृहेस्थित्वा स्वधर्मतः ।

व्याख्यातौ भजेन कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ॥ ( भक्ति व० २ )

भजन में चित्त की व्यापकता ही बीज भाव को दृढ़ करती है। बीज नाम ही उसका है जो दृढ़ हो और नष्ट न हो। बीज को पल्लवित, फूलित, फलित करने के लिए सत्संग, श्रवण कीर्तनादि भक्ति साधनों की उपयोगिता है। भाव के पुष्ट से पुष्टितर होते रहने से उद्देश दुर्बल पड़ता जाता है और सुदिता वृद्धि की प्राप्ति होने लगती है। उद्देश की समाप्ति और प्रतिबन्ध की विनष्टि होने पर 'वासवित' वाला भक्त का द्वितीय चरण प्रारंभ हो जाता है- "वासवस्था स्याद् गृहारुचिः" वासवित से घर और घर के भागों से अरुचि प्रारंभ हो जाती है जो सेवा के लिए बड़ी ही सहायक है। भोगेच्छा सेवा के मार्ग में बड़ी ही बाधक वस्तु है। जहाँ एक ओर से सेवा के तीन महान् फल- १- अलौकिक सामर्थ्य २- सायुज्य ३- सेवोपयुक्त देह की प्राप्ति होती है वहाँ सेवा रूपी

१- उद्देशः प्रतिबन्धीया । सेवाफल २

२- बीज भावे दृढेनुस्यात् ॥ भक्तिवर्दिनो १

३- बीजं तदुच्यते तास्ते दृढयन्माप्तिश्न्यति ॥ म० व० ४

४- म० व० ४

करपत्तली के मार्ग में तीन ही बड़े विघ्न हैं :

१- उद्वेग

२- प्रतिबन्ध और

३- भोगेच्छा

कहना न होगा सेवा के ये तीनों ही प्रतिबन्ध परस्पर सम्बद्ध वधवा अनुबद्ध हैं। एक में एक की भी उपस्थिति सेवा की पूर्णता के लिए घातक है। अतः उपर्युक्त तीनों प्रतिबन्धों से सुरक्षित रहकर वधवा बच जाने पर ही हरिराय जी की सेवा शिष्या के अनुसार सेव्य की वष्टयाम सेवा में सेवक सन्नद्ध रह सकता है।

वष्टयाम सेवा के निरूपण में हरिराय जी का कृतित्व वष्टयाम सेवा निरूपण में हरिराय जी ने "सेवा शिष्या" शीर्षक से नवासी श्लोक लिखे हैं और बीच बीच में "विशप्ति" विनय ) के लिए दो गद्यात्मक सण्ड दिये हैं। प्रथम गद्य सण्ड में ब्रजभाषा मिश्रित है। वह इस प्रकार है :

“ जय जय जय महाराजाधिराज परम मंगल रूप कीटि  
कंदर्प ताम्रपत्र श्रीमदानार्य के अन्तःकरण पूजण श्री गुसाई जी के ताडिते,  
यशोदीर्घतातित, ब्रजजन के सर्वस्व, राजीवलोचन, वशरण शरण, शरणागत  
वत्सल जय जय जय । ” यह विशप्ति ब्रजभाषा में है। और सेव्य स्वरूप की  
जगाने के लिए है। दूसरी विशप्ति संस्कृत में है :

१- सेवार्या फलत्रय अलौकिक सामर्थ्य सायुज्य सेवोपयिक देही वा  
कैष्ण्ठादिषु सेवार्या प्रतिबन्धकत्रय उद्वेगः प्रतिबन्धी वा भोगोवा  
वयाणां साधन परित्यागः कर्तव्यः ॥ सेवाफल

“ जय जय श्रीकृष्ण श्रीगोवर्धनोदरणाधीर दयानिधि दीनोदरणा  
 श्री विट्ठलेश महाप्रभो राजाधिराज राजीवलोचन वरुणा शरणा शरणा-  
 गत ब्रजपैर वाभित पारिजात महाप्रभो जय जय । ”

यह विज्ञप्ति उत्पापन भोग के समय की है। प्रस्तुत विज्ञप्ति में हरिराय जी के श्रेष्ठ श्री विट्ठलनाथ जी का संकेत तो स्पष्ट है ही, साथ ही साथ श्रेष्ठ का कैशोर रूप भी ध्वनित है। “शरणागत ब्रज पैर” तथा “वाभित पारिजात” में यक्षोदीत्संगलालित्यवाला प्रथम विज्ञप्ति का रूप प्रस्तुत विज्ञप्ति में नहीं। वैसे हरिराय जी बाल कैशोर अवस्थाओं के वान्दीलन में डोलित रहते हैं। उनके मानस का रसिक भाव बार बार उमड़ता रहता है।

दो गथात्मक विज्ञप्तियों के अतिरिक्त हरिराय जी के ८६२ श्लोकों में अष्टयाम सेवा का उवाच प्रसाह चित्रित है। साथ ही उनके हृदय की भवित भावना चरम वैभवं के साथ ध्वनित है। दशमस्कंधीय लीलाओं के परि-  
 प्रेक्ष्य में ये अष्टयाम सेवाशिखा का प्रासाद तो लड़ा किया ही गया है। किन्तु बीच में नंद यक्षोदा गोपी राधा आदि की सेवाओं का भी उन्होंने स्मरण दिलाया है। उनकी “कामि” कथा मर्यादाओं की सीमाँ दिसाते हुए श्रेष्ठ की किस कन बनाने की चेष्टा में हरिराय जी ने जिस माधुर्य भावापन्न होकर “सेवा शिखा” की रचना की है वह अपने में अद्भुत है। परिपरा और मौलिकता के अद्भुत समन्वय की सामर्थ्यवाले हरिराय जी अपने दिव्य कृतित्व के “वह” को नितान्त विस्मृत किये दुष्टिगीचर होते हैं। “सेवा शिखा” संस्कृत ब्रजभाषा मिश्रित कृति होकर उनकी भवित भावना का गहरा परिचय देने वाला ग्रन्थ है। भाषा की दुष्टि से अपनी तल्लि सुव्यवस्थित और मधुर संस्कृत अन्यत्र नहीं

मिलती । सेवक की भावना कितनी मधुर होनी चाहिए । सेवा शिखा उसका  
ज्वलंत प्रमाण है। एक दो उदाहरण उपर्युक्त कथन की पुष्टि में पर्याप्त होंगे ।  
कवि श्री राधा सर्व कृष्ण से भोजन के लिए प्रार्थना कर रहा है :

१- श्री राधि कहना सिंधी श्रीकृष्ण रसवारिधि ।

भोजन कुरु मगवता मुज्यता प्रीति पूर्वकम् ॥

- से० शि० १६ )

भोजन के लिए एक और प्रार्थना -

२- गौफिका भावतः स्नेहाद् मुवर्तताता गृहे यया ।

मदपिर्त तथा मुच्य कृपया गौफिकाफो ॥

( से० शि० ४४ )

सेवक को वर्णन की निवृत्ति के लिए अपने स्वामी से  
किन शब्दों में प्रार्थना करनी चाहिए :

१) प्रीतोदेहि त्वदास्य मे पुरुषार्थापत्तिर्क स्वतः ।

त्वदास्य सिद्धी दातारं न किंचित्तवशिष्यते ॥

- से० शि० ६३

२) स्तावदेव विज्ञाप्य सर्वदा सर्वदेव मे

त्वमीश्वरोद्योगिर्त ते श्रुद्धी र्हे न विदामिहि ॥

( से० शि० ६४ )

३) परमकातुणिको नमस्तपरः परमशोभ्यतमो नमस्तपरः ।

इतिविधित्य सदाभयि किंकरे यदुपिर्त ब्रजनाथतया चर ॥

- से० शि० ६५

उपर्युक्त उदाहरणों से श्री हरिराय जी की चरम दैन्य भावना, उनका सेव्य के प्रति दृष्टिकोण सभी कुछ ध्वनित है। हरिराय जी तक बातें बातें पुष्टिमार्ग में बाल भाव की सेवा में किशोर भाव और उसमें भी राधा कृष्ण की युगल उपासना घर करती जा रही थी। यह सब चैतन्य के परकीया भावात्मन माधुर्योपासना के प्रभाव का परिणाम था।

सेवा शिक्षा में हरिराय का मधुर कृतित्व कितनी सुंदरता से समाहित हुआ है। यह सब देखने की वस्तु है। संस्कृत ब्रज मिश्रित कृतित्व का सेवा शिक्षा ग्रंथ एक सद्भुत उदाहरण है।

३) निज कृतित्व में बल्लभ विट्ठल का समावेश :

“सेवा शिक्षा” की वास्तविक वाराधना का प्रारंभ ही हरिराय जी ने इस प्रकार किया है- “प्रातःकाल उठिकै श्रीमदाचार्य चरणार्थ प्रणाम करने। “चित्तसंतान हंतारो नवरत्न” इस प्रथम एक श्लोक से किया है। तदनन्तर पुष्टिमार्गीय सेवासूत्र के केन्द्र दत्तम स्कन्ध की महत्वपूर्ण कारिका - नमामि वृक्षेश्वरो- का भी पाठ सेवक के लिए आवश्यक है। इस प्रकार श्री हरिराय जी आचार्य बल्लभ की पा पा पर साथ ले चले हैं। भगवन्मंदिर में प्रीति करते ही आचार्य बल्लभ का साहचर्य सेवक के लिए अनिवार्य है। हरिराय दूर लड़े श्वेत निर्दलक की हैसियत से हैं। भगवत् सेवा और आचार्य की कृतियों का पाठ सब दोनों में कौन मुख्य और कौन गौण यह फल लगाना सेवक के लिए कठिन हो जाता है। यहाँ आचार्य के ग्रन्थ और सेवा कार्य का क्रम दिया जा रहा है। जिससे पता चल जायेगा कि हरिराय जी सेवक के मानस में कितनी

गहराई से वाचार्य को उतार देना चाहते हैं और स्वयं दूर लड़े रहकर उसका मार्ग दर्शन करना चाहते हैं :

- १- मैदिर सौतली बिरया - वल्लमाष्टक को पाठ करिए ।
- २- बुहारी करत में - वन्तःकरण प्रबोध को पाठ करिए
- ३- मैदिर वस्त्र करत - सिद्धान्तसहस्य को पाठ करिए
- ४- तापाई सिंहासन बिडाहर ता समय गोकुलाष्टक के पाठ करिए ।
- ५- मयनी ज्ञान के भरिए तासमय मयितवर्द्धिनी को पाठ करिए ।
- ६- रात्रि के फगारी बेटाढलाय भरि के धरिए- सेवाफल को पाठ करिए ।
- ७- फगारी भरती बिरया नवरत्न को पाठ करिये ।
- ८- वाचार्य पादुका कूँ जाहर तासमय सप्तश्लोकी को पाठ करिये ।
- ९- साम्प्रती साजत में मधुराष्टक को पाठ करिये ।
- १०- ता पाई शैय्या समारिये - ता समय दशमस्कंध की अनुक्रमणिका को पाठ करिये ।
- ११- फगारी, तष्टी, बीडा, प्रभृति सिद्ध करत में श्री यमुनाष्टक को पाठ करिए ।
- १२- शृंगार करके सिंहासन पे पधराय पास में साम्प्रती धरिँ --- विनैति करे ।  
तदुपरान्त गुप्तास स्वामिनी स्तोत्र 'स्वामिन्याष्टक' को पाठ करिए ।
- १३- पाई भीमदाचार्य ( पादुकाजी ) कूँ भोग धरती । तापाई 'नामावलि'  
( त्रिविधि तीसा ) पाठ और बेटादारी वादि जप करे ।
- १४- भोग के दर्शनानन्तर तण्डपाट प्रभृति उठावत में 'वैष्णुगीत' 'गीर्वाणीत'  
को पाठ करिए ।

१५- सेन करार पाई सर्वविधादि' स्तन्मार्गीय ग्रन्थ को पाठ करिये, तथा श्रीमद्भागवत त्वरय पढ़िए, सुनिए ।

उपर्युक्त ग्रन्थों में १- सुबोधिनीनवरत्न २- वन्तःकरण प्रबोध ४- मधितवर्धिनी ५- सेवाफल ६- मधुराष्टक ७- दशम स्कन्ध अनुक्रम-णिका ८- यमुनाष्टक ९- नामावलि आदि नौ ग्रन्थ आचार्य प्रणीत हैं।

१- श्री बल्लभाष्टक २- गुप्तास ३- स्वामिनी स्तोत्र ४- स्वामिन्याष्टक एवं ५- सर्वोप - श्री गौ० विट्ठलनाथ जी रचित हैं।

वैष्णुगीत, गीष्णीगीत - भागवत दशमस्कन्ध के क्रमशः २१ वीं ३१ वीं अध्याय हैं। इस प्रकार एक भक्त सेक ज्ञेयाम सेवामें बल्लभ विट्ठल के १४ ग्रन्थ एवं श्रीमद्भागवत के दो अध्याय इस प्रकार २६ ग्रन्थों का नित्य पाठ करता है और शरीर से भगवत् सेवा करता चलता जाता है। इस दृष्टि से हरिराय जी की 'सेवा शिखा' जो ८६ श्लोकों का ग्रंथ है एक निर्देशक ग्रंथ का कार्य करता है। जिसमें बीच बीच में उनके सेव्य का मधुर रूप और उनके प्रति चरम वैभवं तथा विनय की भावना जाती चलती है। भागवत बीज भाव को दृढ़ करने वाला ग्रन्थ है जो सेक के लिए अनिवार्यतः अवर्णीय एवं मननीय है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है हरिराय जी बल्लभ विट्ठल की सेवा में कितना महत्त्व देते हैं। यह ज्ञेयाम सेवा जिसमें भागवत की दशम स्कन्ध की तीसरावों का समावेश है हरिराय जी अपने शब्दों में कह भर डाली है अपनी कृति में बल्लभ विट्ठल एवं भागवत को अनुस्यूत करके वे कसीम सुत

संतोष का अनुभव करते हैं। वल्गु विट्ठल की जिन कृतियों का समावेश उन्होंने अष्टयाम पद्धति में किया है वे संप्रदाय की सुरुभूत भक्तिपरक रचनाएँ हैं। संप्रदाय के स्वल्प और रहस्य को जानने के लिए वल्गु विट्ठल की उपर्युक्त पन्द्रह कृतियाँ मेरुपण्ड का काम करती हैं।

#### ४- श्रीमद्भागवत का चरम वाक्य :

श्रीमद्भागवत का चरम वाक्य सेवा शिखा में क्रम और सेवा कार्य दोनों के मूल में श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का आधार रूप रहा है। अष्टयाम सेवा का जो क्रम प्रकार सर्व पद्धति मिलती है वह कोरी कल्पना मात्र नहीं है, उसे हरिराय जी ने संप्रदाय के चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवत से लिया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का वही मुलाधार है वल्गु विट्ठल की प्रणति पुरस्सर शेष सभी में फा फा पर भागवत की आधार मान कर श्री हरिराय जी ने सेवा मैदान का प्रासाद लुटा दिया है।

श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में दो धारारे युगपत् चलती हैं। नंदालय में माँ यशोदा द्वारा तथा स्वामिनी शीराधा , बाहर ब्रज सीप-तनियों, बनचारियों गोप बालकों, पुतिन्द कन्याओं आदि के द्वारा । यथा स्थान दोनों सेवा क्रमों का समावेश है।

क्रम को दृष्टि से प्रातःकाल से लेकर शयन पर्यन्त की सेवामें प्रातःकालीन कपारी भरने तथा मंगल भोग की तैयारी करने में श्री राधा



स्वामिनी का स्मरण किया गया है।<sup>१</sup> "ता पादं प्रभु को श्रयया है विज्ञप्ति करके जगाइए -" विज्ञप्ति का संकेत भागवत में सौमंगल्य गिरुः<sup>२</sup> में जो मिलता है उसे हरिराय जी ने अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है।

२) शृंगार - यतः स्नानं समाचर सर्वं शृंगार कृत्वा सिंहासने समुपवेश्य सापथी वीर्यं स्थाप्य ब्रज स्त्री करोत्यादि सार्धपथेन----- समपेयेत् ॥

भागवत में यही सब विहरस्वस्वलेखन में पूर्णतः संकेतित है।<sup>५</sup>

३) ग्वाल भोग - तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुदौ० की हरिराय जी ने "गोपिका भावतः स्नेहाद्" तथा गोपापि कथः फेन० में उन्हीं भावों को उतारा है।

४) राजभोग - भागवत में मध्याह्न भोजन की चर्चा यक्षोदा गृह ( नंदालय ) में वर्णित ब्रज सुन्दरियों से वर्णित वन में ह्राक के रूप में तीनों ही संकेतित है। हरिराय जी ने तीनों का संकेत दिया है।

१- पानोय पात्रहि ----- राधाराधरात्मकत्वेनभूयात् दूष्येवतत् स्वामिनी कर स्थाणि ॥

श्रीकृष्ण भोज्य पात्राणि --- सेवा सिद्धा ५, ६

२- श्रीमद्भागवत १०।५।५

३- उदेति विलितनाथ प्रियदासह जागृहि सेवासिद्धा ७

४- सेवासिद्धा २५

५- श्रीमद्भागवत १०।११।१८-१९

६- .. १०।१३।११

७- .. १०।११, १५-१६ तथा १०।२३।१६ तथा १०।२३।६७

वर्षात्न कर्तव्य भोजनं मातृवत्सल  
प्रतिष्ठासमिदं पुनं यावते जननी पुरम् ॥ स० से० मा० ६८४

ब्रज स्वानन्दतो० में ब्रज सुन्दरियों तथा गीर्वाणों द्वारा बनाए  
रूप में वर्णित भोजन का संकेत है।

५) बनोसर- अवचिद् पत्त तल्पेणु<sup>२</sup> ॥

हरिराय जी ने इसी बनोसर ( बनवसर ) को इस प्रकार  
दिया है :

भावात्मकात्मद् हृदय पर्यन्तं शेष रूप के  
रमस्व राधमा कृष्ण शयानी एव भावतः ॥ ३

६) उत्थापन भोग -

“ जनक्युपाहृतं प्रश्य<sup>४</sup> ” हरिराय जी ने इस अवसर के भोग  
के लिए लिखा है- “ ततश्चतुर्थं प्रहरे प्रसुप्तं प्रबोध्य फलादिभक्षयेत् ” बागी ने  
लिखी है :

यथा गोवर्धनं भुवतं फल मूलादिकं हरे ।

रामेण सलिभिः सार्धं पुलिन्दीभिः समर्पितम् ॥ ५

१- सेवाशिखा ७७

२- श्रीमद्भागवत १०।१५।१६ -१७

३- सेवाशिखा ८०

४- श्रीमद्भागवत १०।१५।४६

५- सेवाशिखा ७९

### ७) संन्यास

भागवत में यह दर्शन 'सं गौरव हुरित' में संकेतित है।  
हरिराय जी इसी दर्शन को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :

“दीपायणाद् गौर्धिका प्रसीद कृष्णानिधि ।”

### ८) शयन

“संविश्य वर शैल्यायां” हरिराय जी लिखते हैं,  
“कैलि भ्रान्त शया न श्रीराधा” तात्पर्य यह कि हरिराय जी की सेवा  
शिक्षा में उल्लिखित वन्द्याम सेवा का मूल ग्रीत श्रीमद्भागवत ही है जिसे  
उन्होंने अपनी मधुर भाव साधना के द्वारा पल्लवित पुष्कित किया है। भागवत  
का आधार होते हुए भी उसकी मौलिकता इस क्षेत्र में वस्तुतः है।

### ५- हरिराय जी के मानस में सेव्य विग्रह का स्वरूप

हरिराय जी का समय कैलाश परसे संकेत दिया जा चुका  
है कि वि० के ११ शताब्दी है। इस शताब्दी तक महाप्रभु वैतन्य का माधुर्य भाव  
उत्तर भारत में कम हुआ था। उनके राधा कृष्ण की किशोरीपासना का मानस  
में गहराई से पैठ गई थी और तीन राधाकृष्ण की सेवा वर्गों में राधा तत्त्व

१- श्रीमद्भागवत १०।१५।४२

२- सेवाशिक्षा ७

३- श्रीमद्भागवत १०।१५।४६

४- सेवाशिक्षा ८४

को वीर राधा भाव को वित्तिय प्रसुता दे रहे थे। उधर ब्रज में स्वामी हरि-  
दास का सही संप्रदाय जिस में सहचर्य की स्वासी की मधुर कल्पना की गयी थी  
बहुप्रवर्तित हो रहा था। उधर हित हरिश्च जी का राधावल्लभीय संप्रदाय  
ब्रज में वित्तिय मान्य हो गया था। इस सम्प्रदाय में प्रेमा भक्ति ही लक्ष्य थी  
वीर राधा भाव वाराध्य था। राधा के चरणारविन्द की अनन्य उपासना  
ही भक्त के जीवन का लक्ष्य थी वीर राधाकृष्ण के कति कुंज की स्वासी करना  
बाकरी करना ही भक्त का प्रधान कार्य हो गया था। माधुर्य रस से स्निग्ध  
यह उपासना बिनायी मानवी की शक्ति तथा समझ के बाहर की बात थी।  
इस मार्ग का पथिक बही हो सकता है जिस पर गुरु की अनन्य कृपा हो।  
राधावल्लभीय संप्रदाय में इस बात का स्पष्ट उद्घोष है कि :

“ श्री हित जी की रति कौज लावनि में एक जाने  
राधाई प्रधान माने पावे कृष्ण ध्याकर । ”

इस प्रकार हरिराय जी चैतन्य, हरिदास एवं हित हरिश्च तीनों ही भक्ति के  
वाचार्यों का प्रसादभू पाए हुए थे। चैतन्य तो उनसे बहुत ही पूर्ववर्ती थे।  
हरिदास एवं हितहरिश्च को उनका सप्तामयिक अवश्य माना जाता है। अतः  
इन तीनों भक्ताचार्यों का हरिराय जी पर व्यक्त वीर अव्यक्त रूप से प्रभाव  
पड़ना स्वाभाविक है। इसलिये रक्षि शिरोमणि हरिराय जी पुष्टिमार्गीय  
परम्परा में चली जाती हुई बालक कृष्ण की सेवा से वे कुछ दृष्टे हुए से प्रतीत  
होते हैं। उनके मस्तिष्क में जब तक नंदालय की प्रतीति कयवा भावना रहती  
है तब तक वे बालक कृष्ण की चर्चा करते हैं। किन्तु जिस क्षण उनके कृष्ण  
प्रकृति के मुक्त दीव में आ जाते हैं कयवा गोप सीमंतनिर्या के साथ झीझारत

होते हैं उसी पाण के एक किशोर बय वाले हो जाते हैं। हरिराय जी ने अपनी सेवा भावना में भगवान् कृष्ण के उन दोनों ही रूपों का यथास्थान अवतरण किया है। हरिराय जी भगवान् के वे सेवक हैं जो निरन्तर हर्याविष्ट किं किं वाते हैं। वे महाप्रभु जी के इस वाक्य के मूर्तिमान् प्रतीक हैं :

“ विषयाद्भ्रान्त देहाननावेशः सर्वथा हरेः ( सं० पि० ६ )

वतः हरिराय जी की रसिक भावना निर्गुण भक्ति वाली है उसमें “ काम ” जैसा इन्द्रिय सुख की पैकित भावना समाप्त नहीं । हरिराय जी की निर्गुण भक्ति का स्व प वागे स्पष्ट किया जायेगा , यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनके वाराह्य रसिक शिरोमणि ऐश्वर्य माधुर्य भावात्मन कोटि कंदर्प लावण्य युक्त साक्षात् मन्मथ के मन का भी मथन करने वाले हैं।

हरिराय जी के वाराह्य का स्वरूप किशोर बय का है। उससे प्रमाण के तिर निर्माकित पैकितयाँ पर्याप्त होंगी :

१) ब्रजेशो रस रूपात्मन् । शृंगार रसयाम्बुम् ।

स्वीकृतं च तदीय त्वात् स्वप्रियया यत्कृतं निशि ॥ १

२) राधिकाश्लेषातिराय भूषणोत्तराणात् प्रभो ।

निस्तित्कृत शृंगारगिरिहार्यं प्रीदये ॥ २

३) रमस्व राधाय कृष्ण सयानी रसभावतः । ३

१- सेवाशिक्षा ३३

२-     ,,     ७२

३-     ,,     ८०

हरिराय जी के शिष्य, उनके मानस मंदिर में प्रतिष्ठित वाराध्य यक्षोदीर्त्सग लालित नवनीत प्रिय बाल कृष्ण नहीं बल्कि राधा सहचर अधिक है। "राधाभाव" हरिराय जी का अभीष्ट भाव है। उनकी वैयक्तिक साधना इसी दुर्लभ भाव की संप्राप्ति की ओर उन्मुख है। अपने प्रकभावा पदों में उन्होंने नौ विलासों की पद रचना की है। प्रत्येक विलास में राधा, कृष्ण के साथ भिन्न भिन्न स्थानों में अपने अपने रूप के साथ उपस्थित होती है। और रास विलास में सम्मिलित होती है। सौंदर्य प्रेम और संगीत की सतत प्रवहमान इस त्रिवेणी में पाठक अवगाहन करता हुआ एक ऐसी दिव्य भूमिका में प्रवेश कर जाता है जो अतीन्द्रिय लोकातीत और अनिर्वचनीय है। वह इस रास विलास का तटस्थ द्रष्टा होकर समाधि कल्पसुख का अनुभवित्त हो जाता है।

हरिराय जी की इस रामयी मूर्ति के ऊपर जिन संप्रदायों के प्रभाव का ऊपर संकेत दिया गया है उनकी चर्चा करने से पूर्व हरिराय जी की निर्गुण मूर्ति का स्वरूप स्पष्ट करना सर्वाधिक समीचीन होगा। अतः उनके निर्गुण मूर्ति की यहाँ चर्चा की जाती है।

### हरिराय जी की निर्गुण मूर्ति :

यह संकेत दिया जा चुका है कि हरिराय जी अपने पूर्वाचार्यों बल्कि विद्वत्त के जन्य वप्रतिम भवत हैं। महाप्रभु बल्किाचार्य राधा भाव के स्कान्त उपासक थे। लोककाल की दृष्टि से उन्होंने यक्षोदीर्त्सग लालित बाल-कृष्ण मगवान् की मूर्ति का उपदेश दिया था किन्तु संप्रदाय की मूर्ति रूपी

लकट के दो चोरी "समर्पण" और "जनन्यता" के लिए उन्होंने राधा भाव की अपने वैयक्तिक भक्ति साधना के लिए बकाया था। महाप्रभु वाचायं वल्गु में स्त्री भाव की प्रधानता थी। इसका संकेत उनके पुत्र गी० विट्ठलनाथ जी ने अपने "सर्वविम स्तोत्र" में दे दिया है :

"श्री भागवत पीयूष समुद्रमय नमः ।

तत्सार भूत रास स्त्री भावपूरित विग्रहः ॥" १

वाचायं स्त्री भाव पूरित विग्रह थे। मातृ भाव उनमें होता तो उन्हें "मातृ भाव पूरित विग्रह" कहा जाता। स्पष्ट है कि वाचायं में राधा भाव है। वाचायं ने राधा की स्वकीया माना है। स्वकीया में सेवा समर्पण जनन्यता की त्रिवेणी अबाध रूप से बहती है। परकीया में प्रेम की तीव्रता ही तीव्रता है। प्रिय स्मरण का सातत्य है परन्तु सतत सेवा पूर्ण समर्पण का अभाव है। जनन्यता परकीया में परवश है स्ववश नहीं। अतः राधा भाव का बीजारोपण संप्रदाय में महाप्रभु वल्गुवाचायं से ही समझना चाहिए। विट्ठल से नहीं। अतः राधा भाव का बीजारोपण संप्रदाय में महाप्रभु वल्गुवाचायं से ही समझना चाहिए। विट्ठल से नहीं। इस दिशा में उनके "परिवृढाष्टक" "त्रिविध तीला नामावली" आदि ग्रन्थ प्रमाण भूत हैं। वाचायं के इस कान्त स्त्री भाव से उनके पुत्र गी० विट्ठलनाथ जी मली भाँति परिचित थे। अतः राधा भाव अथवा महामाव की धारा का सूत्रपात वाचायं वल्गु से ही पुष्टिमार्ग में प्रारंभ हो जाती है। आगे चल कर गी० विट्ठलनाथ जी ने महाप्रभु वल्गुवाचायं

१- सर्वविम श्लोक १६

२- महाप्रभु वल्गु की भक्ति का स्वरूप - डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल

३- " " " " " "

४- वल्गुवाचायं की राधा- डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल

के इस भाव को मरपुर परलपित किया। उन्होंने राधा प्रार्थना चतुश्चत्तुकी, स्वामिनी प्रार्थना, स्वामिन्यष्टकम्, श्री स्वामिनीस्तोत्रम्, एष सर्वस्वम् वादि ग्रन्थों में राधा भाव को ही परलपित किया और भावदशा की विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सफल प्रयास किया। स्वामिनी प्रार्थना में तो साधक की कठोरता वहाँ में राधा भाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं। भक्त की कामना है कि श्री राधा के प्रियतम दुर्लभ से उत्पन्न हास की कीर्ति स्पी जल ही उसका स्नान जल हो। चर्चित तावृत उसका अभ्युदहार ( भोजन ) हो, कल्याणकृत स्मितावलोकन रूप वपुत ही उसका पान हो।

वाफे चरणों में प्रकट वैभवं पूर्ण प्रणति ही मेरा संध्यापासन है। विगाढ़ भाव युक्त विरह ताप में तुम्हारे नाम का कीर्तन ही जप है। वस्तीगमित सूर्य की अग्नि में दिन भर के दुःख का होम ही मेरा होम है। तुम्हारे पूरने पर प्रिय की वार्ता का अनुकूलन ब्रत यज्ञ है। प्रिय संगम से उत्पन्न वाफे मनीषहोत्सव को देवता ही मेरा तर्पण है।

गी० विट्ठल के इस प्रकार की स्वामिनी प्रार्थना में उनके हृदय स्थित प्राण भाव का परिचय मिल जाता है। वस्त्र विट्ठल के कठोर अनुसरण कर्ता श्री हरिराय जी ने अपनी मधुर भावीपासना में स्त्री परिपरा का अनुसरण किया है। ऐसे श्रीकृष्ण के इस स्वरूपत्व कथना " एसीवेसः " का वफे मानस फल पर उन्होंने साक्षात्कार किया था। हरिराय जी के " राधाष्टक मुत्प्रेक्षित स्तोत्र एवं स्वामिनी प्रार्थना " के कुलीन से इस इस्य

१- कृपयति यदि राधा बाधिता तेन बाधा ।

२- वृ० स्तो० द्वि० भाग पृ० ३५

३- स्वामिनी प्रार्थना - गी० विट्ठल वृ० स्तो० पृ० ३४



का फटा ला जाता है। अपनी श्रीनागरीनागर स्तोत्रम् " में राधा की खमयी निर्द्वेष सीला का उल्लेख दिया है :

मृदुल नव कुक्षे नीलपीति कथानी ।

मय निमृत निर्द्वेषि नागरी नागरी तौ ॥ १

श्री हरिराय जी ने अपनी सेवा भावना और भक्ति भावना को अतिशय ललित संस्कृत पदावली में व्यक्त किया है। उसी प्रकार वे ब्रजभाषा में भी अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं। ऊपर उनकी सेवा भावना और रासिक भावना के संस्कृत भाषा में उदाहरण दिये जा चुके हैं। जिन से उनकी भक्ति पद्धति पर पूरा पूरा प्रकाश पड़ता है। यहाँ उनकी वही सेवा पद्धति जो उन्हीं सेवा शिक्षा में अविव्यक्त की है उनकी ब्रजभाषा रचना में भी मिलती है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

मैला :

सातन , बागी हो मयी मोर । २

बूधवही फव्वान मिठाई लीजै मालन रीटी मोर ॥

०

०

बधि मधि बदनबनीत निकारी ।

मुस में भेति बज्रपपी वारी ॥

हूँकार :

गोरोचन को तिलक बँवारी ।

बिष मुक्तारस बिंदु बुधारी ॥

१- श्री हरि वाङ्० मुक्ता द्वितीयो मानः श्रीनागरी स्तोत्र पृ० ११३

२- श्री० हरिराय जी के पद संग्रह पृ० ३६

सीस मुकुट पराय का मग मीर पुष्प सुता ।  
 वसिन विगसनि लसनि मम धन, ठाढे सलित त्रिपदा ॥३॥

ग्याल :

सात तेरे मीत सुतावन वाये ।  
 तिनके संग तेरी हित भाये ।

ग्याल भोग :

कर तकरी धरत है वाणि सधि सौं लेत कन्धैया ।  
 पहुरि धरत हरि लेत है पुनि पुनि सुंदर स्याम सुन्दरैया ।  
 ० ०  
 तेरा मे की तोहि बोलात ग्याल तेरे मीत ।

१- रावभोग ( नंद निरंजन मे )

बीद बैठाय बिभावत मैय्या ।  
 ते जीवन वृत्तानि कसोदा श्रीमुख भेला हुंवर कन्धैया ॥

२- रावभोग ( ब्रज गोपिकाओं द्वारा )

साहिते । तुम की हाक ते वारें ।  
 बहुत बार के मुते जानिँ कमलि मोहि पठाई ॥

१- गी० हरिराय जी के पद संग्रह पृ० ४५

## ३) राक्षसों ( वन में )

मैय्या हौ । अबहु डाक नहिं वारें ।  
महं बजिर भूत लगी है, काहें बैर लगावें ॥

## ४) श्याम डाक की डाक ( ग्रीष्म कालीन )

सीपि लालन । वपुसी डाक ।  
० ०  
भोजन करे बैसि छाया में सीतल उनहें डाक ।  
० ०  
डाक बनाय है वार विविध निधि कालिंदी तीर उपहारिनी ॥

कनीसर-

पान लभावत कर करि बीरी ।  
कटक हूँ मोहन भूत निरस्त फल न परत अधीरी ॥

संध्या वारती :

पीछा दार बैसि बाकैं बत सँग वारति उतरावही ।  
है सुत सिंगरे सींग कौ, नैक दिन कौ बिरह बसाय ही ॥

सयन :

पौढे स्याम राघे सँग ।  
सुरंग परंग सुरंग बिहौना, कसना कसै सँग ॥

नित्य सेवा के ब्रज भाषा फलों के अतिरिक्त हरिराय जी की रासिक उपासना पर बल्लभ विट्ठलीय परंपरा का तो प्रभाव है ही । उनका युग गी० दित हरिवंश जी का होने से उन पर राधावल्लभीय भक्ति-भावना का भी गहरा प्रभाव है। उनकी रासिकोपासना के ब्रजभाषा फलों के उद्धरण भी प्रस्तुत किये जाते हैं :

शृंग कैसि सैं निरुंज श्रीहृता की चर्चा हरिराय जी ने कड़ी रुचि के साथ की है।

बृन्दावन सधन शृंग माधुरी दुप भँवर गुंज ।  
नित विहार प्रिया प्रीतम देस बोरुं कीये ॥ १

बृन्दावन शृंग निरुंज नित्य विहार प्रिया प्रीतम, सती सहचरी, ऐं दर्शन वादि शब्दावली राधावल्लभ संप्रदाय की भी है, उस काल में ब्रज के उन भक्ति संप्रदायों में परस्पर भावों का आदान-प्रदान प्रत्यक्षा वप्रत्यक्षा चलता रहा होगा ।

प्रिया प्रीतम के नित्य विहार के दर्शनों की तात्कालिकी एक सती दुखरी सती से कहती है :

\* दुष्टन की दैति सती सप्तानि ।  
तरु तपस मानों वातिन लता कनक की वानि ॥ २

एक और उदाहरण प्रस्तुत है :

१- श्री हरि पद धं० पु० ८४

२- बृत्तलि तत्तितादिनिर्मिषाभिरन्धेद ॥ ६० वा० पु० ११४

३- गी० हरि० पद धं० ८४

‘कुसुम शेष प्रिय प्यारी पौडि । करत हैं रस बनिया । १  
 ईसत परस्पर वार्नव हुसत, लटक लटक लिपटावन बतिया ॥

०

०

कबहुँ करत सुरति एक मन मये कहुँ एक लगे धरन ॥ २

रसिक प्रीतम राधा प्रिय प्यारी, रस बस ह्वै मन हरत ॥

इस प्रकार हरिराय जी राधा कृष्ण की किशोर लीला में सुरतीस वर्णन कर गए हैं। किशोर लीला के समय वर्णनों में वे ‘रसिक-प्रीतम’ का भोग लगाते हैं और यशोदा के वात्सल्य वर्णन में वे अपना ‘हरिधन’ बयना ‘हरिदास’ के नाम से उल्लेख करते हैं।

यशोदा के वात्सल्य वर्णन में हरिदास जी का मन उतना नहीं रमा है जितना किशोर लीला की विविध रसमयी श्रृंखला में। वतः उनकी भक्ति के वास्तविक सुलभ सरकार है। उनका मन जहाँ चरम तोष पाता है वहाँ है :

मिथ उस परिभासक शेषायमानों ।

मम निभृत निहृबे नागरी नागरी तौ ॥ ३

तात्पर्य यह कि श्री हरिराय जी किशोर मास के एकान्त उपासक हैं। उनकी फिता फितामस की परिपरा में श्री बिट्ठल नाथ जी का स्वरूप

१- गी० हरि० पद सं० ८५

२- .. ८७

३- हरि० बाहु० मुक्ता० पृ० ११५

मिता था । जन शिखा की भावना से वे उस विग्रह की अष्टयाम सेवा बात भाव से करते थे किन्तु अपने मानस में किसी भाव संजोये थे । किसी भाव की रसिकीपासना में साधक अपने भाव लोक में नितान्त स्त्री भाव में रहता है। स्त्री भाव का स्व० के ऊपर वारीप उसे वारीप नहीं वफ़्त सत्य ही प्रतीत होता है। भाव लोक में उससे पुरुष भाव सर्वथा विसर्जित ही जाता है । यही कारण है कि साधारण व्यक्ति के उनके आवेग काल की अभिव्यक्ति में जो लौकिक दुःख का भाव होता है वह वस्तुतः लौकिक नहीं होता वह एक अलौकिक भावभूमि है जो भवत साधक को संस्कारवश होती है। हरिराय जी वत्समीय परंपरातुसार राधा को स्वकीया मानते हैं। वत्समीय परंपरा के रसिक भावोपासक भवत चाहें वे अष्टबापी परंपरा के हों अथवा गोस्वामी परंपरा के, वे दाम्पत्य भाव संवर्धित रसिकीपासना के ही साधक होते हैं। श्री हरिराय जी ने इस दाम्पत्य भाव का संकेत राधा विवाह, दाम्पत्य प्रेम आदि की पर्याप्त प्रमाण में बर्णन कहे दी है। वे लिखते हैं :

“ माह मेरी बात सुन बन बन जायी ।

रस जटित को सोस सेहरी, हीरा मोतिन जरायी ॥ १

०

०

बू बनरा रे बन बन जाया ।

मो मन भाया सुन उपजाया ॥ २

०

०

सुन सुनतिन अधिक बनी ॥ ३

१- हरि० पं सं० ७६

२-           .. ७६

३-           .. ७७

विवाह केत के उपरान्त दाम्पत्य प्रेम की एक झलक -

नहं बात कहू नहं रीति सम, नहं दैतिया प्यारी ।  
 नहं छेनि बितवन नैनन की बघान कब न्यारी ॥ १  
 नहं बलनि, नहं मुरली, नहं गति, नहं का सो है सारी ।  
 रहि प्रीतम" सो नहं रति उपरी, बरनत कवि मतिवारी ॥

०

०

लाहली सासन देखा लाड़े  
 मोहन मुत देखा की बावत धूपट पट है बाड़े ॥ २

नूतन दाम्पत्य प्रेम की मादकता के चित्र हरिराय जी ने संक्षिप्त किन्तु जम्कट दिये हैं। दाम्पत्य प्रेम का कीर्ण का उन्होंने बहुत नहीं छोड़ा । उनके अपने मनी राज्य में राधा कृष्ण के दाम्पत्य जीवन के जीक चित्र उमरे बीर अभिव्यक्त हुए । एक चित्र दर्शनीय है :

तेरे सिर री छूटे बार सोहै ।  
 मानो पिय के मन बांध की पास मैं के बति कठीर जो है । ३

०

०

०

बिपुरे बार, धुपरी सारी सिर तें उतरी  
 लागत फुतरी सी फुठाडी ॥  
 बावत ही पिय के चोकि लषावन लागी ,  
 देठ प्रत्येक मानो रस सागर में नोरी काढ़ी ।

---

१- हरि० पृ० ८२

२- .. ८२

३- .. ८२

सर्वांग में प्रसवेद की रस सागर में डुबकर निकलना साधक की प्रेम भरी भावना का दिव्य उवाहरण है।

वाराण्य की स्वरूप भावना के स्थिर हो जाने के उपरान्त हमें हरिराय जी की भक्ति भावना के कल्प कीर्ण एवं तत्त्वों पर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि उसके बिना उनकी भक्ति का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकेगा। हरिराय जी ने श्रीमदाचार्य, निजाचार्य जयदा गुरु एवं प्रफितामह, पीदागुरु प्रस्थान चतुष्टय में श्रीमद्भागवत का चरम वाक्य सीता-स्थली ब्रज गोकुल आदि के प्रति कभी भक्ति एवं निष्ठा प्रकट करते हैं। प्रकृत वैष्णव पूर्ण मार्ग (पुष्टिमार्ग) के प्रति वास्था दीनता, शरण भावना, नाम-स्मरण आदि में बहुत बढ़ा व्यक्त की है। सात्विक जीवन में सरला, समर्पण, पूर्ण नित्य जीवन को भगवन्मय बनाने की भावना ही श्री हरिराय जी में प्रधान थी। यहाँ उनकी भक्ति भावना के उद्भूत कीर्ण पर विचार करने से उनकी भाव साधना के संपूर्ण भक्ति प्रासाद का परिचय मिल जाता है।

यह पहले कहा जा चुका है कि पुष्टिमार्ग में बालक की यत्नीपरीत के समय भक्ति पीदा (ब्रज सम्बन्ध) दे दिया जाता है। अतः हरिराय जी के गायत्री मंत्रोपदेश एवं पीदा गुरु प्रभु करण गोकुल नाथ की थे। भिक्का के अपने रत्नाब्जों में स्वचार्य नाम से उल्लेख करते हैं। अपने ही पूर्ण और उनकी परम्परा को गुरु बनाने में हरिराय जी का मन्तव्य स्पष्ट था -

“ श्रीमदाचार्य मार्गीय गुरुणां शरणं गतः । ”

१- श्री गोकुलमत्स्वामिन् नामानित्तुष्टये ।

कथयन्मयाचार्या सर्वं काम फलप्रदः ॥ ४० वा० सु० पु० २४०



जी हरिराय जी ने अपनी गुरु भक्ति का प्रादु परिचय दिया है। उन्होंने गोकुल नाथ जी के लिए गोकुलाष्टक , जी गोकुलेश्वरीपर स्तनाभावति: एवं जी गुरुदेवाष्टक वादि ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में गोकुल नाथ जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गहरा परिचय मिलता है। उनके पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन राज सम्बन्ध, धर्म भावना, वाचार्थत्व, विद्वत्ता संप्रदाय में उनका स्थान इन सब बातों का लेता जोता हरिराय जी ने कड़ी निष्ठा के साथ दिया है। अपने गुरु के प्रति हरिराय जी कसीप निष्ठावान है। कहा जाता है वे नित्य गुरु दर्शन करते चरण स्पर्श करते ही भोजन ग्रहण करते थे । वे गुरु को प्रतिबंध निराकर्ता, पुष्टि ज्ञान प्रदीप एवं सिद्धान्त वक्ता, सर्वदीन प्रवर्ता बुद्धि प्रेरक भावात्मा सर्वातीत सुखप्रद मानते थे । उनको उन्होंने भावपूर्ण होकर " निजनाथ " कहकर नमस्कार किया है। वाचार्थ वत्सल को वे स्वाचार्य शब्द से संकेतित नहीं बल्कि " निजाचार्य " शब्द से करते हैं।

### गी० हरिराय जी की वत्सल भावना

हरिराय जी ने वत्सलभाचार्य के प्रति कसीप निष्ठा का परिचय दिया है। यह तो प्रसिद्ध है ही कि यदि वत्सल का मन्तव्य जानना ही तो हरिराय जी का कृतित्व जानना परमावश्यक है। वत्सल का हाथ कसना अभिप्राय किना हरिराय जी को स्पष्ट है उतना संभवतः किसी अन्य वाचार्थ को नहीं । वत्सलभाचार्य के समूचे कृतित्व पर हरिराय जी ने तैत्तरी उठाई है। वत्सल का किना गहरा अनुशीलन हरिराय जी ने किया है संभवतः अन्य किसी

१- गुरुदेवाष्टक - ६० वा० सु० पृ० २५४

२- कार्यनाथ समर्पात्म निजनाथ नवी नमः ॥ ६० वा० सु० पृ० २५४

३- वत्सलान्निवाचार्य कृत प्रसूतान किमुपेक्षा है ॥ वेता- श्रीकृष्णचरणविजयि ॥

ने नहीं। बल्कि के ग्रन्थों के गहन अनुशीलन का ही परिणाम था कि हरिराय जी की वाचार्थ बल्कि उनके मानस फल पर प्रत्यक्ष थे। एक स्थान पर तो उन्होंने यही एक सिद्धांत है कि मुक्ति रक्षिकदास काप बल्कि ने ही दी। अपने भाव लोक में अपने किसी पूर्वज की कृपा अधिक प्रत्यक्ष कर लेने का एक प्रथम उदाहरण है। इसी कारण यह भी कहा जाता है कि वाचार्थ बल्कि के हार्द कथना उनके ग्रन्थों का रहस्य जानना ही तो फल हरिराय जी के कृतित्व का अनुशीलन करना चाहिए। तत्पश्चात् स्वयं वाचार्थ के ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। वाचार्थ के साथ हरिराय जी का कैसा तादात्म्य था वैसा न उस से पूर्व किसी गोस्वामि बालक की कृपा न बाद में। बल्कि सभी सिद्ध के पार जान के लिए हरिराय जी जैसे रक्षिक ही सज्जन थे। उन्होंने सिद्धांत है -

श्री बल्कि सिद्ध समान

सदा सेवक होत सबकी कथयपद की दान ।

० ०

मुष्टिमारग कही नौका चलत बिना प्रयास ।

दिग न वावे बुद्धि वासुरि मकर मीन निरास ॥

० ०

झोड़ि सागर कौन मूत, मने बिस्तर नीर ।

रक्षिक मन है मिट्टी बगिया परसि जल समीर ॥ २

१- रक्षिक राय विनती कीन्ही ।

रक्षिक दास काप कीन्ही ।

श्रीबल्कि स्तुत रक्षिक

बौर केव त्यागे ॥ हरि० पद सं० पु० २४५

२- गो० हरिराय जी के पद सं० ५५४

यद्यपि हरिराय बाबायं वत्सल के पुत्र गौ० विट्ठलनाथ जी के प्रपौत्र और बाबायं के जन्म से ११२ वर्ष ( सं० १६४७ में ) उपरान्त अवतीर्ण हुए थे परन्तु वत्सल का पाँच मौलिक विग्रह भी उनके मानस पटल पर वक्षित था वे लिखी है :-

श्री वत्सल मधुरा कृति मेरे । १

सदा बसौ मन यह जीवन धन निज जन सौं जुझत ही टेर ॥

प्रस्तुत पद में उन्होंने वत्सल के शारीरिक सौंदर्य का विनोदम वर्णन किया है। उनको उन्होंने बाबानुबाहु मधुर बंधा वाला, मधुर भूषाला वादि बताया है।

वत्सल के प्रति असीम भक्ति एवं गहन निष्ठा ही उनके विशाल कृतित्व का रहस्य है। उनकी मगवद् भक्ति के मूल में भी वत्सल भावना ही प्रधान है।

गौ० विट्ठल नाथ जी के प्रति भक्ति निष्ठा :

वत्सल के उपरान्त हरिराय जी ने गौ० विट्ठलनाथ जी को भी उसी गहन निष्ठा और स्नेह भरी प्रदत्त से स्मरण किया है। श्री गोपी नाथ जी के तिर तो उन्होंने " तीला रसप्राय गुह " लिखकर छुट्टी पा ली है। संप्रदाय में प्रचलित एक परम्परा - श्री गोपीनाथ जी बलराम के अवतार एवं श्री विट्ठल साक्षात् कृष्ण के अवतार- की उद्भावना फरती बार गौ० हरिराय जी ने ही की है।

१- गौ० हरिराय जी के पद सं० ५५६

२- " " ५५६

३- फ्राटे श्री गोपीनाथ प्रणम सुत चैकरचन बसु मार्ग ॥ प० सं० ५६९

श्री गोपीनाथ जी उनके पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी का उत्पन्न उन्होंने वीर वृद्धा की पूर्ति के लिए ही किया लगता है। अतः इन दोनों की बधाइयाँ सिद्धांत और चलती सी है। किन्तु गो० विट्ठल नाथ जी की बधाँ उन्होंने जपकर की है। ऐसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वे गो० विट्ठल नाथ जी की साक्षात् कृष्ण का स्वरूप ही मानते थे :

तब तौ नैर्नदन कहवाये ।

अब श्री वल्लभनदन वाये ॥

कलियुग में दापर की सीता बिस्तारे ।

उहाँ वेद लिए उद्यार, जहाँ पुष्टि माग बारि ॥ ३

अतः गो० विट्ठल नाथ जी की बधाइयाँ उन्होंने छटकर लिखी है। उनके स्वरूप, वैष्णवपूजा, सौंदर्य तैव प्रताप की बधाँ तौ की ही है। उनके जन्म संवत् दिन तिथि सबकी प्रामाणिकता के भूत में हरिराय जी का लेख प्रमाण भूत हो गया है। हरिराय जी ने गो० विट्ठल नाथ जी के वाक्य की आवश्यकता पुष्टिमाणीय भक्तों के लिए अनिवार्य बताई है :

प्रातः समे उठिँ कुसदा श्री वल्लभ भूत के गुनगाह्य ।

जुग कर जोरि रूप चितन करि उनकही के चरन न चित लाह्य ॥

गो० विट्ठल जी गो० हरिराय जी ने पुष्टिमान के विकासकर्ता पुष्टिभक्ति और सेवा सुसरि के गोमुल के रूप में परमादात्म समझा है। उनकी धारणा है :

रखि धिरोमनि श्रीवल्लभ भूत, त्रिभुवन मुकुट मनी ॥ ३

१- हरिराय जी गाँव बहुत कुछ बधाई पावै ॥ प० पं० ५६२

२- ५० प० पं० ५६६

३- .. ६०८

गो० विट्ठल नाथ जी के प्रति भक्ति भावना :

यद्यपि हरिराय जी ने गो० विट्ठल के गिरिधर जी, गोविन्द जी, बालकृष्ण जी, रघुनाथ जी, यदुनाथ जी आदि सभी पितामहों की बधाइयाँ और महिमा का गान किया है किन्तु श्री विट्ठल के चतुर्थ पुत्र गो० गोकुलनाथ जी के प्रति वे सर्वाधिक निष्ठावान् थे। वे उनके गायत्री मन्त्रोपदेशा एवं दीक्षादाता गुरु भी थे। अतः गोकुल का प्राणट्य वे सर्वोपरि मानते थे।

“ श्री गोकुल प्राणट्य सर्वोपरि ब्रज धनलीला रसिक सुहाई ॥ १

गोकुल उनके मन्त्रोपदेशा, दीक्षा गुरु और विद्या गुरु थे। उन्हीं के आदेश से उन्होंने वाता साहित्य पर ‘भाव प्रकाश’ टिप्पण लिखा और ८४ तथा २५२ में वर्णित किया। गो० गोकुल नाथ जी के लिए हरिराय जी ने निवाचार्थाष्टक में लिखा है :

“ श्री गोकुलेशीघ्र सरोज सेवा,  
विशेष दीक्षादर दीन दासक,  
संशोध को रुदि विबुध वैतस  
स बल्लमी बल्लभ एव मे स्तु ॥ ३

१- ड० प० सं० ६२४

२- श्री गोकुलनाथ जी का नाम बल्लभ भी था। देखो- श्री गोकुल चरित।

३- बार्नब मुहुरातनीसुनधुराकारः प्रभु बल्लभः ) गोकुलेश स्तौक ३

३- ड० बा० सु० भाग २ पृ० ३

गोकुलनाथ जी की वष्टोपरस्त नामावलि में उन्होंने उनके जीवन की ताबीजी रूप में प्रस्तुत किया है। गोकुलेशाष्टक में उनके बुद्धि वैभव कृतित्व एवं पुष्टिमार्ग में उनके अनुपम स्थान का संकेत दिया है। वे लिखते हैं :

“ उद्धतं धरणी तले निज बसे नैव स्वकीयाज्ज्वाना ।  
नाभिर्मुखं तथा कृपा परमशः श्री विट्ठलेशालये ।  
यः श्री भागवतार्थं सत्त्वं विवृतेभ्य के प्रचारिणः ॥  
पीयूषी रति पीषाणाम सतत श्री गोकुलेशो वतु ॥ १

गोकुलेश के चर्वित तर्जित प्रसाद से हरिराय जी का भावविग्रह पुष्टि हुआ था, अतः वे निज भक्ति साधन में उनका अतिशय अनुग्रह स्वीकार करते थे ।

“ कपोल विलसद्भ्रमयविमिश्रिताम्बुलहः । २

वे निरतिशय गद्गद् भाव से लिखते हैं :

“ स्वभाव परिपीषाको, भवसमुद्रद्वीपकः । ”

माला प्रसंग के कारण वे वैष्णव ज्ञातृ पर उनके उपकार का गहराई से अनुभव करते थे -

“ माला येन सुरदिता निजमहायत्मेन कष्टे सताम् ।

अतः वे गोकुलेश के वाक्य के अतिरिक्त किसी व्याख्यान की आवश्यकता ही नहीं समझते :

१- गोकुलेशा० श्लोक १

२-                    ५

‘ नित्यं भक्तजन प्रिय भक्त सैत्यैवैतदस्याग्रयम् । ’ १

गोकुलेश उनके गुरु थे । वतः अतिसय आवेश में वे गुरुदेवाष्टक में लिखते हैं :

‘ बुद्धि प्रेरक भावात्मा नमामि तमहं गुरुम् । ’ २

बागै उन्होंने गोकुलेश की निज्जाय तक कह डाला है :

स्वरूप ज्ञान शून्यस्य कृपया नितिलाध्वत्  
कार्यं मान समर्पात्पन् , निज्जाय नमोनमः ॥ ३

उपर्युक्त वाचार्थ परंपरा एवं गुरुदेव के उत्तरेस के मूल में हरिराय जी का प्रधान उद्देश्य अपनी भक्ति साधना की परंपरा का निर्देश करना तो था ही , साथ ही वे पुष्टिमार्ग की भक्ति की तुल्यता के लिए उन तत्वों का भी स्कीत देते हैं जिसे साधक की भाव पोषण में सरलता एवं सुलभता ही बाय । वाचार्थ परंपरा और गुरु परंपरा के उत्तरेस के उपरान्त उन्होंने संप्रदाय के प्रस्थान चतुष्टय में अंतिम प्रस्थान श्रीमद्भागवत की अफा सर्वस्य माना है।

श्रीमद्भागवत के प्रति नदः :

हरिराय जी ने श्रीमद्भागवत के लिए संस्कृत में श्रीमद्-भागवत पुस्तक नित्य पूजा विधि ‘ बादि ग्रन्थ तो लिखे ही हैं। हिन्दी पपी में उन्होंने भागवत की महिमा का गान बड़ी नदः से किया है। वे कहते हैं -

१- ०० गोकुलेशा० श्लोक =

२- गुरुदेवा .. ४

३- .. .. ५

पीवै श्री भागीत सुधारस ।

साधधान भवनन पुष्ट भरि भरि श्रीगीपात विमल जस ॥ १

श्रीमद्भागवत मन्त्र के मन के निरोध के लिए कतियुग  
में एक मात्र उपाय है। वह वसुतार्णव है। यह सुर दुर्लभ पीयूष केवल ब्रह्म-  
वासियों को ही सुलभ है। श्री गुरु के मुक्त कमल से यह निगम कल्पतरु का फल  
मिलित होकर मायुकों के लिए सुलभ हुआ है।

परम हंस कुल भूषण श्री गुरु, वदन कमल से परये लस ।

तान पान तपि रसिक परीक्षित पीवत कियौ नहीं बलस ॥

सोई अब प्राट विराजत मू पर कियौ वसुत कौ उपलसु ।

कहे हरिदास परम यह सुंदर , जो न पियै एी मरुत फल ॥ २

श्रीमद्भागवत के उपरान्त उन्होंने यदि किसी पत्नीय  
वस्तु को महत्व दिया है तो वह है श्री विट्ठल रवि सर्वविमलस्तोत्र के  
तिलक है :

करिये श्री सर्वविम रस पान ।

करै प्रससा कौ कवि स्त्री, श्री मुल करत बतान ।

बलिभय करुना करि या कलि में दियौ दैवि जीवन कौ दान ॥

एक एक बदर है कथरासुत, गुप्त रहस्य गुन गान

कथं निमेष बिलंब न करिये, ऐन दिवस बाँटीं नाम ॥

रसिक प्रीतम जाके ऐग रंग्यौ, सो है भगत निवान ॥ ३

१- पृ० प० पृ० ६४४

२-       ., ६४४

३-       ., ६४७



वे चरम भक्त उसी को मानते हैं जो 'सर्वोत्तम स्तोन' का बाँटों प्रहर कुलीन करता रहता है। सर्वोत्तम स्तोन पुष्टिमार्ग की गायत्री है। अतः उसका माहात्म्य पुष्टिमार्ग में वर्णित है।

श्री गोकुल के प्रति भद्रा :

श्री हरिराय जी ने श्री गोकुल के प्रति भी वसीम भद्रा प्रकट की है। भक्तों के तत्त्व बहुष्टय - नाम, रूप, लीला, धाम की पूरी कथा उन्होंने की है। धाम के रूप में नित्य गोकुल की भावना पुष्टि वैष्णवों की बलवती धारणा है। वैष्णवों का गोकुल नित्य है जहाँ भगवल्लोला भी नित्य है। शाश्वत लीला धाम होने से गोकुल जी 'दिव्य धाम' कथा मौक्तिक जगत् से परे एक दिव्य लोक है, भगवान् का वहाँ नित्य वास है। यशोदीत्संग लाति त्रिभुज कृष्ण वहाँ नित्य वास झीड़ा करते रहते हैं। अतः गोकुल पुष्टि सृष्टि का कथा वैकुण्ठ है। यहाँ प्रभु बल्लभ ने झींकर कथा सभी वृद्धा के नीचे श्रीमद्भागवत का पाठ किया था। वह बैठक कथापि वर्तमान है और सभी वृद्धा की परंपरा भी वही है। श्री० हरिराय जी ने लिखा है :

जो कोई गोकुल रसवाई ।

ताकी भित वनत नहीं भटके, लीम दिलावे लाते ।

परये रहे झींकर की कैया, निरावत तरुवर साते ॥

श्री कृष्ण जल पान करत नित, श्री बल्लभ मुत पाते ॥

बात स्वरूप बादि है गिरिधर , ध्यान हृदय में राते ।

नृत्तिक प्रीतम की बानिक ऊपर, विस्व बार्ते नाते ॥ २

१- गोकुल के ठकुरानी घाट पर बाबाय भगवान् की बैठक बाज की सभी वृद्धा के नीचे है। और वह सभी वृद्धा बाज भी वर्तमान है। तैलिका

२- ५० प० ५० ५५६

प्रस्तुत पद में ठ्ठुरानी घाट के झोंकर का स्पष्ट उल्लेख है। वहीं यमुना का जगाध प्रवाह अपापि वर्तमान है। पास ही में श्री गोकुल नाथ जी का मंदिर है जहाँ गौ० विट्ठलनाथ जी का संपूर्ण परिवार निवास करता था। श्री गोकुल की दिव्य भावना अपना बाधितैविक रूप की कल्पना संप्रदाय में प्रारंभ से ही बली का रही है। गोकुल ग्राम मथुरा जिले का प्रधान कस्बा है जो पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का परम तीर्थ और साधना केन्द्र है। इसका महत्व बाधितैविक रूप में स्वीकृत होने से प्रत्येक पुष्टिमार्गीय श्री गोकुल की यात्रा करना अपना परम कर्तव्य समझता है। गौ० हरिराय जी की एक बैठक गोकुल में अवस्थित है।

#### श्री यमुना के प्रति वादर-भाव :

हरिराय जी ने श्री यमुना के भी महान् वादर दिया है। पुष्टिमार्ग में श्री यमुना बाधितैविक रूप में कृष्ण की 'सुखप्रिया' मानी गई है। उस प्रवाह उनका बाधितैविक रूप है। उक्तः यमुना उस का पान वैष्णव का कर्तव्य है। भीनाथ जी की भगवती यमुना उस से ही भरी जाती है। यमुना जी की भावना से पुष्टिमार्गीय मंदिरों में मंदिर के बाहर अपना प्रांगण में झोटा सा सरोवर अवश्य ही रहता है। यदि ऐसा संभव नहीं होता तो एक पात्र में उस भर कर भगवत्स्वरूप के सामने रख दिया जाता है और उसी में यमुना जी की भावना कर ली जाती है। गौ० हरिराय जी ने संप्रदाय की इस भावना की पर्याप्त चर्चा की है। उन्होंने यमुना तट पर निवास, यमुना उस पान की सुख वासना का स्थान स्थान पर उल्लेख किया है। अपने संस्कृत ग्रंथ

१- श्री यमुना जी से वृत्ति सनेकरि, मुत उस पान करावे ॥

रधिक कहत पावनीधि पूजत बापुनी की नचावे ॥

‘यसुना विज्ञप्ति’ में तो उन्होंने श्री यमुना की श्रीकृष्ण से सम्बन्ध कराने वाली प्रधान साधनमूला कृष्ण रसात्मिका माना है। वे कहते हैं-

‘कृष्णां कृष्णसर्मा कृष्ण रूपा कृष्ण रसात्मिकाम् ।  
कृष्ण लीलाप्लुत वर्त्ता कृष्ण सम्बन्ध कारिणीम् ॥ ९

श्री यमुनाकृष्ण लीला स्वसावित्रीधिका, कृष्ण श्रीहृता, कृष्णमादियुक्ता, कृष्णरसा-  
तुरा, कृष्णपाद स्पर्श काया, कृष्णासक्तता, कृष्णममता, कृष्ण प्रीतिसाधिनी  
है। अतः वे कृष्ण के सेवकों में भाव विरोधि प्रकृति का विनाश करके सेवक में  
भाव स्थापना करती है।

हरिराय जी ने यमुना तत्त्व पर गहन विचार किया  
है और पुष्टि भवित साधना में उन्हें एक महत्वपूर्ण तत्त्व सिद्ध करके उन्हें  
साक्षात् कृष्ण रूपा ही माना है। उनकी यमुना विज्ञप्ति एक प्रकार से वाचार्थ  
वस्तु के यमुनाष्टक की व्याख्या ही है। कृष्ण स्वायिभाव की उद्दीप्त कथना  
वागुत करने वाली यमुना बालम्बन रूपा है। अतः यमुना का माहात्म्य पुष्टि  
मार्ग में सर्वोपरि है।

श्री धुबोधिनी के प्रति चरम वास्था

गी० हरिराय जी ने श्रीमद्भागवत महापुराण पर अपनी

१- श्री यमुना विज्ञप्ति - ४० वा० सु० श्लोक १

महती श्रद्धा व्यक्त की है। और यह कहा जा चुका है कि संप्रदाय में श्रीमद्भागवत प्रस्थान चतुष्टय के अन्तर्गत प्रमाण क्या वाकार ग्रन्थ के रूप में समाहित है।

वाक्यायं बल्लभ ने श्रीमद्भागवत पर 'सुबोधिनी' नाम की टीका लिख कर श्रीमद्भागवत के निगूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है। अतः श्रीमद्भागवत की अनेक टीकाओं में सुबोधिनी का महत्त्व सर्वाधिक है। हरिराय जी की मान्यता है कि यदि किसी ने भागवत तो पढ़ा है पर यदि सुबोधिनी नहीं देखी तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। वे कहते हैं :

नाश्रितो बल्लभाधोशो न ब दृष्ट सुबोधिनी ।

ना राधि राधिकानायो वृथा तज्जन्म भूतले ॥ १

अतः हरिराय जी ने सुबोधिनी टीका का संकेत अपने पत्रों में यत्र तत्र दिया है :

जीवन जोड़े से बनि जावै ।

०

०

श्री भागवत वसुत इस टीका, अपने श्रवन सुनावै ॥ २

एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं :

गायना गोपाल मन लायी न रसाल लीला ।

सुनी ना सुबोधिनी, ना साधु संग पायी है ॥

०

०

रसिक कहै बार बार लाव हू न जावै तोसि ॥

मानुस जनम पाय मुद कहाँ ते कमायी है। ३

१- जन्म वैधव्य निरूपणादिक द० वा० सु० श्लोक १

२- द० प० सं० ६४३

३- द० प० सं० ६६३

इस प्रकार सुबोधिनी का महत्व प्रतिपादन करके उन्होंने अपनी कसौटी बड़ा फूट की है। भागवत के वन्दारार्थ, पदार्थ, वाक्यार्थ आदि सुबोधिनी से ही स्पष्ट होते हैं। अतः संप्रदाय में श्री सुबोधिनी जी का महत्व श्रीमद्भागवत के ही समान है।

### ब्रह्माक्षर मंत्र की नामस्मरण :

संप्रदाय के ब्रह्माक्षर मंत्र श्रीकृष्णः हरणं मम पर पर हरिराय जी ने कई भाव से विचार किया है। उनका मन बड़ा गहरा होता था। ब्रह्माक्षर मन्त्र की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है :

“ श्रीकृष्णो गुण स्वरूपो मम हरणमात्मनो भूयात् ।  
 सर्वार्थेषु देहदार भोग पुत्र मातुः पितुः मगिनी  
 कुटुम्ब गृहस्थितः पशुः ग्राम देशेषु सिधितेषु मृग-  
 तुच्छावद् दृश्यमानेषु तदात्मय जानन्द रूपो नित्यः  
 परमात्मप्रदीपम भवतु । ”

अर्थात् गुण स्वरूपात्मक ( राधाकृष्णः ) श्री कृष्ण मेरे वात्सल्यमय हैं। देह स्त्री, भोग, पुत्र, माता, पिता सहित कुटुम्ब घर, द्रव्य, पशु, ग्राम, देशादि का वात्सल्य सिधित और मृगतुच्छावत् व्यर्थ है। अतः केवल श्रीकृष्ण का वात्सल्य रूप वात्सल्य मेरे लिए ही। यद्यपि यह ब्रह्माक्षर मंत्र पूर्ण परिवारा में भी मिलता है। परन्तु महाप्रभु बल्लभ के प्रीयुक्त से इसका पुरात्पान होने से यह वात्सल्य रूप और फल रूप दोनों ही हैं। हरिराय जी ने इस रहस्य की

भली भाँति सम्पन्न था । अतः नाम स्मरण प्रभु का ही साक्षात्कार है।  
 उस दृष्टि से श्रीहरिराय जी ने भगवन्नामस्मरण पर बहुत बल दिया है। वे  
 कहते हैं-

“ फोटी सार बल्लभ बचनानृत वष्टाचारहि जपी करिनेम । ” १

तथा

“ शैयी नहिं स्वाद करि, घरी बाधी घरी हरि ,  
 कबहु न कृष्ण नाम खना टटायौ है ।

०

०

रसिक कहै बार बार ताज हू न बाँधे तोहि ,  
 मानुस जनम पाय मूढ़ कहा है कमायौ है। ” २

दैन्य :

दीनता भक्ति का प्रथम सोपान है। सच्चा वैष्णव  
 वर्तकार का सर्वथा विसर्जन करके चरम दैन्य भाव से भगवान् में समर्पित रहता  
 है। श्री हरिराय जी की दीनता चरम कोटि पर पहुँची हुई थी। जो चरम  
 दैन्य की भावना श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु में देखी गई थी वही दैन्य भाव श्री  
 हरिराय जी में विकसित था। भक्ति के आवेस में उनका कोई सर्वथा विनश्वित हो  
 गया था। उनके संस्कृत स्तोत्रों में तो इसका प्रमाण मिलता ही है। ब्रज भाषा  
 के पदों में भी उनका दैन्य दर्शनीय है। वे लिखते हैं :

१- ड० प० स० ५८७

२-     ,,     ६६३

३- गवाम्पाराष्टक - ड० बा० मु० प० २८८

‘नाथ । हा हा, मोहि दास दीये ।  
 सख्य कहना करी, दास किन प्रिय धरी ।  
 बिना साधन मोहि दास कीये ।  
 दुखित किन हीत प्रिय बदन देखे बिना  
 तेन दिन तपस कही कही कीने ।’ १

एक स्थान पर वे लिखते हैं :

‘तुम सौ नाथ प्रकारत धार्यौ ।  
 सुनत न तुम कहू कहा जानिये, कौन दोष मन धार्यौ ।

०

०

गति ही पति ही तुम मेरे, सौ ही ही उर धार्यौ ।  
 ताकुनी जानि करी जानीं सौ ऐवक राखि प्रकार्यौ ।

हरिराय जी की दैन्यपरक उक्तियाँ बेजोड़ हैं। संस्कृत स्तोत्रों में तो उन्होंने  
 अपना हृदय ही निकाल कर रख दिया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

हा हा भी बल्लभासीत, हा हा कृष्ण मुलाम्बुज ।  
 हा हा वियोग भाषाग्ने । देखि मैं निज दर्शनम् ॥

उनके दैन्याष्टक का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है :

१) वृन्दावन एवोयुक्तं यमुनाक्स वैकिलम् ।  
 कदा पततल मूर्ध्नि भी बल्लभ धास्यसि ॥ २

---

१- दैन्याष्टक - ४० वा० पु० १० श्लोक १

२- ..

.. १५७

ब्रजभाषा में भी वही उत्कृष्ट वैभ्य उसी शक्ति के साथ अभिव्यक्त हुआ है :

“कहो हरि , दीन के पु दयाल ।

कब देखीगे दसा हमारी ग्रसित हौं कति काल ॥

०

०

कासौ कहौ जाय ब्रजपति वापुनी यह हाल ।

ईसत कहा जुहर हु बारति , रसिक करी निहाल ॥

वन्त में बरम आवेश की स्थिति में वे यह कह कर मौन हो जाते हैं :

“महाराज कह्यौ मानि, उराहु में दया जानि ।

सुरी भली जानि, रसिक वपुनी करि सीजिर ॥

गौ० हरिराय जी के वैभ्य परक पद गौ० तुलसीदास जी की विनय पत्रिका के पदों के समकक्ष भली भाँति रहें जा सकते हैं। भाव साम्य की दृष्टि से तो उन में इतनी समानता है कि लगता है मानो एक दूसरे से प्रभावित हैं।

पुष्टिमार्ग के प्रति क्लीम वास्था :

गौ० हरिराय जी की पुष्टिमार्ग के प्रति क्लीम वास्था थी। वे इस मार्ग की भक्ति पद्धति की विलक्षणता से अत्यन्त अभिभूत थे। यही कारण था कि उन्होंने परमानंद सोनी के द्वारा भी गोकुलनाथ जी के समक्ष अपनी उरदास ( प्रार्थना ) प्रस्तुत कराई और पुष्टिमार्ग की भूतल स्थिति की अवधि फवास वर्ण बढ़ गई। पुष्टि भक्ति पद्धति के प्रकट करने के लिए ही

१- देखी- हरिराय जी का बरिह - श्रीनाथ जी के स्वर्ण शेरवाला प्रसंग । परमानंद सोनी द्वारा निर्मित एक स्वर्ण शेरवा भी गौ० गोकुलनाथ जी की कल्पित पर बाप भी नाथद्वारे में भी की धारण कराया जाता है। -संक्षिप्त



श्री बल्सम ने अवतार ग्रहण किया था-

पुष्टि प्रकार फाट करिबे कहँ फिर फाटे श्री बल्सम द्विज वैद्य । १

तथा

भाव रूप कीं भाव रूप ही भजन पैय जातायी ॥ २

उघरे भागसकल भवत के पुष्टि भवित फाटाई ॥ ३

पुष्टि भवित वैदिक है अवैदिक नहीं । हरिराय जी कहते हैं :

“ माया मत कीतिमिर नसायी, पैय दिलायी वेद बचन बल ॥ ४

वेदों के वचनों का आधार पुष्टिमार्ग की प्राप्ति है। प्रस्थानब्रह्मण्य में महाप्रभु जी ने निबन्ध में कहा है- “ वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सुनीषिषेवहि ”<sup>५</sup> अतः इस मार्ग में जिसको दुःख वास्या है भगवान् उनके ऊपर सदैव कृपा करते रहते हैं :

“ इहि मार्ग पे दुःख तिन्ह कीं हरि मिलत मुक्त फल फल सुख पत । ” ६

पुष्टिमार्ग हरिराय जी की अन्य मार्गों की अपेक्षा अत्यन्त निर्मल प्रतीत हुआ।

१- ह० प० स० ६४१

२- .. ५३४

३- .. ५३८

४- .. ५३६

५- निबन्ध भा० प्र० श्लोक सं० ७

६- ह० प० सं० ५३६

वतः उन्होंने कन्य किसी धर्म संप्रदाय का वाक्य नहीं लिया ।

“ भक्त मार्ग महानिर्मल देवी जीब हुराई । ” १

उन्होंने स्पष्ट कहा है-

“ श्री बल्लभ रहत हिरे वीर पय त्पागे ॥ ” २

पुष्टिमार्गीय भक्ति का प्रीत भी वीतिम प्रस्थान श्रीमद्भागवत ही है :

“ श्री भागवत सुधारस मधि है, वपुनी पय कतायी ॥ ” ३

महाप्रभु बल्लभ रूप सहायगर का रहस्य जानने के लिए यह पुष्टिमार्ग नौका के समान है :

“ पुष्टि मार्ग बड़ी नौका चलत बिना प्रयास । ” ४

पुष्टि भक्ति निस्वार्थ भक्ति है :

दान ब्रताधिक तें कहु नाहिन होत पुष्टि की भक्ति ॥ ५

पुष्टिभक्ति निर्गुणा भक्ति है :

हरिराय जी ने पुष्टि भक्ति के रहस्य को स्पष्ट करते

१- ४० प० ६० ५४६

२- .. ५४८

३- .. ५५०

४- .. ५५४

५- .. ५६४

हुए इसे निर्गुणा भक्ति कहा है। 'निर्गुणा' का तात्पर्य भावात्मिका से है।

‘सुखारविन्दरूपां तं भक्ति भावात्मिका इती ॥’ १

निर्गुणा भक्ति भावात्मिका सिद्ध होने पर सगुण भक्ति का तात्पर्य सम्पन्नता भी आवश्यक है। सगुण भक्ति से वाचायं स्व हरिराय जी का तात्पर्य क्रिया मुख्यता से है। सगुणा भक्ति क्रिया मुख्य वाली होती है। क्रिया मुख्यता से तात्पर्य 'नृत्यबन्धादि' से है जो रास में ही संभव है। अतः रासस्याभक्ति सगुण स्व हृदयस्या - भावात्मिका भक्ति निर्गुणा है।

तात्पर्य यह कि पुष्टि भक्ति संपूर्ण रूप से भावात्मक है। सुदृढ़ भाव की बग्रीब नींव पर पुष्टि भक्ति का सुधाधौत विशाल मवन लहता है। 'भाव' की सिद्धि भावना से है। अतः श्री वाचायं महाप्रभु के प्रति शरण भावना ही पुष्टि भक्ति पथ की प्रवेश कीलिका है :

गौ० हरिराय जी की वल्लभ शरण -भावना :

हरिराय जी ने प्रभु प्रेम की प्राप्ति के लिए वाचायं चरणों में शरण लेने की सीढ़ी की प्रथम स्थान दिया है। शरण भावना की छात झुमिकाई है। जिनका निर्वचन हरि राय जी ने वाचायं वल्लभ के प्रति उत्कट प्रेम दिलाते हुए किया है।

शरण भावना के सप्त सीपान हरिराय जीने निवाचायं

१- भक्ति द्वै विध्य निरु० ब०वा० सु० पु० २०

२- गूढ़ भावो हृदि० ह० वा० सु० रत्नी० ४ पु० ३८

स्व - क्रियानृत्यबन्धा धी० .. ३७

बल्म के प्रति निवेदित किया है :

१) दीनता -

श्री बल्म मोहि लेहु उबारि ।

या धँधार बनत के जरतैं, श्री मुल बनत बिचारि ॥ १

२) मानमर्णता-

श्री बल्म मुल कमत की ही बलि बलि जाऊँ ।

०

०

करुना करि जिरावत ऊत लव ही दिग बायी ॥ २

३) वयदर्शन

वरे मन । श्री बल्म गुन गाय ।

वृथा काल काहे की सोवत वेद पुरान पढाय ॥ ३

४) मत्सर्गता

क्यों न तू श्री बल्म के महन सदन चाहि ।

काहे की बलि बारत सुने कहत या सौ बलि ॥ ४

५) वाश्वासन

मन रे तू श्रीबल्म कहारि ।

जो कहू करत कामना बिय में सौ ततखिन लखिरे ॥ ५

१- ड० प० स० ५१५

२- .. ५५३

३- .. ५७०

४- .. ५७२

५- .. ५८१

## 4) मनोराज्य

मन हू श्री बल्लभ हू चरन सन बाहि ।

काहे की बति बाहुर ह्वै के कवत परयो बाह ॥ १

व्यथा

लौ जी श्रीबल्लभ पदरंग ।

ताकी दुःख नैक नहि व्यापै, बाह मिले सतसंग ॥ २

## ७) विचारण

प्रीति दीधी श्री बल्लभ फर सौ बीर न मन में बाये हो ।

फे पुरानि भट दर्शन नीके, जो कोल कहु बनावे हो ।

फर तै झीकार कियो मेरो, खान न प्रान सुहावे हो ।

पाय महारस कौन मुदमति, जहाँ जहाँ चित भटकावे हो । ३

इस प्रकार सर्वतोभावेन समर्पित होकर श्री हरिराय जी ने भगवद् भक्ति के मूल में बल्लभ चरणामय की ही मुख्यता दी है। वे बल्लभ बीर श्रीकृष्ण के अन्तर नहीं समझते बल्कि बल्लभ की भगवान् का बदनामतार ही कहते हैं :

‘इस वदन अनत रूप वानंदमय प्राटे श्रीबल्लभ राज ॥ ४

बाबाय बल्लभ , श्री पुरुषोत्तम भगवान् पूर्णावतार श्रीकृष्ण के अतिरिक्त हरिराय जी ने संप्रदाय के स्तम्भ रूप पुष्टि भक्ति के अवयव स्वरूप उन्होंने

१- ६० ५० ४० ५७६

२-     ..     ५८०

३-     ..     ५८६

४-     ..     ५८६

श्री गोवर्धन की महिमा का भी गान किया है। गोवर्धन की तरहटी में निवास करना उक्ता काम्य धर्म था -

तरहटी श्री गोवर्धन की रहिए । १

नित प्रति पदन गोपाल के चरन कमल चित सहिए ।

तन पुलकित ब्रजराज में लोटत गोविंद कुण्ड में रह्यै ।

रासिक प्रीतम हित चित की बातें श्री गिरधारी सँ कहिए ।

श्री गिरिराज जी :

गोवर्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् स्वरूप ही है, "शैली स्मीति ध्रुवन् ध्रुवि वसिमादद् ब्रह्म वसुः ।"

हरिराय जी ने श्री गोवर्धन को 'हरिदास वर्ग' कहकर वादर किया है :

"ह्री हरिदास वर्ग पै गारी ।

छोतल करन कछल निरतिर, पवन सुगंध परम सुत्कारी ।

तथा

धनि हरिदास सुख रासी ।

नंद नंदन की परम रमनस्थल, कबत जन के प्रेम प्रकासी ॥ ३

"हरिदास वर्ग" सम्बोधन भी हरिराय जी ने श्रीमद्-भागवत से लिया है, भागवतकार ने गोवर्धन माहात्म्य पर अपना कृता कृतज्ञ

१- ह० प० स० ५०१

२- श्रीमद्भागवत १०।२४।३५

३- ह० प० स० ५०३, ५०४

४- श्रीमद्भागवत १०।४७।५६

प्रकट किया है :

“ कृष्ण संस्मारयन् रमे हरिदासीं प्रवैकुण्ठम् ।

गौवर्धन, यमुना के वसतिस्थित श्री हरिराय जी ने  
गंगा जी की महिमा कह भी गान किया है। पुष्टिमार्ग में गंगा जी की भी  
बड़ी मान्यता है :

गंगा पावन नीर बहत ।

छार सेत पात की यों कहत नित प्रति हरिछु के चरन रहती ।

सकल सिद्धि यमुना पू के संगम करत सबन को दीन सहत ।

रसिक करत तुम सौ विनती मोहि दीषे दरसायते हरि पद

बहत ॥ ६

संक्षेप में श्री हरिराय जी पुष्टि भक्ति-सिद्धान्त  
के ब्रह्मान्त पण्डित एवं कठोर साधक थे। उन्हें भक्ति रूप का साक्षात् अनुभव  
था। वे परम भावज्ञ, रहस्य एवं भावगुरु थे। पुष्टिमार्गीय भक्ति और वाचार्थ  
महाश्रु के ग्रन्थों का रहस्य जितना उन्हें प्रत्यक्ष था उतना अन्य किसी परवर्ती  
पुष्टिमार्गीय भक्त को नहीं था।

=====

**पुनः कथाय**

=====



### गी० हरिराय जी के साहित्य में दार्शनिक तत्त्व

गी० हरिराय जी मुख्यतः रसिक भक्त हैं। तत्त्व चिन्तन का वर्णित-वर्णन वाला प्रयास उन्होंने जान झुझकर नहीं किया। दार्शनिक मान्यताओं में वे बल्लभ पिटृष्ठ के कठोर अनुसरणकर्ता रहे हैं। अतः ब्रह्म जीव जगत् माया आदि के सिद्धान्तों पर उन्हें कोई भी नवीन बात नहीं कहनी थी। अतः उस पर पुनर्विचारण का आयासमय प्रयास उन्हें करने की आवश्यकता ही नहीं थी। उन्होंने स्थान स्थान पर आचार्य के अवतार का हेतु मायावाद का सण्डन करना कहा है। अतः उनके समस्त कथनों की ध्वनि यही निकलती है कि वे शक्तिर मायावाद को उसी प्रकार अस्वीकार करते हैं जिस प्रकार उनके पूर्वज आचार्य बल्लभ पिटृठसादि ने किया। गी० हरिराय जी ने मायावाद का सण्डन सिद्धान्ततः कम स्वीकार कर लिया तब उस पर नवीनता के साथ विचार करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता। शुद्धादित सिद्धान्त में माया या ज्ञान जी जीव को घेरती है - की सत्ता ही नहीं, हाँ जीव को कहींता ममतादि के वर्ण अवधिमा अवश्य कष्ट देती है। उस केमर्षा अवधिमा का हरिराय जी ने बल्लभीय सवर्ष में संकेत भर किया है। अतः शक्तिरी मायावाद की अस्वीकृति उनके ही उनकी मन्थित साधना और कवि कर्म प्रारंभ होता है। शक्तिर मत जगत् मायावाद को हरिराय जी ने बन्धकार जगत् तिमिर माना है। उनका प्रधान विरोध शक्तिर सिद्धान्त के अन्तर्गत माया की मान्यता से है। वे जगत्परीप जगत्मा जगत्मा जी जीव में है उसे अस्वीकार न करके प्रभु प्रेरित ज्ञान जगत्मा के पर्व अवधिमा को स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं :

१- माय्यन जी बल्लभ कम भयी ।

०

०

ज्ञान मन माया जगत् की, जति नखर तिमिर भयी ॥ २

१- ब्रह्म सर्वध कराय महाप्रभु के बु दीप निवारी ॥ ४० प०३० ५६

२- ४०प०३० ५३४

२- दिन पनि श्रीवत्स उदयी ।

सुतिपय कियी प्रकास क्वनि तस माया तिमिर गयी ॥ १

३- रति पय प्राट करन की प्राटे , कलनाभिधि श्री वत्सम भूतस ॥

०

०

माया मत की तिमिर नयायी, पय दिसायी वेद बचन बल ॥ २

माया के समकक्ष पुष्टिमार्ग में वविषा की स्वीकृति

है :

(व) श्रीवत्सम मोहि सेहु उबारि ।

०

०

लगी डाकिनी बही वविषा की कहि सकै ताहि उतारि ॥ ३

(वा) श्री वत्सम तीज मोहि उबारी ।

०

०

बरनाभुव नौका नहि सुभक्त बीच वविषा फसारी ॥ ४

वविषा रूप प्राप्त माला जीव और पुरुषात्मा के मध्य स्थित होने से पुरुषात्मा के बरणाभुव के दर्शन नहीं हो पाते । तात्पर्य यह है कि वविषा जीव का प्रकृत धर्म नहीं जबकि तबिह मत में माया उस से सिपटी हुई है :

१- ४० प० ४० ५३७

२- .. ५३६

३- .. ५५५

४- .. ५५७

“ भूमि परत मा डावर पानी ।

जिमि जीवहि पाय तफटानी ॥ ( मानस किर्तिधाकाण्ड )

माया को दूर करने के लिए जीव का प्रयत्न साधन चतुष्टय संपन्नता सहित ज्ञान योग साधना करके समाधि में “ ब्रह्मास्मि ” की अनुभूति करनी पड़ती है। जबकि अविद्या काम, क्रोध, मोह, बुद्ध्या की फल माया प्रभु कृपा से दूर हो जाती है। तात्पर्य यह कि जीवन के सतत दोष- स्वभावगत दोष भी प्रभु अनुग्रह से ही दूर होते हैं। जीव का कर्तृत्व कहीं भी पुष्टि मार्ग की स्वीकार नहीं। पुष्टिमार्ग की यही विलक्षणता है कि जीव विश्वास रखे कि वह दासपौजित की भाँति है और श्रीकृष्ण उसके मूलधार है। सब कुछ उनकी कृपा पर ही निर्भर है। शक्ति मायावाद जीव को उलझाने वाला है। इसीलिए उसको “ तम ” की संज्ञा दी गई है।

१) मायावाद बहूयी तम मूलतः, रावि किनु नाहि उवाच ॥१

२) मायावाद लगी भी तन की, जब तुम बेगि उबारी ॥ २

तात्पर्य यह है कि शुद्धादित दर्शन में शक्ति माया का कोई स्थान नहीं।

जीव :

शक्ति सिद्धान्त में जीव ब्रह्म ही है। अन्य कुछ नहीं<sup>३</sup>।

१- ६० प० ३० पृष्ठ

२- ,, ६०७

३- बीबी मल्ल नाथः ॥ कहावाक्य

किन्तु श्रुदादित दर्शन जीव ब्रह्म की विगारियों की भाँति तत्त्वतः ब्रह्म  
( ब्रह्म ) हीकर भी जन्य है। जिसकी स्पष्ट भगवद्विज्ञा से भगवत्प्रेरणा से  
सीखार्य होती है। शक्तिर सिद्धान्त में जीव की जन्यता उसी भाँति प्रतिभासित  
होती है। जैसे एक ही सूर्य जन्य पटों में प्रतिबिम्बित होता है। सूर्य । सूर्य की  
जन्यता का कारण पटगत पद ही है। उसी प्रकार नाम रूप की उपाधि के  
कारण ही जीव की जन्यता प्रतिभासित होती है। श्रुदादित दर्शन में सीखा  
जोर भक्तानन्द की प्रयोजन से ही किसे जीव की जन्यता की आवश्यकता पड़ती  
है। भगवान् स्वकीयता की पूर्णता के प्रयोजनार्थ " एको ह्यहं बहूण्याम् " उस उप-  
निषद् वाक्य की पूर्ति करते हुए अपने की ही जन्य जीवों में निर्माण कर देते  
हैं। लगभग यही सिद्धान्त रामानुजाचार्य भी मानते हैं।

“ स तदेव ब्रह्म तस्मिन्निव प्रविशत् ” विदात्मक  
जीव की सृष्टि करके भगवान् स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया और जन्य सीखार्यों  
का प्रयोजन सिद्ध करने लगा । दूसरा प्रयोजन जीव के सर्जन में उसका भक्त रूप  
का भोग है। भगवत्प्रेरणा के वात्स्यायन के सिद्ध ही जीव की सृष्टि हुई है। वात्स्यायन  
का ऐसा स्पष्ट पद है। “ ब्रह्मानन्दोत्पत्त्य भक्तानन्द योजनी ॥ ” अर्थात्  
जीव की ब्रह्मानन्द से हटाकर भक्तानन्द और निज स्वरूप वान करना ही भगवान्  
का लक्ष्य है। जीव की इस परम काष्ठापन्न वान अपना वानन्द का उपभोग कराना  
भगवान् की परम कर्तव्य कृपा है। इस कृपा में जीव का कोई भी साधन काम  
नहीं जाता । भगवान् यह सब निवेष्टा से करते हैं। यही उनका परम अनुग्रह है।  
“ अनुग्रह ” स्वयं भगवान् का निज धर्म अपना भगवत्त्व है। वे यह धर्म स्वयं ही  
निभाते हैं। फिर पर यह अनुग्रह होता है उसे ही “ देवी सृष्टि ” प्रकारा गया

है। इस प्रकार देवी-पुष्टि और वासुरी पुष्टि को दो भेद गीतों के आधार पर करे गए हैं :

“ देवी वासुर भवत ।

वाचार्य वत्सल ने वासुरी पुष्टि को प्रवाही पुष्टि माना है। गुण प्रवाह में पड़े जीव तामस- राजस मायात्मक होकर प्रभु प्रेरित मायावश वाचारण करते हैं। देवी जीवों के भी दो भेद हैं : पुष्टिजीव और मयांदा जीव । मयांदाजीव शास्त्र के अनुसार वाचारण करते हुए अगुह कदा की प्रतीक्षा किया करते हैं। कुछ अगुह प्राप्त पुष्टि जीव भगवत्सीता में समाविष्ट होकर उनके परिकर की कदा में प्रविष्ट होने की प्रतीक्षा में रह रहे हैं। इस प्रकार वाचार्य वत्सल ने अपने पुष्टि प्रवाह मयांदा भेद ग्रंथ में निरूपण किया है। वे कहते हैं :

“ भगवन्तारुम्येन तारुम्य भवन्ति हि- ” वाच्यं भगवान् तारुम्य से तारुम्य का भेदन करते हैं। गी० हरिराय जी ने देवी कथना पुष्टि जीवों की ही प्रधानता से चर्चा की है। वे वासुरी जीवों को चर्चा करके न तो कथन का भय करना चाहते हैं न समय तोना चाहते हैं। वे सीधे देवी जीवों की चर्चा पर आ जाते हैं। देवी जीवों के वैदिकत्व और तौकिकत्व के संदर्भ में वाचार्य वत्सल ने कड़ी सुन्दर बात कही है। उनका कथन है :

“ वैदिकत्वं तौकिकत्वं कायद्वयानिचु नाम्यथा ।

वैष्णवत्वं हि सर्वत्र ततोम्यत्र विपर्ययः ॥ २

-----

१- पु० प्र० म० भेद रत्निक २०

२-                    २०-२०

व्याप्त पुष्टि जीवों का वैदिकत्व और लौकिकत्व कष्ट क्या प्रबन्ध रूप से है अन्य प्रकार से नहीं, उन्हें लोक संश्लेष के लिए यह सब करना होता है, परन्तु उनका वैष्णवत्व सहज भाव से है और वैष्णवत्व प्रबन्धन क्या कष्ट भाव से है। उसी प्रकार प्रसादी जीवों को लौकिकत्व सहज भाव से है। वैष्णवत्व क्या वैदिकत्व प्रबन्धन भाव से है। प्रबन्धन भाव कारण पाकर ही उद्दीप्त होता है। पुष्टि मर्यादा एवं प्रसादी जीवों में वैष्णवता वैदिकता एवं लौकिकता सहज है। उनका व्यक्तित्व उत्पन्न दुस्संगति उद्दीप्त के कारणों से होता है। श्री गौ० हरिराय जी ने पुष्टि मार्ग का प्रकार देवी जीवों के लिए ही कहा है :

शासन सुधी स्थापसी वरष रात प्रगट मर ।  
 कलनाकर साधन विन जीव सब उदा रे ।  
 वग्या दर्श जी वत्सल प्रभु को ब्रह्म सम्बन्ध की ।  
 सब जीवन के पैर दोन नेह मरि निवारि ॥ ९

तथा

ब्रह्म संबन्ध कियौ जीवत्सव निरुही भोग धरावै ।  
 देवी जीव उदार किये सब, पवित्रा है करारवै ॥

भावण रूपता स्थापसी को मयरात्रि श्री गौबर्धन धर श्रीनाथ जी ने वाचार्थ वत्सल को यह आज्ञा दी थी कि वे ब्रह्म सम्बन्ध ( पुष्टिमार्गीय बीजा ) देकर देवी जीवों का उदार करें । उनका अवतार का यही मुख्य प्रयोजन है। वाचार्थ श्री ने श्रीनाथ जी की वर यह आज्ञा सिरोधार्य की और तीन बार सच्ची भारत

का प्रमण करके पुष्टिमार्ग का प्रचार करते हुए निस्साधन जीवों को पवित्र मार्ग में लगाया ।

हरिराय जी ने देवी जीवों की सृष्टि का संकेत देते हुए पुरुषाणिम की सीला का विस्तार कैसे हुआ उस पर उन्होंने बस उल्लासों में विचार किया है। जन्म प्रथम उल्लास में श्री पुरुषाणिम ने "वात्मानं द्विधा विभज्य" के अनुसार अपनी योगमाया का बाण्य लेकर सृष्टि की रचना का विचार किया । द्वितीय उल्लास में सतियों के रूप के विस्तार एवं साढ़े तीन करोड़ मुलिया रूप पतियों का संकेत दिया है। सूर्यसतियाँ और रूपापति उनके रास सीला मध्य पाती है- बीच है । जो पुष्टि सृष्टि के सबपर सदस्य सदस्यार है<sup>१</sup> यह सृष्टि उनकी नित्य सीला है :

\* नित्य सीला में प्रभु विराजे ।

ज्यों जलधार न टूट समाजे ॥

योगमाया अपना प्रभु की वाचाशक्ति का जीवों की बाधन किये रहती है और ये जल-सीला में रमे रहते हैं :

\*\* जीव सक्ति जावरन सु करही ।

जल भीतर सीला सब धरही ॥ २

प्रभु कृत माया में जो जीव फँसे रहते हैं वे ही प्रतापी हैं :

\* माया सींगी जीव कुमंति भरम भूखी पवि मरे ॥ \* ३

१- पृ० १० पृ० १२६

२- .. १२०

३- .. १२०

प्रवाही जीव जगत् तिरोहित आनन्द स्वं ज्ञान में कैसे रहते हैं :

“ श्री पुरुषाणिम उत्साह स तपि, गणितानन्द को ध्यावही ॥ १

देवी जीव नित्य ब्रजवास करते हुए रास तीला स में निमग्न रहते हैं :

“ कसप सारस्वत ब्रज की तीला, कही मन करी वास है।  
नाही देवी सृष्टि रसिकन श्री पुरुषाणिम उत्साह है ॥ ”

तथा

“ देवी सृष्टि उपारन कास्त श्री वत्सल प्रिय मुखी सुधास्त ॥  
कहीस तपन जीव की गिनती, तीला स त मक्त प्रीति ॥

सात्पर्य यह है कि श्री हरिराय जी ने देवी जगत् सृष्टि जीवों की ही चर्चा की है। बाहुरी जगत् मयांदा जीवों का तो धकेल भर ही दिया है। वैदिक जगत् जीवों ने जो अवतार लिया वे मयांदा जीव हैं जिन्हें प्रभु ने बाद में रास तीला में प्रविष्ट होने का अधिकार दिया है। इस प्रकार श्री वत्सल के माध्यम से भगवान् ने देवी सृष्टि को जगत् सिया और कुर दत्त जगत् प्रवाही सृष्टि को प्रवाह में बली दिया :

देवी सृष्टि जगत् करि, कुर दत्त जगत् ।  
तीला सब प्रकार करी, देवकन जगत् ॥ २

तथा

महित मारन मयानिरमस, देवी जीव हुराह । ” ३

१- ड० ल० ली० ५२०

२- .. ५२७

३- .. ५४६



तात्पर्य यह कि जीव की जन्मता स्वीकार करने हुए  
 एवं मायावाद तथा प्रतिबिम्बवाद से विरोध स्थापन करते हुए गौ० हरिराय  
 जी ने दार्शनिक तत्त्वों की प्रसंगीपरान्त ही चर्चित किया है। उन्हें पृष्ठ ६  
 वही काव्य का सत्य बनाने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। मुरादि जट्टबापी  
 भक्त कवियों ने भी बल्मीय दर्शन की प्रसंगवश चर्चा की है। दर्शन उनका सत्य  
 नहीं था। उसी प्रकार हरिराय जी भी मुख्य रूप से राक्षिक भक्त हैं। बाजाय  
 की कृपा तथा अनुग्रह के उत्प्रेत में किंवा भगवान् की दयामयी कृपा की चर्चा  
 में जीवकाया सहज भाव से आ गई है। हरिराय जी ने पृष्ठ ६ तथा स्वतन्त्र रूप  
 से शुद्धादित दर्शन के तत्त्वों की नहीं लिया। जो तथ्य निर्णय है तथा जो दर्शन  
 परंपरा पूर्व से विष्णुस्वामि मतानुसारियों में चली आ रही थी वही गौ०  
 हरिराय जी द्वारा मान्य हुई। अनुकम्पा प्राप्त जीव का सदाण यही है कि  
 भगवदनुग्रह प्राप्त करे तदनन्तर उसे कुछ अन्य हाविकर नहीं होता।

“ जब मैं जीविकार किया मेरी,  
 जान न जान सुहावे ही ॥ ” १

गौ० हरिराय जी के प्रधान सत्य देवी जीव ही है। पर्यादा तथा प्रवाही जीवों  
 की उन्होंने अनुमातिमूल्य चर्चा की है।

कालः  
 -----

शुद्धादित दर्शन में काल सत्य है। शक्तिर मत में काल भिन्न<sup>२</sup>  
 -----

१- पृ० ५० पृ० ५८६

२- ब्रह्म सत्यं कालमिच्छया ॥

- महाबाबू

है, किन्तु वस्तुमीय दर्शन में जगत् ब्रह्म का ही रूप है। वह ब्रह्म के सर्वशेष से वृष्ट है। उसे बन्दार ब्रह्म कहा गया है। उसमें बान्धवों का तिरोभाव है। पूर्णानन्दत्व के अभाव के कारण जगत् को बन्दार ब्रह्म बन्धा बरण स्थानीय कहा गया है। जगत् का मगवान् से वाविभावं है उसी लिए संप्रदाय में ऊर्णनामि का दृष्टान्त बहुत प्रचलित है। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है :

“ योर्णनामिः सुखे गृह्णाते च ।  
यथा पृथिव्यामीशधमः सम्भवन्ति ।  
यथा सतः पुरुषात् केश लोमानि ।  
तथादारात् संभवतीह विश्वम् ॥ ” १

जगत् जिस प्रकार फूट्टी वाला फेलाती है वीर अपनी इच्छानुसार उसे समेट भी लेती है जयवा जैसे पृथ्वी में बीजधियाँ पैदा होती हैं वीर चैतन्य मनुष्य में लोमादि होते हैं उसी प्रकार बन्दार ब्रह्म से यह जगत् उत्पन्न होता है। नाम रूपात्मक यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म जगत् का वाविभावं करके स्वयं को ही वाविभावं करता है उसको रक्षा करता है जगत् जगत् रूप से स्वयं ही रक्षित होता है वीर अपनी इच्छा से उसका संहार भी कर लेता है इस समस्त क्रिया में ब्रह्म की रमणीयता ही प्रधान है। रमण बँकना नहीं किया जा सकता है इस-लिए उसने अपनी को ही जगद्रूप में परिवर्तित करके अपनी लोला के लिए चिन्मय सामग्री का वाविभावं कर लिया । वह सामग्री भी वह स्वयं ही है। उसके अतिरिक्त वीर कुछ नहीं । अतः सर्व तत्त्विक ब्रह्म भी महावाक्य ही है जो सर्ववाद का उद्घोष करता है। अतः मगवान् के तीन अक्षर सत् इति वीर बान्धव

जो पदार्थ ब्रह्म के सदृश में से निकलते हैं लोक में वे जड़ पदार्थ कहे जाते हैं। विद्वत् से निकलने वाले जीव तथा जो ज्ञानदांश से निकलते हैं वे सन्तर्पणी हैं। इन सब की अभिव्यक्ति सत्यरूप ब्रह्म से होती है। इसलिए ज्ञात् भी सत्य है वह असत्य नहीं हो सकता। भगवान् ने गीता में कहा है :

“ ना सती विधत्ते मायोना मायी विधत्ते स तः ॥ ” १

उसका मत ( सत्ता ) नहीं जिसका अभाव है उसकी सत्ता नहीं। बाधित-तिरोभाव पर ब्रह्म की ये दो शक्तियाँ हैं, जब परब्रह्म बाधित-तिरोभाव से काम लेता है तो ज्ञात् का अस्तित्व होता है। जब परब्रह्म की तिरोभाव शक्ति क्रिया-वती होती है उस समय शुद्ध परब्रह्म अथवा भगवान् ही अवशिष्ट रहते हैं। ज्ञात् ब्रह्म में तीन रहता है। इस प्रकार ज्ञात् तीनों कालों में सत्य है। इसी कारण ज्ञात् में भी परब्रह्म है। “ सत्त्वाच्चावरस्य ” शून्य से यह मती मीति प्रमाणित हो जाती है कि “ अवरस्य अवरकासीनस्य परमस्य कार्यस्य ज्ञातः कारणी ब्रह्मणिसन्त्वात् ब्रह्मात्मना अवस्थानात् तदनम्यत्वम् । ” कार्य रूप ज्ञात् कारण रूप ब्रह्म में अभिन्न रूप से स्थित था इस प्रकार ब्रह्म शून्य से उपनिषद्वादी से ज्ञात् का सत्यत्व सिद्ध हो जाता है। उसमें जब प्राम्ति होती है सभी विकार की प्रतीति होती है। वास्तव में वह विकारवान् नहीं है बाधित-तिरोभाव की शक्ति ही उसमें जन्म मरण की मीति उत्पन्न करती है। वस्तुतः वह सत्य ही है।

गी० हरिराय जी ने इस निष्पन्न तथ्य की यथावत् स्वीकार कर लिया अतः वे ज्ञात् के सत्य के पक्ष में पुष्प रूप से या स्वतन्त्र

१- भगवद् गीता २।१६

२- ब्रह्मसूत्र २।१।१६

३- वेदान्त दर्शन - भाष्य पृ० २६५

विषाद के रूप में नहीं पड़े । वे श्री भगवान् की सभी विसर्गादि सीताओं का रूप मानकर सीता विलास में रम गए । पुर का प्रसिद्ध होती का रूप काव्य में भगवान् की रमणीयता का ही संकेत देता है। रसिकोत्सव की सभी पुष्टि-मार्गीय भक्तों, वाचार्थी एवं कवियों ने इसी रूप में लिया है। गो० हरिराय जी ने भी कुछ ऐसी ही गंभीर चर्चा जगत के इस शाश्वत रूप का संकेत कर देते हुए की है :

“ ऐसी रस होरी की, यहाँ रस नहीं कुछ कानि । १

जहाँ तहाँ कसियत मरम बतानि, तहाँ रस में न बधानि ॥

यह जगत प्रभु की वन्द्य सीता है जिसकी रचना वार्नद विधि भगवान् ने अपनी भक्तों को सुल देने के लिए की है :

“ यह विधि रस रच्यो वार्नदनिधि, ब्रज वासिन सुलदाई ।

रसिक हरणि बित प्रभु अपनी की वन्द्य सीता गार्ह ॥ २

बराबर पुष्टि की प्रभु की वार्नदमयी सीता मान लेने से भक्त का देहाध्यास छूट जाता है और मन की बुद्धि व्यर्थ ज्ञान की ढोड़कर निवातस्व दीप की भाँति निर्झप एवं स्फाग्र हो जाती है।

“ यह सीता सुमिरत रसिकन के पुरत गई तन मरि ॥

वान ग्यान ते मन की बुद्धि, मई दासन की मरि ॥ ३

१- ३० प० पृ० ३६०

२- .. ३६१

३- .. ४०३

जातु के सत्यत्व को स्वीकार करते हुए हरिराय जी ने जातु संसार का भेद किया है। संसार को उन्होंने क्वाङ्कीय बताया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं :

‘ वणिये वस्त्रमाञ्जीत वरुण  
सकत साधन विमुक्त मुक्त्य फल फलम्  
संसार हरिदीश गोवरुण कर्ण ॥ १

उनके द्वारा प्रयुक्त ‘ मव ‘ वीर ‘ संसार ‘ शब्द स्फार्पणाधी हैं :

१- मवतु मव मय है ली  
वणुवादन कृतौ  
विहित गिरिवर धृतौ  
रति रति ॥ २

२- साधन रचित जीव कृत वरुणम्  
जयति सदा मव सागर तरुणम् ॥ ३

उनका ‘ विश्व ‘ जातु के लय में है :

केतो वितर विश्ववित पिटुठसपति पद  
सतत सेवन वानम् ॥ ४

१- हरिराय वन्द्यकी पृ० १

२- पृ० १० पृ० ११

३- हरिराय वन्द्यकी ४

४- .. ३ पृ० १६

वल्गुमाशील की शरण और उनके पाद- पद्मों के स्मरण में कवि ने संसार क्या खड़ा ममता से जीव का हटकारा माना है। उनकी मान्यता है :

वल्गुमाशीलैवत समान्यमान दासहरिदास जन हृद हृदये  
प्रकट कर पवतु भव भाव भजन परा निरुपधिकृपा करो  
जीव निजये ॥ १

संक्षेप में गी० हरिराय जी वाचार्थ वल्गु के फलानुसार जगत् को ब्रह्म का कार्य रूप सत्य स्वीकारते हुए संसार क्या भव को खड़ा ममता जीवों का निधान माना है। उससे भाग पाने के हेतु वल्गुमाशील की शरण और भगवान् का वाच्य ही एक मात्र उपचार है। वैसे वे जगत् को लेकर व्यर्थ दार्शनिक ऊहोपोह में नहीं फसे ।

परब्रह्म क्या पुरुषोत्तम :

गी० हरिराय जी अपनी संपूर्ण दार्शनिक मान्यताओं में वल्गु के कठोर अनुसरण कर्ता है। यह कहा जा चुका है अतः परब्रह्म पुरुषोत्तम के विषय में भी वे एकान्त भाव से वल्गुमानुषारी हैं। वल्गु के पुरुषोत्तम वेदीपनिषद् ब्रह्म सूत्र प्रतिपादित परब्रह्म छोड़ भी पूर्ण पुरुषोत्तम नहीकृष्ण है। अतः वल्गुमयी पुरुषोत्तम नहीकृष्ण का यहाँ संक्षिप्त संकेत देना समीचीन होगा । भुक्तियों में जिसकी व्याख्या 'सत्यं ज्ञानं परमं ब्रह्म' क्या 'परम-व्योमम्' कहने की गहं है और जिसके लिए यह घोषणा की गहं है :

-----

१- हरिराय वाक्यकी ४४ पै० १६

नायमात्मा प्रवर्तते तस्यै  
 न मेधया न बहुना बुद्धिर्न ।  
 यमेवैव बुभुक्षते तमेव तस्यै  
 तस्यैवात्मा विबुभुक्षते तनुं स्वाम् ॥ १

वह वात्म स्वरूप परब्रह्म प्रकृति पार, प्राकृत गुणों से परे वाणी के जप  
 वेद शास्त्रों के अध्ययन से जपना बुद्धि योग से जपना किन्ना से नहीं प्राप्त किया  
 जा सकता । वह स्वयं प्रकृति वर्ण करने की इच्छा करता है वह वात्म स्वरूप  
 परमात्मा उसके सामने जपना उसको अपने वाप को प्रकाशित कर देता है। उप-  
 निषद् के इस "वर्ण" और "विबुभुक्षते" पदों में परस्पर मावात्मक और अनु-  
 ग्रहात्मक होने का संकेत है। इसलिए वाचार्थ जीव को मावात्मक होने के लिए  
 कहते हैं। परमात्मा स्वयं अनुग्रहात्मक है। अनुग्रह जपना पुष्टि भगवान् का भगवद्धर्म  
 जपना निज धर्म है। जीव के प्रति वे अनुग्रह करने के लिए हुते बैठे हैं। आवश्यकता  
 है उनकी ओर अभिमुख होने की। वाचार्थ उस वात्म से परमात्मा को वार्तनदादि  
 दिव्य धर्मों से अनुभूति बतलाते हैं। उन्होंने कहा है वह परब्रह्म वाचीपान्त वार्तनदमय  
 है। उसके वतिरहित कुछ नहीं। निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण में वे कहते हैं :

निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह वात्म तंत्री  
 निरक्षत नात्यक्त शरीर गुणीश्च हीनः ।  
 वार्तन मात्र कर पाद मुलादरादिः  
 सर्वत्र विविध वेद विवर्जितात्मा ॥ २

१- मुण्डकोपनिषद् ३।२।३ नी० प्र० सं० पृ० १०६

२- त० की० नि० रत्नाक ४८

वाचार्थ की मान्यता है - ब्रह्म के मूल स्वरूप ज्ञान दया, शरण्य, शान्ति आदि अनन्त गुणीय है। और वे सब गुण दीन रहित हैं। लौकिकवत् सदीन नहीं है। पूर्ण ज्ञान के अभाव में जोड़ में ये गुण सदीन होती हैं। परन्तु परमात्मा ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण होने से निर्दीन है स्वतन्त्र है- माया और उसके गुणों के अधीन नहीं है। उसके हस्तपादादि अलौकिक हैं। वे आनन्दमय रह रूप हैं। जैसे सिला से निर्मित सिलाने के हस्तपादादि शरीरमय अथवा माधुर्यमय हैं। वैसे ही ब्रह्म के समस्त श्रीरूप आनन्दमय है। श्रीसिद्ध श्रुतिव्रता व- "रसो वै सः" "आनन्द ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म रह रूप सर्व आनन्द रूप है। आनन्द का आकार अलौकिक भावात्मक होता है। लौकिक आकार न होने से उसे निराकार (लौकिक आकार रहित) कहा गया है।

लोक में तीन प्रकार के भेद हैं :

- १- विजातीय
- २- सजातीय और
- ३- स्वगत

१- मनुष्य और पशु में भेद विजातीय भेद है। २- मनुष्यों में परस्पर भेद सजातीय है। ३- शरीर में अंगों का भेद स्वगत भेद है। ब्रह्म उक्त तीनों प्रकार के भेदों से परे है। वाचार्थ कहते हैं :

"सजातीय विजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम् ।  
सत्यादि गुण साहसै युक्तमौत्पत्ति को सदा ॥

ब्रह्म सच्चिदानन्द रूप व्यापक और अव्यय है।

"सच्चिदानन्द रूपं तु ब्रह्म व्यापक मध्यमम् ।  
सर्वतन्त्रित स्वतन्त्रं च सर्वज्ञ गुण वर्जितम् ॥



ब्रह्म सर्वशक्तिमत्, सर्वज्ञ, लौकिक गुणों से परे सत्यादि वर्तित स्वाभाविक धर्मावाता है। वह विरुद्ध धर्माश्रयी है। विरुद्ध धर्माश्रयत्व के मूल सूत्र भी वाचायें में उपनिषद् गीता श्रीमद्भागवत से लिए हैं : 'वर्णारणायान् महती महियान्' वादि उचितर्यों में वीर :

त्वं स्त्री त्वं पुमान् त्वं कुमार उत वा कुमारी ।

त्वं जीर्णां दण्डेन वन्यसि त्वं जालीं भवसि विश्वतोमुखः ॥ २

वादि औपनिषादिक श्लोकों में विरुद्ध धर्माश्रयत्व के बीज तो हैं ही, साथ ही श्रीमद्भागवत वादि में वात्स्य तीव्र किन्तु भवत परवश, परम वानासक्त परन्तु भवतरस रहित है। वन्तःस्थित होकर भी बहिःस्थित है। वश है फिर भी सर्वज्ञ है वादि लीला उदाहरणों से उनका विरुद्ध धर्माश्रयत्व सिद्ध हो जाता है।

वाचायें वस्तुमान मानते हैं कि वह असंख्य वर्तित ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में नानात्व में भी स्वरूप के साथ विद्यमान है। ज्ञान दृष्टि से विकल्प नष्ट हो जाता है :

वसण्ड वीतमानेतु सर्वं ब्रह्मैव नान्यथा ।

ज्ञानादि कल्प बुद्धिस्तु बाध्यते न स्वरूपतः ॥ ३

इसलिए वाचायें मानते हैं :

यमेव यज्ञी यस्य यस्मै यक्तुं यथा तथा ।

स्यादिर्द भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः ॥ ४

१- श्वेताश्वतर ३।२०

२- .. ४।३

३- त० बी० नि० त० २० प्र० ६५

४- .. ७३

इस पद्यस्य निवेष्टा है ही ज्ञाना विविध भाँति है विस्तार करता है :

• वैवात्कः समगवान् दिवावात्कभूत् ।  
 वैवायी कृतसहस्र परामितरम् ॥  
 एकश्चामी प्यस्ति वीज समुज्जितो पि ॥  
 सर्वत्र पूर्णं गुण को पि कृष्णो भूत् ॥ ९

इह वैवात्क है :

क- १- अग्नि होय २- दर्श ३- पीर्णमास ४- जातुमांस्य ५- सोमयाग

ख- १- देश २- काल ३- द्रव्य ४- मन्त्र ५- कर्ता

ग- चारों वेद ( ब्राह्मणमाग सहित ) ५- उपनिषद्

घ- पञ्च प्राण - १- प्राण २- अपान ३- उदान ४- व्यान ५- समान

ङ- वैवात्क १- पूर्ण २- वस ३- तैज ४- वायु ५- वाकाश

च- वैवात्कान्ता - १- तद्द २- स्पर्श ३- रूप ४- रस ५- गंध

छ- भगवान् के पाँच रूप जो वेद धारिणी के तिर हैं :

१- प्रदत्त मात्र ( हृदय ) में ध्यानार्थ

२- अगुच्छमात्र - वाग्यार्थ

३- वैत्र - यै - कर्म फल नियमार्थ ज्ञाना दर्शनार्थ

४- देह में - आनन्द अपना सुख जानार्थ

५- अस्तित्व में ( ब्रह्म और नासिका के मध्य ) वैश्वानर रूप में

ज- आदश सूर्यात्मक

ब) अग्नि रूप में

जा) परों विशाखों के रूप में सब तीतात्मक

उस प्रकार सतः सलग्न और वागे चलकर अपरिमित भगवान् के रूप है। और उस प्रकार वे अनन्त हैं। वे ही पञ्चम श्रीमद्भागवत में अवतारी होकर ब्रह्म स्वरूप रहकर भी भीतरि एवं वाह्यात् भगवान् कृष्ण हैं :

वाचायं बल्लभ कहते हैं :

“ वेदान्तोच भूतौ ब्रह्माणि भागवते तथा  
ब्रह्मिणि परमात्मैति भगवानिति स्मर्यते ॥ १

वही पञ्चम स्वरूप भगवान् श्रीमद्भागवत में अवतारी श्रीकृष्ण हैं, “ कृष्णास्तु भगवान् स्वयम् ” पञ्चम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण जो वेदान्त प्रतिपादित परम तत्त्व हैं वही जीवधारियों के लिए एकमात्र सेव्य हैं। यही बल्लभ का परम मन्त्रार्थ है वे कहते हैं :

“ वादिप्रतिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्य काम्यया ।  
निर्गुणानुभितस्मादि सगुणाद्यान्य सेवया ॥ २

१- त० बी० नि० सा० प्र० ६

२- श्रीमद्भागवत १-२-२८

३- त० बी० नि० सा० प्र० १४

ब्रह्म की सेवा है ही निर्गुणामुक्ति नित्य सीता प्रेम मिलता है। अन्य देवीपूजा है गुणामुक्ति मिलती है। इसीलिए बाबाय के मत में ब्रह्म ही पूर्णावतार है :

“ एते परिकलाः पुनः कृष्णस्तु भगवान् स्वयाम् ॥ १ ”

परम पुरुषोत्तम ब्रह्म के सम्बन्ध में श्री कृष्ण बाबाय भी ने लिखा “ गौ० हरिराय जी की वह वदार्थः मान्य है। बाबाय व्यस्य के हार्द की उन्होंने मली भीति सम्पन्न है। अपने संस्कृत ग्रन्थों में तो उन्होंने बड़े विस्तार के साथ लिखा है। अपने प्रभु के प्राकट्य और पुरुषोत्तम स्वरूप के लाविभाव पर उन्होंने युक्तियुक्त विचार किया है। भक्ति मार्ग में प्रभु का प्राकट्य ही परम फल कहा जाता है। वे लिखते हैं :

“ भक्ति मार्ग भगवतः प्राकट्य फल मुख्यते ।

परमानंद रूपत्वात् तदा विमर्षनं तथा ॥ २ ”

अर्थात् भक्ति मार्ग में भगवान् का प्रकट होना यही फल है। भगवान् परमानंद रूप हैं। अतः उनका प्रकट होना यही फलस्वरूप है।

भगवान् के इस प्राकट्य में भक्त का दुःख ही मुख्य हेतु है :

तत्र हेतुर्मुक्त दुःख रूपत्रितयै हीः

अतारी पि भक्तानां दुःखादेव हेर्मतः ॥ ३ ”

१- श्रीमद्भागवत १-३-२८

२- ड० बा० मु० १

३- .. २

“ इसी वं सः ” कहकर परब्रह्म का इस रूपत्व भुक्ति में सिद्ध किया गया है।  
 “ इसी ” में शृंगार इस ही प्रधान वंश पर राज है।

“ इसः शृंगार स्वास्ति नाट्य सिद्धान्त सम्मतः  
 अन्येषु सता नैव मन्यन्ते मरतादयः  
 शृंगार एव संघादन्त्ये पि स्यु सता इति ॥ १

नाट्य सिद्धान्त में शृंगार इस की ही प्रधानता दी गई है। अन्य इस यदि  
 शृंगार इस के साथ हैं तो वे इस हैं अन्यथा कुछ नहीं ।

शृंगार इस संयोग विप्रतीक में ही दो प्रकार का है ।  
 संयोग शृंगार संपूर्ण रसशास्त्र की क्रियाओं का आधार है। उसी प्रकार वियोग  
 शृंगार भावात्मक होने से भाव रूप क्रियाओं का वाज्य है। भावात्मक वासुदेव  
 श्रीकृष्ण शुद्ध सत्त्वात्मक है। वे भक्तों के प्रतिमान वस्तुकरण है। क्योंकि  
 भावात्मक व्यक्तित्व की प्राप्ति हुए या यों कहा जा सकता है कि वे व्यक्तता  
 की प्राप्ति हुए भगवान् का यह अभिव्यक्त स्वरूप ही वर्तमान कारणों का आधार  
 भूत होने से पुरुषोत्तम का आविर्भाव है। अपनी ब्रज भाषा कविता में भी  
 गी० हरिराय जी ने भगवान् श्रीकृष्ण की रसात्मक पुरुषोत्तम रस माना  
 है। उन्होंने “ नन्दत्वात्मक उत्पत्ति ” से अपनी तीसरा गान प्राप्त किया है :

“ क्षुमति सुत प्राट्यो मुनि कृते ब्रजराज ही ।

०

०

प्राट भये रसिक प्रीतिम गोकुल सिरताय ही ॥ २

ये पुरुषोत्तम ब्रज में तीसरा करने के लिए पधार हैं :

१- वं वा० मु० ३

२- वं प० वं १

\* करन सीता 'रक्षि प्रीतम' रहे ब्रज में जाय यह सीता वानन्द की निधि है।

\*\* हरि सीता यह वानन्दनिधि रक्षि सदा ही गावे ॥ ६

गी० हरिराय जी ने अपने दस उल्लासों में श्री पुरुषोत्तम के इस ब्रज अवतार की गाथा गाई है। पुरुषोत्तम दृढ़ रमणीच्छा 'स्त्री हं बहुस्याम्' के वाधार पर ही ब्रज में प्यारी है :

\*\* श्री पुरुषोत्तम को करौ प्रार्थन ॥

झन्की उल्लास परम तनहि गाऊँ ॥

०

०

सौमग्य तुलसीदत्त वायो ।

छद्वा रमन है रूप की सब कोटि मनमय पीसही ॥

०

०

स्व छद्वा के मरत बनार ॥ ३

इस रमणीच्छा का उद्देश्य सीता करना ही है और कुछ नहीं :

\* मेघ बुंद बरु रवि की किली ,

श्री पुरुषोत्तम सीता बरनी ॥

इस दृश्यमान जात का शाश्वत छद् नित्य है और सरिता के प्रवाह के समान बहिराम और बहिष्कृत्य है :

नित्य सीता में प्रभु बिराधि ।

ज्यों जस धारन टूट समाधि ॥

१- ६० प० श्लो ७

२-        ००    ६

३-        ००    ५१४- ५१५

ज्यों हरिता प्रवाह नहीं पाये ।

बलिष्ठान् धारा तट बाधे ॥ १

गी० हरिराय जी का मत है कि यह पुरुषांगम रस रूप है उनका उत्साह भी रस रूप है।

“ श्री पुरुषांगम उत्साह की रस रसिक रसमय भेतरही ॥२

यस पुरुषांगम के रस रूप की ब्रज और लीला भी नहीं जानते :

“ जानें नहीं जो ब्रज ब्रजा, वेद सुत नित गावहीं ।

श्री पुरुषांगम उत्साह रस तजि, गणितानंद की ज्यावहीं ॥

पुरुषांगम परब्रज रूप है। और ब्रज लीला में उसका विरह धर्माश्रयत्व सुरक्षित है। साथ ही उसकी स्वात्मकता, लीला काल में पूर्ण रूपेण परिताप्य हुई है। उसका स्वल्प “वार्तमान” है जगत् उसका गणितानंद रूप है। संसार बधिया बनित है जिसका लय ही जाता है परन्तु प्रप्रेम का लय नहीं होता। क्योंकि वह भगवत् कार्य है - “ प्रप्रेमी भगवत्कार्यः ” और “ जोव संसार उच्यते ” सुधित में ( सायुज्य में ) संसार का लय ही जाता है। प्रप्रेम का नहीं।

“ संसारस्य लयी सुधती न प्रप्रेमस्य कश्चित् ॥ ५

१- ह० प० ५१६

२- .. ५१६

३- त० की० नि० ता० २६

४- .. २६

५- .. २७

सुखित :

पुष्टिमार्ग में सुखित के फल वधिपा से हुटकारा पाता है। जो भगवद् अनुग्रह से ही संभव है :

“ विषया विप्लवो नु जीवो सुखतो भविष्यति ।

सुखित - सायुज्य सुखित श्रीकृष्ण सेवा से ही संभव है :

“ सायुज्यं वा न्यया तस्मिन् उभयं हरिसेवया ॥ ” १

गी० हरिराय जी लीलास की सुल्लसता देते हैं :

“ लीला स तं भक्त प्रीति ॥ ” २

लीला स प्रवेश ही हरिराय जी के यहाँ सुखित क्यथा निरोध है।

मन का निरोध भागवत की सगीदि लीलाओं से विरोध कर दशमस्कंधीय श्रीकृष्ण लीलाओं के अनुशीलन से ही संभव है। अन्य मार्ग नहीं। बल्कि भी उनके मत में साक्षात् पुरुषाणिम ही है :

“ पुरुषाणिम पूत नव बधुयारी, लीला ललित दितार्ह ही ।

रसिक धिरोमनि जीवत्सु सुत जय जय जय गार्ह ही ॥ ३

१- निबन्ध ३६

२- व० प० सं० ५२३

३- .. ६०५



=====

षष्ठः अध्यायः

=====

### गौ० हरिराय जी का ब्रज भाषा काव्य

गौ० हरिराय जी पुष्टिमार्गीय वाचार्थ परम्परा के मूल लेखक हैं। वाचार्थ परम्परा में संस्कृत के कव्यमय, मूल, लेखन, की ही परिपाटी थी। वाचार्थ वस्तुमय एवं गौ० बिट्ठल ने भक्ति और दर्शन सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थों को प्रणयन किया सब संस्कृत भाषा में ही किया। वाचार्थ वस्तुमय संभवतः ब्रजभाषा बोलते होंगे। पुरादि कव्यकाव्यों को शरण में लेने और ब्रजभाषा में लीलागान का वादित देने में उन्होंने ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया होगा। परन्तु यह निर्विवाद है कि उन्होंने जितना भी लेखन कार्य किया वह सब संस्कृत भाषा में ही था। वाचार्थ वस्तुमय एवं गौ० बिट्ठल नाथ जी वेद, उपनिषद्, भुक्ति, पुराण, न्याय, व्याकरण आदि के धुरन्धर पण्डित थे। उन का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। भक्ति के क्षेत्र में ब्रज भाषा उन्हें प्रिय थी क्योंकि वह कृष्ण लीला क्षेत्र की भाषा थी। पुष्टिमार्गीय वाचार्थों के बगली परम्परा भी वस्तुमय बिट्ठल के चरण चिह्नों पर ही चली। गौ० गिरिधर जी, गौ० गोकुल नाथ जी आदि ने भी संस्कृत में विकृतियाँ, टोकारें आदि लिखीं। गौ० गोकुलनाथ जी प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ब्रजभाषा साहित्य पर विशेष ध्यान दिया और उसकी एक व्यवस्था दी। वार्ता-साहित्य के उद्धार में गौ० गोकुल नाथ जी ने स्मरणीय कार्य किया। गौ० गोकुल नाथ जी के ब्रजभाषा के कुछ पद भी कहे जाते हैं। गौ० हरिराय जी ने भी अपनी प्रार्थनाओं का ही अनुसरण किया। उन्होंने संस्कृत भाषा में लगभग १४५ ग्रन्थ लिखी थी "हरिराय बाह्य-मुक्तान्तरी" के नाम से प्रकाशित भी है। इसके

वतिरिक्त "सहस्ररत्नीकी", "शेवा भावना", बष्टपदियाँ आदि और भी  
 अन्य ग्रन्थ हैं। उनकी ग्रन्थ संस्था कुल मिलाकर १७२ के लगभग रही जाती है।  
 निस्सन्देह उनका संस्कृत कृतित्व बेजोड़ और अनुपम है। किन्तु गी० हरिराय  
 जी<sup>19</sup> वाते वाते ब्रजभाषा में पुष्टिपक्षित साहित्य की कतनी विपुल रचना की  
 कुकी थी कि कृष्ण लीलापरक लाली पर संप्रदाय में प्रचलित हो गए थे। उनके  
 जन्म से १०-१५ वर्ष पूर्व ही बष्टहापी युग समाप्त हुआ था। अतः संप्रदाय  
 में ब्रजभाषा के कृष्णलीला परक पदों का कतना विशाल माण्डार उपलब्ध था,  
 जो कल्पनातीत था। आज उसका बहुत बड़ा भाग यद्यपि काल कवचित्त हो चुका  
 है तथापि भारतीय साहित्य में यदि कृष्ण भक्तिपरक साहित्य का लेखा जोखा  
 लिया जाय तो ब्रजभाषा साहित्य का फलदा आज भी सर्वाधिक भारी बैठेगा।  
 संस्कृत भाषा में लिखे जाते वाचार्थ चरण सर्व गीस्वामिगण भी ब्रजभाषा  
 में लिखे बिना संतोष प्राप्त नहीं करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि  
 वाचार्थ चरणों सर्व गीस्वामिगणों की ब्रज भाषा रचना परम्परा भी संप्रदाय  
 में बड़ी व्यवस्थित रूप से चल पड़ी और आज भी मिलती है। यहाँ तक कि संप्र-  
 दाय की महिला कवयित्रियों की भी एक विशाल परंपरा है। उनकी रचनाओं  
 में ब्रजभाषा का साहित्य, माधुर्य और सौंदर्य सभी कुछ निहित है। गी० हरिराय  
 जी भी उस परंपरा से वकूते नहीं रहे। संस्कृत के धुरन्धर प्रकाण्ड पीठित होकर  
 भी उन्होंने ब्रजभाषा में पद रचना की। कतना ही नहीं वे कई भाषाओं  
 के विद्वान् थे। ब्रजभाषा के वतिरिक्त उनके गुजराती फावरी में भी पद उप-  
 लब्ध हैं। उनकी ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ ढ टकसाली वतितय परिमाणित है। उस  
 पर राजस्थानी का प्रभाव है। अनाप जी के ब्रज से प्यारने के उपरान्त पुष्टि-  
 मार्गीय गीस्वामियों का स्थायी निवास लोक राजस्थान ही गया था। गी०  
 हरिराय जी जीवन के उपरांत में "लिपनीर" रहने लगे थे। अतः उनकी भाषा  
 में राजस्थानी प्रभाव स्वाभाविक है।

गौ० हरिराय जी का ब्रजभाषा पद संग्रह विशाल होना चाहिए । परन्तु उस पर विद्वानों, ब्रजभाषा प्रेमियों का ध्यान नहीं गया । अतः उनके प्रकाशित पदों की संख्या एक सहस्र से अधिक नहीं उपलब्ध हो सकी । जिसमें लगभग ६००- ७०० पदों का एक संग्रह "भीतल जी" ने मधुरा से प्रकाशित किया था । आज वह भी दुर्लभ हो जाता है।

### गौ० हरिराय जी की रचना में वस्तु- निरूपण :

गौ० हरिराय जी की ब्रजभाषा पद रचना का सर्वांगीण लक्ष्य ब्रजम संधीय कृष्ण लीलागान और वस्तुम महिमा गान है। उन्होंने अपनी पूर्वजों के प्रति जिस गहरी प्रणति पुरस्कार वास्या का परिचय दिया है वह उनमें पूर्व और पश्चात् देखने में नहीं आया ।

कृष्णलीला गान में उन्होंने जन्म से लेकर भगवान् श्रीकृष्ण के किशोर वय तक के कई ही रसात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं। वे स्वयं गहरे रसिक भावुक वैष्णव थे । उन्होंने अपनी ब्रजभाषा रचना ही "रसिक प्रीतिम" के नाम से की है। अतः उनकी काव्य सीमा श्रीकृष्ण की ब्रज गोकुल लीला तक ही है। उनके श्रीकृष्ण चित्र किशोर नित्य यौवन में संदीप्त गौ० गौप० गौपी, स्वयंस्वररिपों से आवृत नित्य लीला नायक हैं। अतः उन्हें बाल स्वभाव, मातृ स्वभाव प्रिया- स्वभाव, नारी स्वभाव की गहरी परत है। कृष्ण लीला संदर्भ में वे पशु स्वभाव तक का चित्रण कर सकते हैं। उनकी कृष्ण लीला रचना में ब्रज संस्कृति अपनी पूर्ण वैभव के साथ अवतरित हुई है। पुत्र जन्म पर गायों का सुंगार, महिलाओं की बधाई , दूध , दही हलदी का चिह्नक, दान- मान

नेग का लेन- देन , वाणी का बचना, मंगल गान, पुष्पों की बर्णां, डाढ़ी  
 डगुडिन का बाना, नेग के लिए उनका छठ पुष्पों की प्रशस्ति करते हुए वर्तमान  
 तक की बर्णां, इसी संदर्भ में वात्स्य प्रशंसा, मांगलिक वाद्यों पर स्वस्ति वाचन,  
 नादी वाद, गीदान, तिलदान, विविध वायु-जपों की बर्णां, बाल संस्कार,  
 सगर्भ, विवाह, नामकरण आदि वैदिक संस्कार, वेदाचार, लोकाचार की भावना  
 बर्णां जिसकी परंपराएं आज भी ब्रज में विद्यमान हैं, वे सब गी० हरिराय के  
 काव्य का विषय बन गईं। यहाँ गी० हरिराय जी का वस्तुपक्ष दृष्टिकोण  
 प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाया।

### श्रीकृष्ण :

गी० हरिराय जी के श्रीकृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम होकर  
 भी यशोदीसँग लासित ब्रज जन पालक हैं। माहात्म्य जानकर सुदृढ़ भक्ति-भाव  
 भावित श्रीकृष्ण की ब्रज सीता का गान करना ही उन्हें मनोष्ट है। अपनी  
 योग माया से बाधित रहकर लोक में सीता करना उनके श्रीकृष्ण का चरम लक्ष्य  
 है :

योग सखित वाचन पु कर ही । जन भीतर सीता सब धरही ॥ २

श्री पुरुषोत्तम का उत्साह ही उनका जीवन सर्वस्व है।

१- मैं डाढ़ी तुव कस की सुनौ घीनमनि राय ॥ ६० प० स० ५

ब्रज मंडल धिगरी जिसी सब मेरे विजयान ॥

२- ६० प० स० ५२०

### श्रीराधा :

वृणमानु गौप की पुत्री श्रीकृष्णमारी राधा उनके श्रीकृष्ण की स्वीकीया प्रिया है। यह सरस जोरी ब्रज में सुत की बल्लरी है जो ब्रजवासियों के भाग्य से उनके लिए रस सागर रूप है :

“ रावल श्री राधा प्राट महे

विधना यह भागन ब्रज जकरों रस की सिंधु दर्ह ॥ २

श्री राधा महारस रूप है उनके ही कारण ब्रज में मगवान् पधारते हैं। श्रीराधा वार्नवनिधि, सीमानिधि वीर ब्रज जन सर्वस्व हैं। वे मगवान् के अवतरण से पूर्व ब्रज में अवतरित हो गई हैं। अतः वे वय में श्रीकृष्ण से बड़ी होने पर भी उनकी कम्रिया हैं। वीर रस सर्वस्व हैं। मुरली, फण्ट, वान लीला वापि सभी रसमयी लीलाओं की संपादिका हैं। पुष्टि संप्रदाय की परंपरा के अनुसार हरिराय जी बड़े ने उन्हें स्वीकीया मानकर श्रीकृष्ण से विधिवत उनका विवाह कराया :

“ हुल्ल हुल्लिनि वधिक बनी । ” ५

१- ह० प० स० ८५

२-     . .     ८५

३- महारस पुरन प्राट्यौ जानि ॥ ह०प०स० ८८

४- वे वे कार कीत त्रिभुवन में जब रहें गिरिधारी ॥ ह० प० स० ८७

५- ह० प० स० ११७

वे वरुण सुन्दरी हैं :

“कहाँ लौ बरनी सब वीर निरुण ,  
तातेँ सबो बिधना जोरी वो की ॥ १

वे वल्लभ्य रसिक हैं :

“रसिक रस पाती ली गिनत न काहू त्रिभुवन में ।  
वफा रूप गुन गर्व सरी, फिरत सखि के मन में ॥” २

वे दूयेश्वरी हैं। उनका सर्विय लोकोत्तर वीर चन्द्रमा से भी बढ़कर है।

“तुम मुल खँद सहज सीतलता जा मैं बिधुल वीर हि भाँति ।  
छर नहीं राहु कलंक दोस नहीं बढत नित्य प्रति कान्ति ॥” ३

उनके भुवन मोहन सर्विय के कारण ही श्रीकृष्ण को उनके वलिखित कोई  
वच्छा नहीं लगता :

“उलभन के सिस जा डिंग निस पिन हूँ तेन मधुपन की पीति ।  
रसिक प्रीतिम प्रभु की साखी तैं, तोहि सखि वीर न सुछानि ॥ ४

वे मूल कवि हैं जो राधा के मुल से चन्द्रमा की उपमा  
देते हैं :

कवि मँद वे उपमा देत, मँद कीँ तेरे बदन की ॥ ५

१- ड० प० स० ११६

२- .. १२०

३- .. १२१

४- .. १२१

५- .. १२२

रसिक शिरोमणि हरिराय जी ने राधा के सौंदर्य वर्णन में कुछ कहा नहीं रहा है। राधा उनकी दृष्टि देवी हैं। उनकी कृपा के बिना वे श्रीकृष्ण की कृपा कटाफ की नहीं पा सकते। हरिराय जी का समय वह था जबकि चैतन्य भक्ति सिद्धान्त नय द्वीप से लौटे : लौटे : बढ़ता वृन्दावन की ओर ब्रजसरणी हुआ था वतः पुष्टिमार्ग पर चैतन्य संवदाय की राधा भावना का पुरा पुरा प्रभाव पड़ चुका था। हरिराय जी ने केवल कतना ही किया है कि पुष्टिमार्गीय भावना के अनुसार उन्हें स्वकीया माना है। परिणामतः दाम्पत्य जीवन के समय वनन्त किन्तु उन्होंने ब्रजभाषा में और अपनी संस्कृत रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं। हरिराय जी की राधा भाव वाली महारस साधिका वृष्टपदियाँ जयदेव कवि के जोड़ की हैं :

एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा -

‘मधुरिषु मिलने किमिति मिलै ।

कृष्ण की मानिनि मनसि विचारयत्रिजगति किमुनतिरद्वैतार्थ ॥ १

वतः भावाराधन के लिए हरिराय जी राधा जी से ही भाव याचना करते हैं ,

‘भवतु वस्तुनिमी रतिसयतिरुणावासपदिवासोपि तव चरण रणी ।

वास वासस्य हरिदासकस्याधुना देहि भाव भवति विधूस वेणी ॥ २

ईदृश में राधा भाव जिसे हरिराय जी ने महारस पुकारा है उनका दाम्प्य भाव है। वे रसिक प्रीतम के नाम से माधुर्यावासना में राधाभाव का हीजादर्स लिए हुए हैं। उन्होंने अपनी ‘सुगत भोजन’, दाम्पत्य प्रेम’, ईश केसि, सुगत विहार, नव विलास में वनन्त रसमयी चर्चाएँ की हैं।



यहाँ तक कि वे सुरतान्त वर्णन कर गए हैं। युगानुसृत उन्होंने नायिका भेद का भी वर्णन किया है।

सुरती :

हरिराय जी ने सुरती की भावोत्पत्ति का माध्यम माना है।

“गीत सुनाइ भाव उपजावै, पिन कर गमन थमावै ॥ १

नित्यप्रति के वैष्णुवादन की चर्चा का वे लक्षित भर कर गए हैं। और उसे बाल लीला में प्रसंगवश कह गए हैं। किन्तु रास क्रीडा समय के सुरती वादन को उन्होंने उचित महत्व दिया है। सुरती की ध्वनि ब्रवण मार्ग से प्रविष्ट होकर ब्रज छोड़कर गोपिकाओं के शिव में काम भाव की जागृति करती है :

“सुरती मोहन मधुर बजावै ।

ब्रजन सुनत ब्रजनन के मारग ब्रज जन हिरदै बावै ॥ २

यह वैष्णु सीता पाठन का भी माध्यम है :

वैष्णु छि प्ररित कर हित सौं, सीता सहित प्छावै ॥ ३

हरिराय जी का संगीत का ज्ञान कितना गहरा था वह उनकी सुरती के पदों से विदित हो जाता है। उन्हें स्वर तीन श्राम ( तीव्र, मंद, मध्यम ) उनकीस मूर्धन्या, उनचार तान सभी की चर्चा की है।

१- ४० प० ४० प० १६६

२-       ,       १६६

३- चर्चा

“सदा सुर तीन ग्राम, कहे सुरतना ।

तान उनवास मिति मेल मधि गावैं ॥” १

इसके अतिरिक्त उन्होंने पृथग के बोल देकर ध्रुपद गायन शैली जो वाज्जल हवेली संगीत के नाम से चर्चित है—की भीषणा की है। वे वाद्य, नृत्य और गान—संगीत के तीनों अंगों से सुपरिचित थे। पुष्टिमार्ग में संगीत कला का सर्वाधिक समर्थक है। मत्स्यपुराण का यह वाक्य —

“मत्स्यवताः यत्र गायन्ति तत्र विष्ठापि नारद ।

पुष्टि मार्ग में अक्षरः चरितार्थ है।

यमुना :

गौ० हरिराय जी ने यमुना के जल प्रवाह रूप बाधिमौलिक स्वस्व का तो मान्यता की ही है। उन्होंने उनकी कृष्ण की तुर्य प्रिया मानकर उनके बाधिदैविक रूप की नमन करते हुए प्रेम भजन की निर्विघ्न चलने देने की प्रार्थना की है :

“श्री यमुना जी । तुमही और न कोई ।

प्रेम भजन में करत विघ्नता सन्त सतावैं सोई ।

ताकी संग सुख नहि कीजै दीजै मार्गत जोई ॥ १

श्री यमुना के जल प्रवाह का माहात्म्य है :

रखिक कहैं सब सुत पावैगी जी बसु जर्म घीई ॥ २

१- ड० प० सं० ५०३

२- वही ५०३

यमुना का नाम स्मरण बहुमुक्त धाम ( गौरीक ) को देने वाला है। जब किसी मनुष्य का ब्रह्म सम्बन्ध होता है तो उनकी दक्षिण मुखा फड़कती है :

“ ब्रह्म सम्बन्ध जब करत हैं जीव की,  
तब ही उनकी दक्षिण मुखा फड़कै ॥ २

रास :

गौ० हरिराय जी ने रास का उसी प्रकार वर्णन किया है जैसा उनके पूर्ववर्ती वद्वत्वापी कवियों ने । वही सुरसी वादन और उसे श्रवण कर गोपिकाओं का देहातुर्लभान रक्षित होना । किन्तु गौ० हरिराय जी के ब्रज भाषा पदों में पूर्ण है रास लीला का समारोह वर्णित नहीं । रास श्रौद्धा का वे संक्षिप्त पर देते हैं :

“ नव रस रास बिलास हुलासन, ब्रज जलतिन मितकी ने ।  
बी बल्लभ चरन कमल कृपाते, रसिकादास रस पीने ॥ ३

बेणु वादन प्रसंग में जड़ प्रकृति की स्तब्धता, चेतनों का देहातुर्लभान साहित्य, संगीत की सूक्ष्मता सभी की चर्चा हरिराय जी ने संक्षिप्तात्मक पद्धति से की है।

उपसृक्त वस्तु निरूपण के अतिरिक्त उनकी नारी स्वभाव और पशु स्वभाव का गहरा अध्ययन था । गौप्यों के स्वभाव का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं :

“ धेनु धाय ढिंग बाप गड़े सब बदन कमल की हैर ॥ ” ४

१- ६० प० ३० पृ० ५०६

२- ६० प० ६० पृ० ५०६

३- .. ६५

४- .. ६६

अपरिचित को देखकर गारं काहू नहीं जाती । वतः कृष्ण को ही उन्हें टरना पड़ता है :

“ कान्त हो । वसुन्ती गैया लीवि टेरि ।

दूरि गई या बनतें भुलि गई, सुतावी कदम बढि पीताम्बर  
फेरि ॥

बिगारि गई न फिरत काहू पे लै लहुटी करिये जु झठी धेरि ॥

गायें अपने परिचित व्यक्तियों से कितना प्रेम करती हैं :

मैय्या धेरि धेरि राखी तरनि तनया तट

हूँ कि हूँ कि धिरि बधिरि बितवत ब्रजनाथ कौ ।

उनकी औरनि ही हैरिनी बहत ।

ठाही तिन्ह ठौर रहत है, वे जहाँ चरन के घरनी में लहत ॥

प्राट होत हरि रूप हृद में सुकि सुकि चरन रख गहन ॥ २

श्रीकृष्ण वन से विलम्ब से लौटने का कारण बताते हुए पशु स्वभाव की बात कनायास कह जाते हैं :

“ मैय्या । याते मई ज्वैर ।

जावत भाजि गई रू मैय्या, भाजि गई बन फेरि ।

दौरे ग्वात सब वाके पासै, फरन की करि जाठा ॥

परन्तु वह हाथ नहीं जारें । अन्त में श्रीकृष्ण को ही युक्ति करनी पड़ी -

१- ४० ५० ६० ७० ८०

२-            ११    ६६

३-            ११    ७७

“ ही चुकुरी पीठ कर फेरयो लेहैं तहँ लगाय ॥ ” १

वीर तभी वह काहू में लागहँ । माता की संतोष ही गया । पुन से गाय की कबूल में लाने की युक्ति सुन कर वह फूट उठी ।

“ बतियाँ सुनत रहिक प्रीतम की फूलत जसुमति माय ॥ ” २

गायों के स्वभाव चित्रण के उपरान्त हरिराय जी नारी स्वभाव के बहुभुत पारखी हैं। उन्होंने मातृ हृदय भी पहचाना है और सामान्य नारी हृदय भी । उस दृष्टि से इसका विवेचन वागे किया जाया । यहाँ केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कतिपय चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं : दीर्घकाल के पश्चात् संतति प्राप्त करने पर माता की मनोदशा -

लेकर गीद स्याम सँवर कौं, जसुमति फलना बैठायी ।

गीद लिरै हुलरावत गावत, तन मन बति वानंद बढ़ायी ॥ ३

मातारं प्रायः गीद के बच्चों के विधाय में ऐसा विनीद सोचा करती है :

बबहि हरत मन ज्वती जन की करि कटाच्छ गीपाल ।

वागे कहा करोगे मोहन, बिसरे हो ब्रजवास ॥ ४

माता की एक और मनोदशा :

“ अपनी धरम की करत बढ़ाई । मोहि बुझात महानिधि पारै ॥ ” ५

१- ४० ५० ६० ७५

२-     ,,     ७५

३-     ,,     ८५

४-     ,,     १४

५-     ,,     १४

बूढ़ी माँ अपने पुरातन पुण्यों का स्मरण करती हैं कभी कभी बड़े बड़े मनसुबे बाँधती है :

“ होइ बड़ी जब रत्न पीतंगी । तब बज्जुन करि ब्रज चीतंगी ॥ १

उपर्युक्त मनोवशावों के चित्रण के साथ हरिराय जी ने अनेक चित्रोपम वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं। उनका इस दृष्टि से सूक्ष्म निरीक्षण और अध्ययन दोनों ही अभिनन्दनीय हैं। किशोर अवस्था काम भावना का प्रवेश द्वार है। अनन्त उम्रग वर्तत छद्माएँ और वर्तत व्यक्तियाँ से उनकी पूर्ति इस अवस्था में हुवा करती है। गी० हरिराय जी किशोर तीता और किशोर भावना के माने हुए फलके जाँहरी हैं। वे “ स्वयं रासिक ” हैं और रासिक प्रियतम के गुणगान में निरत हैं। अतः उनके प्रस्तुत किए हुए चित्र इतने सफल और सटीक हैं कि उनकी ब्रज साहित्य की महानिधि कहना अनुचित न होगा। दान तीता में गोपियाँ उस मार्ग से जाती हैं जहाँ श्रीकृष्ण की उपस्थिति की पूरी संभावनाएँ होती हैं, परन्तु उनका कथन है कि वह उनका नित्य का मार्ग है :

“ आ मार्ग हम नित गढ़, कबहुँ सुन्यो नहिँ काम ।  
बाधु नहिँ यह होती है, सो मंगित गोस दान ॥ २

नूतन सम्पत्तियों को एक दूसरे की देखी की उत्क का एक चित्र-

“ ताडिली लालन देखत लाई ।  
मीरन मुल देखन को आवत घुँघट फद पै लाई ॥  
कबहुँ हरि के मुल देखन को अपनौ बदन उघाई ॥ ३

प्रियतम की तिकायत पर काम वासयत गोपिका किसी अन्य से कुछ नहीं सुनना

१- ड० प० सं० सं० १४

२- “ १०४

३- “ १०४

बाहती ।

“तू बिमि कहै कहूँ हौं न सुनीगी पिय यह बी बाहती सौं कहौगी ।  
मेरे बीच परी बिनि कोइ, तब कबस मुस देत ही सहौगी ॥ १

चरम आसक्ति के ऐसे चित्र अन्यत्र देखने में नहीं आते ।  
एक गोपिका दूसरी के दस्त पर सीमा कर कहती है :

“माई हौं हरिणी, हरि मेरी, बिनि कोउ : बीचपरी ।  
तब कबस की हौं ही समुझी, न दुरे प्रीति कोइ कहूँ करे ॥ २

व्याज के वर्णों का प्रदर्शन दृश्य -

“कबहुँक चुम्बन करत कपोल, हरिचन्द उजियारी ।  
कबहुँक प्रीतिम कधर सुधारस, मैतल की उधारी ॥ ३

विरह की चरम दशा में तथैय कथन कितनी चरत्ता से आयास हो जाता है :

“कहतौ न कहूँ करत सुधि मेरी, कहाँ जानैं किन हूँ मेरे कान ताते ॥  
तियन पै हूँ परति जाई है, ये न रेखी बूझिए नयमाते ॥ ४

धीरे धीरे मैं कभी कभी उन जड़ पदार्थों से भी बातें फड़ती हूँ जिससे हमें  
कभी उत्तर नहीं मिलता । विरह पीड़िता की उचित :

“कूजत फिरौ बिफि हूँ बेही, उन बोलन सौं बीसी ।  
रेखी कोऊ न मिली मो कौं सली, जा लागि फन तीसी ॥ ”

१- ४० प० ४० स० १६६

२-        ००        २००

३-        ००        २१३

४-        ००        ३११

वनिष्ट की बालिका से हम कभी कभी मन में तिली पीड़ादायक बानी व्यथा  
घटना की सम्बन्धित व्यथित की पढ़कर नहीं सुनाते और उसे कुछ का कुछ सुना  
देते हैं :

\* किधौं जानि लख सुमुखि रावरी और बालि सुनायी ।

०

०

किधौं पितायी ही है नाहीं, बातन ही मैं सु-यायी ॥ १

सात्पर्य यह है कि गी० हरिराय जी नारी मन के बहुल पारसी और कुशल  
व्येता है ।

बाल स्वभाव का किष्ण :

गी० हरिराय जी भगवल्लीला इस में वाकण्ठ निमज्जित  
रहते थे । कृष्ण की बाल लीला के अन्तर्गत के नाट्य का उन्होंने बड़ा सटोक  
विवरण किया है। बाल बेष्टा, बाल झीड़ा, बाल व्यवहार के वे बड़े स्वाभाविक  
चित्र दे गए हैं। धीरे धीरे कृष्ण शैशव से बढ़कर बालक वय में प्रवेश कर रहे हैं।  
बालक तो तोतली वाणी बोलता ही है। माता पिता और बड़े लोग भी उसके  
साथ बोलती माना बोलने लगते हैं :

\* बुलायति जमुदा तोतरे बोल । \*\* २

बालकों की मोती सूया का एक चित्र श्री गी० हरिराय जी की निज कल्पना  
हो नहीं पायेगी :

\* बेति दरफन मैं कहत गोपाल ।

हरी मैय्या । यह कौन छुवरी मोहि गो तेरी तात ॥



याहि गोद ते बैठि जिमानत, हौ न भेजंगी जाय ।

हौ बाबा को गोद बैठि हौ ते वपुसी सब साय ॥ १

मैय्या से नाराजी खाई तक बढ़ गई कि घर छोड़कर चले जायें वीर गोपियों के घर रहने लगें :

“बाब कसौ गो गोपि के घर, कुजौ न तेरी हाथ ॥ २

माता का हाथा भी नहीं छूएँ । माता के प्रेम के विभाजन पर बालकों में ऐसी क्रूरता प्रायः स्वाभाविक होती है, लड़ता बालक अपनी माँ का प्रेम विभाजन छोटी नहीं देत सकता । वन्तलोगत्वा माँ को विश्वास दिलाना ही पड़ा :

“तेरी ही प्रतिबिम्ब लहै, दरफ मरि ललाह ।

जो तू मेरी कही न मानै, दरफ हुँ छलाह ॥

कहाँ डुहरौ, मेरे तू ही पूत, हौ तेरी माह ॥ ” ३

माधुर्य को यह चरम सीमा गौ० हरिराय जी की निष कल्पना प्रसूत है। यही प्रतिबिम्ब स्व जीव लेता करता है :

“जरी मैय्या । हौ कला करौ यह तेरा संग न लावे ।

मेरी कही बात नहि मानै, यौ ही मोहि विरावे ।

तू बठ करि कर गहि दिन याकौ, मेरे संग फठावे ॥ ४

जो प्रतिबिम्बित बालक छोड़े दिन पूर्व जाना दुःखवाहं था, जिसके कारण माँ

१- ६० १० ६० २६

२- .. २६

३- .. २६

४- .. २६

से वाग्रह किया जा रहा है, वह उसका हाथ पकड़ कर उसके साथ कर दे।

गो० हरिराय जी ने भागवतोक्त बाल-चापल्य के वर्णन सूत्र शैली से दिये हैं। विस्तार यहाँ अनावश्यक है। इसमें सन्देह नहीं कि वे बाल मनोविज्ञान के भी अगाध पंडित हैं। गो० हरिराय जी का युग हिन्दी साहित्य के रीति युग का श्रीगणेश था। हिन्दी के कवि गण जहाँ एक और मौलिक सामन्तों और नरेशों को वासना उज्जित करने के लिए शृंगारिक रचनाएँ कर रहे थे। वहाँ संप्रदाय के वाचार्य एवं गोस्वामि लोग मन का इस रागात्मक वृत्ति को कृष्णान्मुक्त करने में तत्पर थे। गो० हरिराय जी इस दृष्टि से संप्रदाय के प्रथम वाचार्य हैं। जिन्होंने रीतियुग की प्रवृत्तियों पर हिन्दी में प्रथम बार लेखनी उठाई। यहाँ गो० हरिराय जी के ब्रज भाषा काव्य पर भाव पदा की दृष्टि से विचार किया जायेगा। गो० हरिराय जी मुख्यतः भक्त कवि हैं। प्रेम लक्षणा भक्ति के बाधेलाभ्य शर्णों में लीला गान ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा है। अतः उनमें मुख्यतः भक्ति रस का परिपाक ही पाया जाता है। इस दृष्टि से यहाँ उनके भक्ति रस पर विचार प्रस्तुत किया जाता है।

### प्रकृति चित्रण :

गो० हरिराय जी मुख्यतः शृंगारी कवि हैं। अतः प्रकृति चित्रण में वे अधिक नहीं रहे। तथापि उनके ब्रजभाषा काव्य में प्रकृति का चित्रण वासन्धन एवं उद्दोष दोनों ही रूपों में मिल जाता है। वे ब्रज की नैसर्गिक स्मणीयता को अपने भक्ति की जातों से वेत चुके हैं। अतः ब्रज की स्मणीयता तक ही वे केन्द्रित हैं। उनके आराध्य की वह झीड़ा मूर्ति है। अतः लीला चित्रण में प्रारंभिक रूप से जो प्रकृति वर्णन जा गया है वह अन्धशा प्रकृति

बिना उनका लक्ष्य नहीं फिर भी ब्रज के वन, सरोवर, यमुना, गीवर्धन उसका  
रमणीय परिसर, पर्वत, शिखर, गह्वर कुंज सभी को वे बालम्बन विभाव के  
वन्तर्गत वर्णन कर गए हैं। किन्तु उन्होंने ब्रज की रमणीय प्रकृति और नैसर्गिक  
झटा का वर्णन उद्दीप्त के ही वन्तर्गत विशेष रूप से किया है। अपने दस विलासों  
में घटावों के पदों में संयोग शृंगार के वन्तर्गत प्रकृति का उद्दीप्त रूप ही रखा है।  
उनका क्लृ वर्णन संयोग शृंगार का सहचर बन कर ही जाया है।

गी० हरिराय जी के काव्य का भाव पक्ष :

गी० हरिराय जी मन्त्रित रस के जानाये हैं। उनकी कृति  
में लौकिक रस या भाव बूझना अनुचित है। वे वर्तुलिक रस या अनुभूति की ही  
वर्णन करते हैं। वे काव्य रस की चर्चा नहीं करते बल्कि "पुरुषोत्तम रस" की  
वर्णन करते हैं। उनका पुरुषोत्तम रसों के सः "के अनुसार रस स्वयं ही रस-  
गार समय साक्षात् रस ही है और सब रस उसी से आविर्भूत होते हैं। अतः  
वही प्रज्ञान रस या शृंगार रस रूप साक्षात् श्रुति सिद्ध रसात्मक पूर्ण ब्रज है।  
वे कहते हैं :

“ रसात्मकः श्रुतिशिरः सिद्धः स पुरुषोत्तमः ।

रसः शृंगार स्वास्ति नाट्य सिद्धान्त सम्पत्तः ॥ २

नाट्य सिद्धान्त के अनुसार रस तो शृंगार ही है। क्या-

“ अन्येषु रसतानेव मन्थन्ते भरतादयः ।

शृंगारे रस संवधात् सन्त्ये पि स्मृता इति ॥ ३

१- ह० प० पृ० ११०-१११

देवी- दस विलास र्व पृ० पृ० २०६-२१५

२- ह० वा० पृ० प्रथम तण्ड पृ० २०३

३- श्री पुरुषोत्तम स्वस्याधिपतिं निर्णयः : श्लोक ३

दूसरे रसों में रसत्व नहीं। अन्य सब रस शृंगार रस से ही सम्बन्ध रखते हैं  
तो वे रस माने जायेंगे। क्योंकि

\* यथैवाप्रकृतिः सर्वा महता स्वर्गं निर्मिता ।

शृंगारस्य तथाकार्यो रसा स्वीयगोचिनः ॥ ९

जहाँतु जिस प्रकार बड़े शीमान् लोगों के काम में स्वर्ण का उपयोग है उसी प्रकार ये सभी रस गुँगार रस के उपयोग में ही खाने के लिए हैं। यह गुँगार रस शास्त्र में दो प्रकार का कहा गया है :

स शास्त्रे विधिः प्रोक्तः संयोगो विरहस्तथा ।

इति यथा वा स्तुभ्यं संजीवनादिहे तथा ॥ २

संयोग सुंकार एव सात्त्विकी क्रियाओं के कारण पर आधारित है। उसी प्रकार विप्रयोग भावात्मी है। और भाव तम क्रियाओं पर आधारित है।

“रसिक प्रियतम” हरिराय जी ने अपनी ब्रज भाषा काव्य में उपर्युक्त आधार पर शृंगार रस को ही प्रधानता से लिया गया है। उनमें अन्य रस तलाश करना व्यर्थ है। शृंगार रस में ही रसिक प्रियतम गी० हरिराय जी का मन संयोग शृंगार में ही सर्वाधिक रमा है। संयोग शृंगार का पूर्णत्व विप्रलम्भ के बिना नहीं होता जो दृष्टि से उन्होंने विप्रलम्भ का काव्य विषयक बनाया है। अन्यथा वे शृंगारात्मा प्रभु के नित्य मिलन के ही शक्त हैं। उन्हें एक फल

१- श्री पुरुषोत्तम स्वध्यायिभाष्य निर्णयः श्लोक ४

3-

24

44

२- पूर्वी सिस्स्य शास्त्रीय क्रिया धारस्तथीनरः ।

भाषात्मा भाषलक्ष्मि क्रिया माञ्जलयः स्मृतः ॥ ५० स्व० आदि ८

का भी अपने प्रभु का वियोग सह्य नहीं। यही कारण है कि हरिराय जी मुख्यतः संयोग शृंगार के कवि हैं उन्होंने संयोग शृंगार एवं वास विलास के कनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। किशोर लीला के इन पादक मनोहारी वर्णनों से पूर्ण वात्सल्य रति के वे उदाहरण प्रस्तुत करने जावश्यक हैं जो माता यशोदा के मातृ-हृदय के परिचायक हैं। काव्यशास्त्रियों ने वात्सल्य को 'भाव' माना माना है। वस्तुतः पुष्टिमार्गीय आचार्यों अष्टशायी मन्त्र कवियों एवं पारवर्तों सम्प्रदायानुवर्तियों के हाथ पकड़कर वात्सल्य भाव 'भाव' न रहकर 'रस' बन गया है। उसी प्रकार मन्दित भाव मात्र न रहकर उन राम कृष्ण मन्त्रों की अनन्य शाधनात्मक अनुभूतियों के कारण वह 'रस' में परिणत हो गई है।

रसादि मनोविकार ही स्थायी भाव कहे जाते हैं,  
भाव को परिभाषा देने हुए काव्य प्रकाशकार ने कहा है :

“रतिर्दिवादि विषया अभिचारी तथाग्निः भावः प्रीयतः ।” १

वर्थात् प्रेयता, गुरु, सुनि, राजा और पुत्रादि जहाँ रति (प्रेम) के आलम्बन हैं- उनकी योग्यतानुसार मन्त्रित, प्रेम, अनुराग, श्रद्धा, पूज्य भाव, वात्सल्य अथवा स्नेह हो- वहाँ उस रति को मते हो वह विषयादि से पुष्टि हो या अपुष्ट भाव संज्ञा है। उसी प्रकार निर्वेद चिन्ता वादि भाव जहाँ प्रधानता से वर्जित हैं वहाँ इन संज्ञारियों को भी 'भाव' संज्ञा है। रति तो स्थायी भाव की अवस्था में विभावादि से परिपुष्ट होकर 'रस' में परिणत हो जाती है और तब उसे शृंगार रस माना जाता है। इस प्रकार 'रति भाव' और

‘स’ की प्रकार है प्रकारी जाती है। इस प्रकार के भेद में बालम्बन भेद ही कारण है। जहाँ रती पुरुष पर बालम्बन है वहाँ रति शृंगार स है। और जहाँ देवता गुरु आदि बालम्बन है वहाँ रति भाव है। देवता विषयक रति को भक्ति रूप कहते हैं।

पुष्टिमार्गीय आचार्यों एवं अन्य भक्ताचार्यों ने पूर्व भागवत काल तक जाते जाते भक्ति स का रूप धारण कर गये थे। कतः भक्ति का स्वरूप सर्वप्रथम भागवत में वैज्ञानिक पद्धतियों से सुस्पष्ट हुआ। भागवत में कहा गया है कि -

“ निगम कल्परोगीर्तिं फलम् ।  
 एकं सुखादमृतद्रव्यं संकुलम् ।  
 फिक्कत भागवतं स मातज्यम् ।  
 गुरुद्वयं रसिना मुनि माकुलाः ॥ १

भागवत काल से पूर्व आचार्य भारत ने भक्ति स को शान्त स के अन्तर्गत रखा था। उनकी का लक्षण अभिनवगुप्तपादाचार्य ने किया परन्तु मम्मट ने भक्ति को भाव संज्ञा देकर भाव के ही अन्तर्गत रखा। मम्मट स्वतन्त्र चिन्तक बालीक एवं आचार्य थे। वे अपनी भक्तियों की भी बालीकना कर देते थे। उन्होंने भक्ति को शान्त स के अन्तर्गत नहीं रखा।

वस्तुतः भारत महाभारत पूर्व के आचार्य हैं। उपनिषद्

कालीन भारत की भक्ति साम्राज्य का जन्म वातावरण देने की नहीं मिला था । अतः उन्होंने भक्ति इस की पकड़ नहीं मिला था । अतः उन्होंने भक्ति इस की गहराई नहीं दिया । आचार्य अभिनवगुप्त ने भी उनका अनुसरण किया । किन्तु मम्मट की भक्ति इस की एक पृष्ठ इस मानने की आवश्यकता प्रतीत हुई । शम या वैराग्य के अन्तर्गत वस्तुतः भक्ति जाती भी नहीं । वैराग्य जो भक्ति का स्वयम्भूत परिणाम है। परन्तु : इस सब सीते हुए भी मम्मट भारत निर्धारित हों की ६ रीत्या का अतिक्रमण नहीं कर सके । अतः गतानुगतिक न्याय है मम्मट ने भी उही भाव ही मान लिया और आगे की आचार्य परम्परा ने भी उही "भाव" के अन्तर्गत ही रखा ।

पंडितराज ज्ञानाश्रम ने भी इस गंगाधर में भारत की न्यायता की अगुणा होने पर ही इस दिया । वे कहते हैं :

“महाविं मुनि पत्तनानामिवाहं एव भावावि व्यवस्थाफलान् स्वातन्त्र्यायीगात् । एतानि नवस्वगण नास्त्य मुनि ज्ञान नियन्त्रिता भज्यते ॥” १

असौ ज्ञान ही निष्कर्ष निष्कर्षता है कि भक्ति की इस न मानना एक बड़ पात्र है। अन्यथा भक्ति में "इस" सामर्थ्य सर्वाधिक है और वह सर्वोपरि प्रधान इस है।

“ एतौ वै सः ” एतद्ध्ये तायै लब्धमानन्दी भवति  
जानवादेव सत्त्विमानि भूतानि जायन्ते जानदेन जातानि जीवन्ति ” आदि

कौपनिषदिक प्रमाणों से तथा ज्ञानन्द सहजस्तस्य व्यञ्ज्यो स कदाचन आदि व्यास वाक्य में ब्रह्मानन्द को ही उस के सत्त्व का मूल आधार माना है। साहित्य के दिग्गज आचार्यों ने भी उस को ब्रह्मानन्द सहोदर स्वीकार करते हुए "वैतन्य युक्त इति" आदि को स्थायी भाव या "स" स्वीकार किया है।

मधुसूदन सरस्वती कहते हैं। यथा-

" समाधि सुहृत्स्य मयित सुहृत्स्यापि समीचं पुरुषार्थत्वात्  
तस्मात् -- मयित योगः पुरुषार्थः परमानन्द स्वत्वात् इति निर्निगदम् ।"

भीमद्विभागवत में लोक प्रसंगों में मयित सानन्द को ब्रह्मानन्द से बदलकर कहा गया है :

" सात्त्विकारामस्य मुनयो निर्ग्रन्था बन्धुलुप्तये ।

पूर्वन्त्यै तैस्तु मयित मित्यै मूत गुणो हरिः ॥ ३

अर्थात् अविविधा ग्रंथियों से निर्मुक्त सात्त्विकाराम मुनि जहाँ को भी मयित उस का ज्ञानन्द बताते अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि मयित भाव नहीं उस है।

गौ० हरिराय जी का उद्योग विप्रयोगात्मा शृंगार मयित समय है। यह लौकिक शृंगार नहीं जिसका परिणाम जलेश होता है अपितु यह

१- भुक्ति स्वात्मेन इत्याध्वच्छिन्ना भानावरणा चिदेवसः ।

- मम्मट

२- मयित सानन्द

३- भागवत १-७-१०



वह हुंकार है जो प्रान्वय पर्यवसायी है। जो प्रान्वयवात्सल्य के विषय में भी कहा जा सकता है कि प्रीति के प्रति कोटा और नंद का स्नेह भाव एक सीमा न रहकर उस में परिपक्व हो जाता है। घृणादि उच्छृङ्खलियों का वात्सल्य वर्णन 'भाव' कोटि का नहीं उस कोटि का है।

माता कोटा के वात्सल्य का स्वल्प :

'बुलावलि जसुदा तो तेरे बोल ।

उपों तुल की करत प्रसिदा हुई कर परचि कपोल ॥' १

वर्म प्रेम का एक चित्र -

'उटि बैठे लिये गोद कोटा, लेंकर सुत सोभाति हूँ लोय ।

रखि प्रीतिम जानी गरी लगे मंगित कान्हा रीटी रोय ॥ २

वन से विलंब से लौटने पर माता की दशा-

'देखी मेरे जग की पथिना, उर की लैनर मोनी ।

रखि प्रीतिम प्रभु प्रीति जानिके धारि जालगन कोनी ॥ ३

माता की चिन्ता-

कामलि अति लीखर करी ।

अजहूँ न वाये वन ते मोहन, कर वार मन सोच धरी ।

१- पृष्ठ ५० पं० २८

२-        : ४१

३-        : ४२

झि झि झूमते सब सखियन सों, दोऊ नयन नीर डरे ।

रसिक शिरोमण मिले नंद सुत बदन झूमि के भरे ॥ १

माता के वात्सल्य का एक और चित्र

कहाँ कहीं तेरे हों लालन । मात कहीं मोहों वन की ।

जाउ उईग चाँदरे मोहन, गोरख पीली बदन तेरे की ।

सुन्दर पदन कमल कृमिलानों, और बसा भई मा तन की ।

रसिक प्रीतिम सों वरुन नंदरानी, हौ बलिहारी जग मन की ॥ २

इस प्रकार वात्सल्य के लीक मिल गये, हरिराय जी ने यमोदा के मानस में प्रविष्ट होकर प्रस्तुत किये हैं। उनके हाथों पकर वात्सल्य भाव एक कला की फ़ैल गया है।

गो० हरिराय जी का संयोग शृंगार वर्णन :

रसिक शिरोमणि गो० हरिराय जी पुरतान्त संयोग शृंगार की मूल भूमिका सम्पन्न होने पर उनकी शृंगार भावना का जौनित्य स्पष्ट हो जाता है। गो० हरिराय जी कठोर बल्लभानुसारी हैं। अतः शृंगार के बीच में वे बल्लभ का अनुसरण ही नहीं करते अपितु एक प्रकार से उनके व्याख्याता हो जाते हैं।

१- ह० प० स० ६४

२- .. ७४

क्तः संयोग शृंगार सम्बन्धी वत्सल्य की भावना का यहाँ निदर्शन करा देना उचित लगता है। वत्सल्य रास पैदाइयायी के अपने २६ वें अध्याय में करते हैं :

क्रिया सर्वापि सेवात्र परं कामो न विधेते ।  
 तासां कामस्य सम्पत्तिर्निष्कामेति तितास्तथा ॥  
 कामेन पूरितः कामः संसारं जनयेत् स्फुटः ।  
 काम भावेन पूर्णस्तु निष्कामः स्यात् न संशयः ॥  
 क्तो न कापि पर्याप्ता मग्ना मोक्षकतापि च ।  
 क्त एतच्छ्रुता लोको निष्कामः सर्वथा भवेत् ।  
 भगवच्चरितं सर्वं यतो निष्कामं पीयेत् ।  
 क्तः कामस्य बोद्धव्यः ततः शुभश्च स्फुटम् ॥ १

आचार्य ने भगवान् का वात्सल्यरामत्व प्रतिपादन करते हुए "क्रियाः सर्वापि सेवात्र" से भगवान् और भक्त दोनों में अलौकिक और लौकिक काम का अन्वय दिखाया है। पुष्टिमार्गीय भावना में भगवान् का स्वगत भेद मान्य नहीं। क्तः "वात्सल्यरामो व्यतीर्यत्" कहकर भगवान् का रमण वर्णित किया। भागवतकार ने एक और संकेत दिया है- "उन्मयन रतिं पतिं रमयाञ्चकार" में अर्जुन को जाग्रत करके रमण कराया में प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग है। स्वयं भगवान् का रमण करना नहीं प्रकट होता। फिर, "यथार्थः स्व प्रतिविम्ब विग्रहः" का दृष्टान्त देकर भागवतकार ने संकेत दिया है कि एक वात्सल्य

१- सुबो० १०।२६

२- श्रीमद्भागवत १०।२६।४२ सुबो०

जिस प्रकार अपने प्रतिबिम्ब से मिलता है उसी प्रकार यह रास श्रीछा भगवान् की यह स्वेच्छा से अपने प्रतिबिम्ब के साथ की गई श्रीछा है।

उपर्युक्त श्रीमद्भागवतोक्त रास श्रीछा प्रसंग के स्वरूप की सुबोधनी के आधार पर हुदयोग कर लेने के पश्चात् अष्टकापिरी वीर गो० हरिराय जी के सुरतान्त संयोग शृंगार के वर्णन का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पुष्टिमार्गीय परम्परा में एक मात्र यही मान्यता है-

‘ कामार्थ्य सुसुत्कृष्टं कृष्णो भुक्ते न चापरः ’ १

अन्यथा सुरतान्त वर्णन करने वाले गो० हरिराय जी ‘ कामार्थ्य दोष वर्णन ’ नाम से स्वतन्त्र ग्रंथ न लिखते । स्पष्ट है कि गो० हरिराय लौकिक काम के सर्वथा विरोधी हैं। उन तथ्यों को तथ्य में रखकर गो० हरिराय जी के शृंगार वर्णन के उभय पक्ष संयोग एवं विप्रलम्भ पर दृष्टि डाल लेनी चाहिए ।

संयोग शृंगार :

काम्यार्थ्य भाषावत्त संयोग शृंगार के कतिपय किन्तु इस प्रकार हैं :

पान स्वागत कर करि बीरी ।

कटक हूँ मोहन मुक्त निरस्त पत्त न परत बधीरी ॥ २

१- सुबो० काव्यप्रकरण अध्याय ३० का ५ ॥

२- ड० प० स० १३३

### कुंज कैलि :

- १- कुसुम सेव प्रिय प्यारी पौढ़ करत है रस बलियाँ ।  
हंसत परस्पर वार्नद हुलसत लटक लटक लिपरावन कलियाँ ॥
- २- पौढ़े स्याम राधा संग ।  
- - -  
रहे हैं लिपटाए दौऊ मिलि, रसिक निरस्त डंग ॥२
- ३- कबहुँ करत सुरति रस मन मर, कहुँ क लज धरत ।  
रसिक प्रीतिम राधा प्रिय प्यारी, रस कस हूँ मन हरत ॥३

नव दम्पती की रात व्यतीत होने का शौह नहीं रहता ।

‘ प्रिया सौं बातन बीती रात । ४

गी० हरिराय जी ने ब्रह्म वैवर्त पुराण की शैली पर  
‘ स्यामम् ’ के नव पिलासों की कड़ी रसमयी कर्वा की है। इनमें श्येश्वरियाँ,  
स्वामिनियाँ, चन्द्रावली ( पृ० सं० ७५० ) ललिता ( पृ० १५७ ) , पिलासा  
( पृ० १५७ ) चन्द्रभागा ( पृ० १६२ ) भामा सारंगी ( १६३ ) आदि सहचरियाँ

१- ई० पृ० सं० १४५

२- .. १४६

३- .. १५०

४- .. १५५

की बर्बा के साथ वृन्दावन, संकितवन, कोकिलावन, परासौली, कदली वन, गह्वर वन आदि ब्रज के निसर्ग रमणीय स्थानों की भी बर्बा कर गए हैं। गौ० हरिराय जी के नवविलासों के वर्णन पर ब्रजवैवर्त की हंसा स्पष्ट है। प्रत्येक दूधेश्वरी एवं सहस्ररी 'स्यामा' वय (श्यामा तु गोठश) वाणिज्य की है। इस समय की बर्बा में संगीत का मादक वातावरण पदे पदे हटाया हुआ है। ब्रज बालाओं की बरम आसक्ति इन वर्णनों में देखने की मिल जाती है।

‘बिन देखे पिय तेरे, मेरे नैन तमै ।

रसिक प्रीतिम सहि सकैं नहि छूटैं कैसे जनि सर पे ॥ १

इस आसक्ति में गुरुजन लाज की भी तिलांजलि दे दी गई है :

‘बावत है मन रेखी मेरे , सगरी लाज नमाऊँ ।’

रसिक प्रीतिम सौ प्रीति जोरी, सो सखी कहीं लौं दुराऊँ ॥ २

एक स्थान पर गोपी कहती है :

‘तू जनि कहै कहू लौं न सुनौंगी ।

पिय यह तौ बाहो सौं कहौंगी ॥’ ३

गोपियों की आसक्ति पर हरिराय जी ने बहुत से पद लिखे हैं, उनमें अनेक अनुभावों के वर्णन होते हैं : संकोच, सज्जा, क्लृप्ता, मान आदि संचारियों

१- ड० प० स० १७७

२-     ,,     १६०

३-     ,,     १६६

की तो गणना करना कठिन है।

स्नेहपरवशा गोपियों की एक मात्र वैतिम वधिताणा है, “ प्रान न हूँ प्यारे, स्नि न छोड न्यारे । ” वह उन्हें नेनी में रस लेना चाहती है :

प्रिय तोहि नैनन ही में राहूँ ।

तेरी एक रोम की छवि पर जात वारी सब नाहूँ ॥ \* २

गोपियों के विविध चित्र भी हरिराय जी ने दिये हैं।

रूपार्थितोक्त :

\* रसिक रस माती हो, गनत न काहू विमुनव में । \* ३

प्रेम गर्विता

\* जहाँ ली घट में प्रान , तुम की रिक्ताऊगी । \* ४

गोपियों के इन चित्रों को देखते हुए गो० हरिराय जी ने रीतिभासीन परिपाटी का पूरा पूरा पालन करते हुए नायिका भेद की

१- ड० प० स० २११

२-     ..     २१२

३-     ..     २१७

४-     ..     २१८

परंपरा का भी निर्वाह किया है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है -

#### वागमपत्तिका

“जरी माईं देख की मोहि चाहि पिय के बदन की,  
मेरी मेरी सलौनी नहि ॥ १

फारुत जाँस बाइ, वधरा नू परुत वरु फारुत बाई  
बाइ ॥

#### वासकसज्जा :

मेरी फरुन सो माँग कहाई ।

या मा मे मेरी पिय आवत है, तन मन प्रानत पाई ॥ २

#### उत्कंठिता :

सुधर पिय श्याम , वज्रु न जाये धाम ।

सिगरी रैन मा जोवत बिसरि गई, बिसरि गयी हरि नाम<sup>३</sup> ॥

#### धीरा :

सुधर तिय कौन , बाही पे उतारी राई नौन ।

नागर नटवर तनिक कितवन मे, बसे बाही के मौन ॥ ४

१- ड० प० स० २२१

२-     ,,     २२३

३-     ,,     २२५

४-     ,,     २२७



### बधीरा

जाही कौ लखनौ, ताके भवन प्यारी ।  
सोज धनि धनि जाकौ उर पर धारी ॥ १

### सैखिता :

सुधर पिय ऐन जाके रहे तुम रैन ।  
लटपटी पाग सुभग सीस पै, डरकि रहे कहु नैन ॥ २

यहाँ नायिका भेद के संक्षेप में कतिपय उदाहरण दिये गये हैं। हरिराय जी ने अपने युग की समस्त धाराओं का, विधाओं का, भाव-नाओं का, पदांतियों का, परिपाटियों का कच्चापेण किया है।

“ भुक्ते कृष्णो न चापरः ”

उनका जीवन दर्शन था । संपूर्ण भावनाओं का उन्होंने जिस निश्चल भाव से कृष्णसात् किया है। वन्तःस्थिति पुष्टि इस को यदि अभिव्यक्त न किया जाय तो वह पूर्ण नहीं होता ।

“ वन्तः स्थितो रसः पुष्टो बहिर्वन्त विनिर्गतः ॥

तदा पूर्णो नैव भवेदिति वाग्निर्गमस्तथा ॥ ३

१- ड० प० स० २३२

२- ,, २३७

३- कुयोधिनो १०।१।१२

वतः गौ० हरिराय जी ने अपने युग की समस्त काव्य शास्त्रीय पद्धतियों का अनुसरण ही किया किन्तु अपने वाराह्य कृष्ण को उल्टा कर । नायिकाओं के मानाभास , मान, मान- मनावन, गुरुमान, विरह सब की सर्वा यथास्थान की है। उपाहरणार्थ -

मानाभास-

‘सही री । हौं तो रुचि रहूंगी ।

जो मैं स्याम मनोहर वाणी, तो मैं बकि बकि बचन करूंगी । १

मान-

मान किया मानिनी, मनायी हू न माने नैक ॥ २

मान मनावन

तो हों सौ बलियाँ प्यारे पिय की लगी ॥ ३

गुरुमान

प्यारी बयौ हू न मानति है।

जबपि कहत बनाय बहुत तऊ, कष्ट बचनि करि जानति है।४

१- ह० प० स० २४६

२-     .,     २४८

३-     .,     २५०

४-     .,     २७६

झूठी

हरि हौं तो हारी, तिहारी प्रिया के पाँखु परि, परि ।

मान मोघन

ऐसी धर्याँ लसाईँ प्यारे तुमहूँ में ।  
जो मनुहार नपावै, कहूँ नहिँ जामै ॥

रासलीला में विरह

हरि के विरह विकल ब्रजवाल ।  
बिगुने चार बसन छुधि बिसरी, कहत फिरत वन वन गोपाल ॥

- - -

कबहुँक लीला करत फिरि सब, लोलामय है बलिहि बेहाल ॥

वैन्य :

नाथ हौं काहे दोन्ही बँडि ।

स्मृति

बहुरि कब देखौं नंद कुमार ।

संयोग क्लिष्ट के वर्णन में हरिराय की अप्रतिम है।

उनका शृंगार सात्विक इन्द्रियातीत, तत्त्विक, वासनामूढ मयित रूप प्रकट है। उनका संयोग शृंगार तौकिक काम से सर्वथा मूढ है। हरिराय जी ने तौकिक काम की निन्दा करते हुए लिखा है :

दोषोद्युप्रपन्नः कामो विविच्य विनिरूप्यते ।

यस्मिन्मुत्पत्तिस्तस्य नाशः सर्वदाप्यतः ॥ १

तौकिक काम मूढ बटाने वाला है -

विषयावेश हेतुत्वात् विदोषीत्यधिकारणम् ।

रजो गुण समुत्पन्नी रजः प्रदीप को मुक्ति ॥ २

यह काम मयित मार्ग का पर्यंकर दीखी है -

“मयित मार्गं महादिष्टा वैराग्या माव साधनात् ।” ३

कतः गी० हरिराय जी के संयोग शृंगार को तौकिक काम से सर्वथा मूढ समझना चाहिए । संयोग शृंगार को जिस गहनता से गी० हरिराय जी ने प्रस्तुत किया है उतनी ही गहनता से उन्होंने विप्रसन्न को भी प्रस्तुत किया है। ऊपर रास क्रीड़ा कास में दानिक विरह का संकेत संयोग शृंगार में दिया जा चुका है। यहाँ संयोग के द्वितीय पदा वियोग को प्रस्तुत किया जा रहा है। यह वैय्य और करुणा में पर्यवसित हुआ है। कृष्ण अपनी प्रिय गी० गोप, गीपी मंडल की झोड़ कम मसुरा प्यारे और गोपियों के पास उदय के माध्यम से संकेत भेजा वह विप्रसन्न हिन्दी साहित्य की कुसुम निधि बना हुआ है। अष्टहापी साहित्य ने तो इसकी एक परंपरा ही बना दी है। गी० हरिराय जी ने उसी विरह के

१- कामाण्य दोषा श्लोक १

२-        ..        ..        २

विषय में अपना काव्य कौशल बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

गो० हरिराय जी में विप्रसन्न शृंगार :

विरह की पीर वही जानता है जिस पर यह पड़ती है -

जाने कौन विरह की वेदन

देते बिनु मुल विधु पीवन की, वर्याँ हू न भिटत महात्मेन । १

विरह की चरम दशा में कभी कभी पागलों जैसी स्थिति हो जाती है। और हमें अपना प्रिय निकट ही में स्थित लगता है :

देत सत्तो देतत प्रज्जाय ।

कौन कहत हरि कीहि गर ब्रज, वाकत है गोधन के साथ ॥ २

यहाँ स्मृति संचारी वस्तु है। किन्तु 'विप्रसन्न' की साथ तिर हुए। 'विप्रसन्न' चरम पीड़ा के अन्तर्गत एक संचारी है। प्रिय के बिना घर की वस्तुएँ लाने बौझते हैं :

“ मित किहुरन की पीर कठिन है, सैय्या बेरि मरै ।

रसिक पीतम पिय वाच न कहि गर तारे गिनत रही । ” ३

रास सीता के अन्तर्गत भगवान् श्रीकृष्ण का तिरोधान होना- गोपियों को 'विरह की पीर' देता है। उस विरह की पीड़ा में वे

१- ड० प० स० ३२६

२- .. ३२७

३- .. ३३०

श्रीकृष्ण लीलाओं का अनुकरण करती है। यही अनुकरण वाच की रास लीला और कृष्ण लीला का जन्म दाता है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि प्रिय के वियोग में हम उसकी सीख स्मृति में उसका अनुकरण करने लगते हैं। गीफिराँ विरह में वही करती है \* कबहुँ लीला करत फिरि सब लीलापय है बति ही बेहाल । \*\*

गो० हरिराय जी ने दोनों ही अवसर के विरहों का वर्णन किया है किन्तु गोकुल से चले जाने के बाद जो विरह की पीड़ा गोपियों को हुई उसके वर्णन में गो० हरिराय जी ने गोपी भावान्ध होकर मानी वृद्धय ही निकाल कर रख दिया है। विरह की मनःस्थिति में वह स्वगतालाप करती है। ये स्वगतालाप कितने मधुर, कितने मार्मिक और कितने स्वाभाविक हैं :

\* भूली भूली वे जातीं तुम की प्रीतम कहीं जे मोति छरपाते । \* २

समय है किसी ने प्रियतम के कान भर दिये हों और उस कारण वह प्रिया की सुधि नहीं ले रहा -

\* अब तो न कबहुँ करत सुधि मेरी, कहा जानें किनहुँ मेरे कान ताते । \* ३

गीफिराँ वन्तर्जन्म में है-

\* ताज तजौं तो प्रीतम लाबै, न तबै पीर बढ़ाति ॥ \* ४

१- ६० प० ३० ३००

२- .. ३११

३- .. ३११

४- .. ३१८

गोपिका किसी गुमेन्गी माध्यम की तलाश में है जो उसके दोषों की चर्चा न कर उसके गुणों का स्मरण करा दे-

“ मेरे दोस मुलाह लाल गुन कहि सम्झा, समारै । ” १

जीवन दान देह भी दुरबल कृपा और कहू पावै ।।

प्रिय वर्तन के बिना उसे एक दाण वर्णा के समान समझा लगता है। भागवतकार कहते हैं- “ वृट्टिगुणायो त्वामश्रयाम् ” गी० हरिराय जी की गोपिका कहती है :

“ तन मन प्राण लपका हैं निसदिन, दिन एक होत बराबर बरसन । ३

उसने फा लिखकर अपनी विरह वेदना पहुँचाने का भी प्रयत्न किया किन्तु उसका फा क्षिपा लिया गया जयवा कूड़ का कूड़ पकर सुना दिया गया जयवा मेरे दोषों को बिना पड़े देकर ही फेंक दिया :

“ हौं तो सिति सिति हारी पतियाँ, ऊत्तर न स्वी पायी ।

कहा मयी बोधहि किनहुँ उन्ह कागद सै पु दुरायी ।

किधौ जानि स्त सुमुति रावरी और वीचि सुनायी

किधौ दियी कहू डारि देखि, दोस हृद सुधि जायी ।।

कनो यह ज्योतिष्गी सगुनिए ब्रासण सै प्रिय के जाने का मुहूर्त पूछती है।

“ बमना ” तू काहिरे मुहूरत, कब मेरी पिय घर आवै । ” ४

१- ह० प० स० ३१६

२- श्रीमद्भागवत १०।३२।१५

३- ह० प० स० ३२५

४- ह० प० स० ३५४

वह तो चरम वेदना में उसका वीर प्रत्येक शिथिल हो गया है। हाथों की बुद्धियाँ ढीली पड़ गई हैं :

“ वीर वीर शिथिल , हाथ हू की ढीली चूरी । ” १

यह क्लृप्ति स्मृति पत्र में वा रहा है जबकि -

“ यों लगी रही स्याम के चरनन, ज्यो गुरु लगी पासी ॥ ” २

वह वे ही श्याम उस कृष्णा के हाथ के पक्षी बन गए हैं :

“ रसिक वियोग कयी हम ही की भये चुबरी कर पासी ॥ ” ३

तात्पर्य यह कि वियोग की अनन्त मानसिक दशाएँ गी० हरिराय जी की वमर लेखों से अभिव्यक्त हुई हैं। वे जितने वियोग शृंगार के रससिद्ध कवि हैं उतने ही वियोग शृंगार के वियोग की गहरी अनुभूति उनके निज जीवन से उद्भूत थी। प्राणाधिक प्रिया के विच्छेद के ही कारण वे “ रसिक प्रियतम ” थे और उस शोकपर्यावसायी वियोग के मूस की वे वाजीवन सहते रहे। विरह पीछा की सर जैया ने उन्हें सच्चे वर्णों में “ रसिक प्रियतम ” बना दिया था। निस्सन्देह गी० हरिराय जी एक रससिद्ध कवि थे जिन्होंने कास्ययी रचना करके अपने को मृत्पुंज्य बना दिया था।

गी० हरिराय जी में अन्य रस :

गी० हरिराय जी मुख्यतः रसराज शृंगार के हो कवि हैं। उनमें अन्य रसों का अभाव है। रसराज रसित पुरुषापीन स्वयं शृंगार रूप

१- पृ० ५० पं० ३५६

२-     ,,     ३३९

३-     ,,     ३३९



है। उनकी लीला में शृंगार के अन्तर्गत ही समस्त रसों का समावेश है। इसीलिए हरिदास जी ने कहा है कि जिस प्रकार स्वर्ण कीकत जौ की शोभा बढ़ाने में उपकारी होता है उसी प्रकार श्रीकृष्णलीला पर शृंगार की शोभा बढ़ाने में ही अन्य रसों का उपयोग है। मगवान् शृंगार रस का संस्थान (वाधारभूत) जो स्थायी भाव है वह मगवान् ही है। उन्हीं के सम्बन्ध से अन्य रस हैं। अन्यथा उनका कोई अस्तित्व नहीं -

अन्येषु रसना नैव मन्यन्ते मत्तादयः ।  
 शृंगार रस सम्बादन्दे पिस्य रसा इति  
 यथैव कृतिः सर्वा महती त्वर्ण निमित्ता ।  
 शृंगारस्य तथा कार्यं रसा एवो पयोगिन ॥ १

अतः श्री० हरिराय जी के ब्रजभाषा काव्य में अन्य रसों के छूटने का प्रवास निष्कल है। फिर भी काव्य शास्त्रीय विवेकन मात्र के लिए उनमें करुण विप्रलम्भ के दर्शन किये जा सकते हैं :

करुण विप्रलम्भ :

कलौ कहियो हरि सौ जाइ ।  
 कहाँ सौ तुम हरि रहि हौं, बिहल डारत जराइ ॥  
 तान पान हु छुट्यौ तन में, ताम जब न समाइ ॥ २

“ मई ऐसी गति जो हमरी, कहत हैं समझाइ ।  
 रहिक रहि है तुम बिना हम कहाँ कहाँ सौ हाइ ॥

१- श्री गुरुगीतम स्वस्वादिभाष - श्लोक ३-४

२-श्लो ५० श्लो ३६०

उपर्युक्त कृष्ण विप्रलम्भ के उपरान्त कृष्ण के बाल-  
लीला प्रसंग में पीछे हास्य के दर्शन हो जाते हैं।

**हास्य :**  
-----

बैलि दरका में रहत गीपाल ।

बरी मयया । यह कौन दूसरी, पीछी तो तरौं ताल ॥

बाल वय के इस प्रतिबिम्ब दर्शन के प्रसंग में पाठक हास्य रस में डूब जाता है।  
बच्चों की यह कोमल एकान्त प्रेम लक्ष्यवासी जसूया बड़ी स्वाभाविक होती है।  
इस मधुर प्रसंग के अतिरिक्त उनमें स्वतन्त्र हास्य रस का अभाव है। वह शृंगार  
का सहचर होकर ही यह तन वाया है। शेष अन्य रसों में हरिराय जी ने  
शान्त रस की अवश्य प्रधानता दी है।

**शान्तरस :**  
-----

शान्तरस का स्थायी भाव शम कथना निर्दिष्ट है। उनके  
सत्संग, चैतन्यनी, पश्चात्ताप, आत्मय, दोषता, विनय आदि के पदों में शान्त-  
रस की प्रधानता है।

**विनय**  
-----

कब कहि ही कहना कहनानिधि ।

ही अपराध कोटि की करता, भरता । पीछि बारिही

कहि विधि ॥ ९

वार्त राजाओं में उनके प्राण पुकार उठते हैं :

ब) तुम सौ नाथ । फुलरत धारयी ।

गति हो, तुम पति हो, तुम मेरे, सो ही हौं उर धारयी ॥

का) नाथ हा हा मोहि दरस दीये ।

दर्शन के लिए उनकी व्याकुलता और संस्कृत ग्रन्थ ' हा हा दैन्याष्टक ' में दर्शनीय है।

वाक्य :

ब) सनेही सचि नंदकुमार ।

और नहीं कोई दुःख को बेली सब मतलब के यार । २

का) मेरी मति राधिका के चरण रज में रखी ॥ ३

बेताबनी

मन तैं मवित स्वाद नहीं पायी ।

साही तैं न तुच्छ पदार्थ विषम विषी बरुभायी । " ४

परवाताप-

काम धारि का उपवास करयी ।

नहिं हरि सेवा स्वाद कथा रस फिर फिर बाद करयी ॥ ५

१- हा हा निब का धार । हा हा दैन्याष्टक ४

२- ४० ५० ६० ६५६

३- .. ६५७

४- .. ६६६

सत्संग :

हरि के विमुख को मुख जिन दिखावे ।

जिनकी संगत , होत दुःख-----

----- कस तुरत बिसरावे ॥ ९

तात्पर्य यह कि सप स्यायी माय के साथ उनके शान्त  
रस में अनुताप, सत्संग , प्रेम उनकी उद्बोधन कथा बतावनी भगवदाश्रय में चरम  
वास्था वादि तत्त्व समाहित हैं। यदि शृंगार के उपरान्त उनके काव्य में  
किसी अन्य रस का पूर्ण परिपाकहुवा है तो वह शान्त है। त्याग, वैराग्य  
विवेक से परिपुष्ट उनका शान्त रस अत्यन्त गंभीर मन को शान्ति देने वाला  
है। साथ ही भगवदाश्रय दीनता और आश्रय भावना की रसमयता से वह मनोहर  
रसाग्रं और कमनीय है। उसमें वैराग्य की शुष्कता या सटस्थता नहीं है। उनका  
शान्त रस पाठक को भगवदभि मुक्त करने वाला है।

गो० हरिराय जी के काव्य में कलापदा :

गो० हरिराय जी का कला पदा अत्यन्त सबल है। वे  
संस्कृत साहित्य, काव्य एवं काव्यशास्त्र के पारंगत ब्रह्मान्त विद्वान् थे। अतः  
उनमें रस साधना के दिव्य दर्शन के उपरान्त हृन्द, कर्त्तार, भाषा का जो  
सुष्ठु समायोजन देखी में जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। गो० हरिराय जी को  
वर्षों पूर्व के समस्त पुष्टिमार्गीय बाबायों एवं कवियों का साहित्य विरासत

में मिला था। अतः उनको संस्कृत रचनाएँ तो अप्रतिम हैं ही, ब्रज भाषा रचना भी उच्च और उज्ज्वल कीटि की है। यहाँ उनके हृन्द् अलंकार और भाषा पर हम से विचार किया जायेगा। कलापदा के अन्तर्गत हम प्रायः निर्धारित बातों का समावेश करते हैं :

१- अलंकार विधान

२- हृन्द् विधान

३- भाषा सौष्ठव

काव्य में अलंकारों का बड़ा महत्त्व है। अलंकार काव्यात्मा इस के उफारी होते हैं और इस परिपाक में नितान्त सहायक होते हैं। अलंकारों की परिभाषा देते हुए आलंकार कहते हैं :

‘काव्य शोभाकरानध्वनिर्लंकारान् प्रपद्यते ॥ १

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले ध्वनि को अलंकार कहते हैं। काव्य के अन्तर्गत शब्द व्यंज्य एवं उसमें निहित ध्वनि वक्रोक्ति रसादि सभी आ जाते हैं। अतः अलंकार वादी काव्यालंकार सूत्रसूत्रिकार ने कहा है :

‘युक्तेरिवरूपी काव्यस्वदते हृद्गुण तदण्यस्त्रीष ।

विहित प्रणय निरंतरामिः सदलंकारविकल्प कल्पनाभिः ॥

कविता रमणी गुणमयी होने पर रुचिकर तो होती है किन्तु अलंकारों से सुसज्जित होने पर रसिकों के लिए आकर्षक हो जाती है। गुण और अलंकार

१- काव्यादर्श

शब्दों की उपस्थिति बाह्यतादत्तक हो जाती है। इस भाव का यदि अपनी अनिवार्यता के कारण व्यञ्जार्थ पर निर्भर होते हैं, परन्तु शब्द का सौंदर्य और व्यं की मनोहरता वर्तकारों पर ही निर्भर है। अतः अग्नि पुराण पुराणकार ने स्पष्ट कहा है :

‘वर्तकार्यानां नामार्थोक्तार मिच्छते ।

तं विना शब्द सौंदर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥ १

अतः वर्तकारों की महत्ता सभी को स्वीकार है।

पुष्टिमार्गीय कवियों की कविता कामिनी के लिए वर्तकार उसी प्रकार स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं जिस प्रकार फासिदास की शकुन्तला के लिए वामुण्ण स्वयमेव जुट जाते हैं।

गो० हरिराय जी में वर्तकार विधान

गो० हरिराय जी के ब्रजभाषा पदों में वर्तकारों का समावेश अनायास हो ही गया है।

गो० हरिराय जी में पांडित्य प्रदर्शन विशेष रूप से काव्यशास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शन की मनोवृत्ति लेशमात्र नहीं। वे इन दोनों से कोसों दूर हैं। उनके ब्रजभाषा काव्य में शब्दार्थोक्तार एवं वर्तकार स्वाभाविक रूप से जागर हैं। उनकी संक्षिप्त कक्षा यहाँ प्रस्तुत है।

---

१- अग्निपुराण

### वृत्त्यनुप्रास

- १) पासय नैदासयकृतवार्ध जुनुईपासपादित वार्ध ॥ (६०)
- २) माग्यम बस्सम धृतस वायि ।  
करि करना लक्ष्मन घर कलि मै, ब्रजप्रति प्राट करायि ॥ (५३२)
- ३) बन्यालय वसमपित लेनी वसदासाप वसत्संग हानि ॥ (५८७)

### वृत्त्यनुप्रास

- १) वलिकुल गुंजन रतिरसर्जन नैनन वैन दीन ॥ (३६५)
- २) शीतल करना करत निरंतर, पवन सुगंध परम सुत्तारी ॥

यही जग मै सार कहत चित बराबर ,  
सबन के बाधार धन निरधन के ॥ (५०६)

- ३) लट लटफन, गजमोति फलकन, बाल जीवन मत्तपारी  
बाह बरा बाबूबन्द बारी ॥

### वैकानुप्रास

गायी न गीयात, मन सावीना रसात ॥ सीता धुनी  
ना सुबोधिनी । ना साधु संग पायी है ॥

### बीष्ठा

१) ( समर्थन ) बीष्ठा में लिखित होती है।

हरि हरि काँडि के दूसरीपत्र कीये बात ।

२) बीष्ठा ( लेख में )

नाथ हा हा मोहि दास दीये ।

३) जनम जनम के कीटिक पातक ॥ (५४५ )

४) फूलो फूलो फिरत काना ॥ (२२२)

५) बिसरि बिसरि जात गृह के काज ॥ (२२२)

### यमक :

१) जाही की सहनी ताँके भवन प्यारी ।

सौँज धनि धनि जाही अर पर धारी ॥

२) वे हरनी हरनी न रहाई ॥ (३३८ )

### श्लेष : (समर्थन )

जो मोहि बाइ मिलानै उही ।

ताहि देहु म न भाँखेधाई ॥

- - -

राखि प्रीतिम जो तेहि दुखदाई ।

नातरु सवे दुखदाई ॥ (१८६ )

मोहि बुझात मरानिधि पाई ॥



### गो० हरिराय जी के काव्य में व्योमकार

#### उपमा ( सुप्तीपमा )

रासिक वियोग बयी हम ही की, भये कुवरी कर पासी ।

रूप-

- १) सीतल वृथा उपास करत बयी काट्यो मै न भुंज ॥ (३२६)
- २) बाढ़ बाढ़ नैन सरिता, जीय मन कृताई ॥

रूपकालिखयीक्ति

- १) मरै जात ही श्रीफल जीवन वसन सौं डीकि ।
- २) कीर कुरंग घुरंग कमल, काननसौं ठानन ठै ॥ (३६५)

#### उत्प्रेक्षा ( वाच्य सुप्ता )

- १- कटि किङ्कनी विराजत जति सौं, लटकत फंदना स्याम ॥
- मयन भुंज सीत पै सौंभित, लसत नीलमति धाम ॥ (२०)
- २- बैनी गुंथी कुसुम वापूजन, राजत हरि की पीठ ।
- मानहु सिद्धी सम्हारी मनमथ, बढ़त जुवति जन दीठा ॥

### दृष्टान्त :

- १- फेरि मारण दिस तैल लगाहें मीमर करी जररी ।
- २- सुनि राधे नव नागरी, हम न करे विसवास ।  
करकौ कमिस्त कौडि कै, को करे काल्हि की वास ।  
तेरी गोरस चालिबि को मेरी मन ललचाय ।  
फुरन सोस कर पाय कै, चकोर न धीर धराय ॥

### वर्णान्तरन्यास

- १- मिल बिहुरन की परि कठिन है, सैय्या बैरि भई ।

### संदेह

- किधौ जानि तस सुमुखि रावरी, वोर बाचि सुनायौ ।  
किधौ दियौ कहूँ डारि देसि कै, दोस हूँ सुधि वायौ ।

### संगिरूपक :

- भुति पय कियो प्रकास अविनितत माया तिमिर गयी ।  
विदुष बृन्द उद्गुन ही तेसियत , तसित उलूक मयी ॥ (५३७)

### परिपरित रूपक

- कृपा जस मरप्रति रह्यौ, जहाँ उठत भाव तरंग ॥

### वर्णन दृष्टान्त

### परिकरादुर :

बबहि हस्त मन जुवती जन की करि कटाक्ष योपाल ।  
वागे कहा करोगे मोहन, बिसरै ही ब्रज बाल ॥

उपर्युक्त उद्धरणों द्वारा गी० हरिराय जी के कृतित्व में कतिपय तर्कारों को दिखाया गया है। वस्तुतः गी० हरिराय जी तर्कार-वादी नहीं हैं। वे काव्य का लक्ष्य लीलागान मानते हैं। लीलासस्वत्पा है। एक दृष्टि से वे रसवादी हैं। उनकी रस साधना भक्ति साधना है।

### गी० हरिराय जी में छन्द योजना :

कलापदा के अन्तर्गत छन्दोविधान भी बड़ा महत्वपूर्ण है। पुष्टिमागीय साहित्य संपूर्ण रूपण गेय शैली में है। गी० हरिराय जी के जन्म से अस्सी वर्ष पूर्व से अष्टशायी कवियों का वही लीलागान प्रबन्धनभित गेय शैली में बला वा रहा था। गी० हरिराय जी को विरासत में रस, भाव, तर्कार, छन्द भाषा-शैली का एक विशाल भाण्डार मिला था। उनके पूर्व सुरादि अष्टशायी कवियों ने जتنا विपुल साहित्य प्रष्ट करके रत दिया था कि उनकी दिशा ढूँढने की आवश्यकता नहीं थी। सभी जीनों में, भगवन्वदिरों में लीलागान के अवसर पर एक बंधी बंधाई परिपाटी का अनुपालन चल रहा था, उसके अपने विधि निबेधात्मक नियम बन चले थे और लीलागान की एक मान्य परंपरा बन चुकी थी। वस्तु, भाग, भाषा, रस तर्कार शैली सभी वही कुछ होती हुए भी अभिव्यक्ति की मौलिकता और कल्पना की उछान के कारण उस साहित्य में सदैव नवीनता रमणीयता व्याप्त रही। यही उसके आकर्षण का कारण बनी हुई थी।

‘ जाणी जाणी यन्नावत मुपैति तदेव रूपं रमणीयताया ।

इस गेय लीला साहित्य पर पूरी प्रकार से लागू होता रहा है। वाज भी प्रबंध गभित्त मुक्तक गेय शैली में भगवान् कृष्ण की लीला का गान होता । अतः वह वाज भी वाकर्णण का केन्द्र है। गौ० हरिराय जी ने भी अपने ब्रज भाषा पदों को उन्हीं छन्दों में निबद्ध किया जो उनसे पूर्व वीरक पुष्टिमार्गीय कवि कर चुके थे । मध्य युग के कवियों को छन्दों का बन्धन अत्यन्त सुखद लगता था । उसका कारण उनकी संगीत प्रियता रही है। छन्द और संगीत में देह प्राण जैसा अनिवार्य सम्बन्ध है। छन्द से संगीतात्मकता अनिवार्यतः बनी रहती है। संगीत से रसोत्कर्षता में सहायता मिलती है। श्रीकृष्ण लीला ही ऐसी है कि वह संगीत का पल्ला कभी नहीं छोड़ती । विश्व के प्राण श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण का प्राण संगीत है। अतः उनका संपूर्ण चरित संगीतमय है। यति, गति, तालादि काल की गतिमयता के नाप हैं। यति, गति, ताल की विशिष्ट नियमबद्धता ही छन्द है। यही अब स्वच्छन्द हो जाते हैं तो उसे गथात्मकता कहा जाता है।

गौ० हरिराय जी स्वभाव से अत्यन्त संगीतमय हैं।

उनका संस्कृत साहित्य सुललित, मनोहर, कमनीय, कोमल बान्त पनावली से भरपूर संगीतात्मक है। उनकी संस्कृत अष्टपदियाँ तो कवि जयदेव के गीत गोविन्द के टुकड़ों की हैं। किन्तु उनकी ब्रजभाषा काव्य भी कम श्रुति मधुर नहीं रहा, भाव के तो वे धनी और मार्तण्ड माने जाते हैं, किन्तु छन्द, संगीत और अलंकार के क्षेत्र में भी वे पोंके नहीं रहे हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण उनकी ब्रजभाषा परिनिष्ठित, एकसाली, अतिशय सौष्ठव लिए हुए है।

गो० हरिराय जी के ब्रजभाषा पदों में निम्नलिखित कन्द भी मिल जाते हैं। ककुम, विष्णुपद, रंकर, सिंह, चौबोला, साटक, चौपाई, चौपई, फूलतार, लावनी, कुण्डल, रोला, दोहा, घनाकारी वादि। स्तुति, बधाई, एवं हर्षोत्सास के अवसरों पर ककुम एवं विष्णुपद कन्दों का ही अधिक प्रयोग मिलता है।

ककुम :

इस कन्द में १६ + १४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं और अन्त में तीन गुरु ( ) होते हैं।

बाज बधाई की बिटुलनाथ, भीविस्तम फिर लाये हो ।

श्री रुक्मिणि ने ढोंटा जायी, सुन सब ब्रज उठिधाये हो ॥

विष्णुपद :

इस कन्द में ३२ मात्राएँ होती हैं। १६+ १६ की यति और अन्त में गुरु होता है।

\* अलौकिक उच्छ्वस कह्यो न जाइ ।

भक्तन के उर सदा घसत प्रभु, प्रगट भए निष जग सुखदाई ॥

रंकर

यह १६ + १० की यति से २६ मात्राओं का कन्द होता है। अन्त में गुरु ।

लघु-

पलना मूलतः बाल गोपाल ।

बलि गर्भे जन नन्दन ऊपर, चारु नन्दन बिसाल ॥

सिंह

इस छन्द का हर वर्ण १६ मात्रा का होता है। अन्त में दो लघु और एक गुरु

रावल मैं श्री राधा प्राट मई ।

विधना यह भागन ब्रज जन को रस की सिंधु बई ॥

छात्र

इसमें १६+ १२ की यति से २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में काण ( ) होता है।

मोहि सुहावत है ये नैयया ।

नटवर भेष धरे जिन पाई, जावत तनु ब्रैया ॥

तार्क :

इसमें १६+ १४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं।

कहा करे लोग भरो कहूँ, तौ प्रीतिम रस पागी ।

कहूँ न सुहाय न जाय कई मन, ऐसी बनि तारु अनमगी ॥

चवपैय्या :

इसमें १० + ८ + १२ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु (    ) होते हैं ।

“जुरि चली बँधावन, श्रीवल्लभ गृह, फ़ाटि श्री बिट्ठल राह हो ।  
पूरन पुरुषोत्तम, आनंद निधि, श्री गोकुल सुखदाई हो ॥ (६०४)”

रीला :

यह छन्द ११+ १३ की यति से २४ मात्राओं का होता है।

मेरे लिए पवित्र राखी, जति सुंदर बनवावै ।  
सबै रीति ब्रज जन की जापु ही, करि कै सबहि सिखावै ॥

चौपई :

इसमें १५ मात्राएँ होती हैं।

“केसर बा सुमालम मनोहर । मुखता बिंदु मनु ससिरा ।  
नै न विमल प्रकृति मसि बिंद । बदन कमल के ठंग अलिकंदी ॥

छन्द :

पीत में हरि जूय बैठे, कैवट बापु कहावही ।  
चलत झुलत बिहसि सुख प्यारी छि पिय जुरि आवही ॥

झुलना :

यह ब्रज भाषा का अपना छन्द है। इसमें ३२ मात्राएँ होती हैं।

दीप दान दे हटरी बैठे, बड़ौ परब है बाज दिवारी ।  
विविध भाँति पट धुँवन सहिरे । नवल लाल श्री गौरधन धारी ॥  
(३७३)

दोहा :

यह १३ + ११ की यति से २४ मात्राओं का छन्द होता है। दोहा में इसमें जाना ही अन्तर है कि वहाँ ११ + १३ की यति से अन्त्यानुप्रास होता है।

“हंस गमनी मृगलोचनी सोभित सहज सिंगार ।  
चम्कत चंचल चीकने प्यारी सितकारे बार ॥

पनाकारी कविता :

२३ मात्राओं का आठ चरणवाला छन्द होता है।

मान कियौ मानिनी, मनायौ हू न माने नैक ।  
मान हो मैं सोच रही, मानिनी न मान के ।  
उभरि पिय देखे जाय, चाँफत नैन सखी ।  
तेन दे उठाई पिय, बैठे फा पान के ॥  
पिय को परसि जान, जान के भई वजान ,  
चतुर विहारी बू सौ, बोली निषा वान के ॥  
रही रही रसिकराय किनहू न हो जीन्यारे ,  
हम तुम पीढ़े दोऊ एक पट तान के ॥



### लावनी :

वस्तुतः यह ब्रज प्रदेश के संगीत की एक तर्ज है। इसमें ३० मात्राएँ तक होती हैं। इसे संगीत में फिट बैठाने का विशेष ध्यान रखा जाता है। मात्राओं का उतना नहीं एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ प्रथम विलास किया स्याम जू कीन्हैं विपिन विहार जू ।  
उनकी कहि विधि सोभा बनौ, कहतन जावै पार जू ॥

मूल्ता , छिंडोला, लावनीके वस्तुतः ये संगीत शैलियाँ हैं। ये ब्रज प्रदेश के संगीत हैं। शास्त्रीय बन्द नहीं ।

### छिंडोला-

हरि सली प्रमर करत गुंजार, कृपलता बिच ककमही ।  
हरि सली सावन घटा सुहाय, तामें बिजरी चमक ही ॥

### द्वितीय छिंडोला

सावन की पूर्ण मन भावन हरि जाये घर ।  
भूझी फरंग डोरी, बाघींगी छिंडोरी ।  
पहिरौंगी कुरुमी सारी, ककुकी कसि बाघी कारी ।  
हीरा के दासूजन सोई जग गोरे ॥

### तृतीय हिंठीला -

फरि कसभी सारी ।

पिय रंग बैठी प्यारी ॥

सुरंगहि गोरे सोभा ॥

ताम्र अति मारी ॥ (४६४ ) इसे ब्रज में सती हृन्द भी  
कहते हैं।

### ब्रज के रसियाओं की एक शैली :

क्षी भरी प्यारी दीजौ प्रान, प्रान, प्रान

याहि डौर काल मूल्योरी, सुखदान, दान दान ॥१०९ ॥

### ढाल शैली

निरदै मर बने न तोरु, बिनली सुन के तीजियै ।

पाह पीकी कंठ लावौ, अघर सुधारस पीजियै ॥

सुम कौ ली तन मन प्रान दीनि बिन नैसै कैसे जी जियै ॥

हाह हाह करि कंठ लगावै बेग वरसन दीजियै ॥ (३४७)

### सवैया :

यह कहीस मात्राओं का हृन्द है। अ०३०३०

बाज प्रमोदनी परम मोदकर बस प्यारी पिय पे लै जाऊँ ॥

बहुत रस रस रुज रुज रसि जहुँ और दीपक सुहाऊँ ॥३८१॥

उपर्युक्त छन्दों के कतिपय उदाहरणों के अतिरिक्त  
 गौ० हरिराय जी ने और भी अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।  
 जो मध्ययुगीन ब्रज साहित्य में ही प्रयुक्त होते थे। ब्रज शैली के अनेक ऐसे  
 ही छन्द हैं जिसे आज का साहित्य ज्ञातु नितान्त अपरिचित है। ब्रज की  
 अपनी शैली के छन्दों के अतिरिक्त मध्ययुगीन मुगल प्रभाव के कारण कुछ फारसी  
 शैली के छन्दों को भी गौ० हरिराय द्वारा प्रयुक्त किया गया है। वे मध्ययुगीन  
 साहित्य में ही प्रयुक्त हुए हैं। बाद में उनका चलन समाप्त हो गया।  
 संक्षेप में गौ० हरिराय जी ने अपने समय में प्रचलित सभी गेय छन्दों का प्रयोग  
 किया है। साथ ही सभी गेय शैलियों को अपनाया है। उनका संगीत विषयक  
 ज्ञान अतिगहन और अतिशय प्रामाणिक था। उन्होंने विविध राग- रागिनियों  
 का प्रयोग भी किया। उनके द्वारा प्रयुक्त कतिपय राग- रागिनियों की सूची  
 यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

गौ० हरिराय जी के ब्रज भाषा काव्य में प्रयुक्त राग-  
 रागिनियाँ- भारत में संगीत की दो शैलियाँ प्रचलित हैं।

१- उत्तर भारत की ध्रुपद धमार शैली तथा दक्षिण की  
 दक्षिणी भरत नाट्यम वाली शैली। गौ० हरिराय जी ने उत्तर भारत की  
 ध्रुपद धमार शैली ही अपनाई है। यहाँ के वर्णाश्रयों पर तथा नित्य सेवा में  
 संगीत की ध्रुपद शैली प्रचलित थी। आज ध्रुपद शैली की गायकी बहुत कम रह  
 गई है। यह तपस्या और साधना चाहती है। अतः मध्यकालीन मुगलिया शैली  
 जिसे स्यात की गायकी कहते हैं। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में स्नायास अर्चितन रूप  
 से प्रवेश पा गई स्यात की गायकी में भारतीय राग रागिनियों को बैठाया  
 गया। अमीर खुसरो ने यह काम मुगलों से १०० वर्ष पूर्व कर दिया था। अतः

ध्रुपद और स्यात दोनों शैलियों का समावेश पुष्टिमार्गीय मंदिरों में होने लगा । पुष्टिमार्गीय मंदिर ही मंदिर नहीं कहे जाते । वे नंदराय जी की हवेली की भावना से " हवेली " फुलारे जाते रहे हैं। इन हवेलियों में गाया जाने वाला संगीत ही बाज छिटक कर " हवेली " संगीत " कहा जाने लगा । वस्तुतः वह मङ्गलीय ध्रुपद और मध्यसुगीन स्यात शैली का ही मिश्रित रूप है। गौ० हरिराय जी के द्वारा राग- रागिनियों की चर्चा हुई किन्तु किसी भी प्रकार के वाच्यों की चर्चा उनके ब्रजभाषा काव्य में नहीं मिलती । गौ० हरिराय जी ने संप्रदायिक विधि- निषेधों को ध्यान में रखते हुए ही राग रागिनियों का प्रयोग किया है। उनके प्रयुक्त रागों की सूची निम्नलिखित है :

रागधनाधी ( ५९-२ ) दाफनी (३) वासावरी(५)  
कान्हरी (६) रामकली (१०) देव गंधार (१७) , बिलावल(२१) हंस (२४)  
टोढी (२७) नट (२८) हमीर (३६) मैगव (४०) विमास (४२)  
सारंग (४४) ललित (५३) रागनी (६४) मालव (६५) गौरी (६६)  
कड़ानी (६७) नायकी (८९) विभार (९४) भूपाली कल्याण (९५)  
दावरा (१००) कैदारा (१२२) मालकौण (१२७) ललित (१३०)  
पीलू (१४१) मालव (१५६) चवरी (१६६) विहाग (१६६) सम्भाव  
(२२३) सुह्री (२२४) मल्हार (२४५) कल्याण (२८६) भूपाली  
(२८५) पूर्वी (३१२) सौरठी बिलावल (३४७) धम्म (४०७) बंसत  
(४०६) लावनी (४११) देवगंधार (४१२) लमटा (४४६) रायसी  
(४६४) ।

रागों के आधार पर कवि की मनोवृत्ति और सेवा भावना का अध्ययन -

इस प्रकार गौ० हरिराय जी ने ४३-४४ राग रागिनियों

का प्रयोग किया है। प्रयुक्त रागों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से गौ० हरिराय जी की कीर्तन सेवा के स्वरूप और उनकी रुचि का पता सहज चल जाता है। गौ० हरिराय जी ने गौरी, सारंग, भूपाली आदि ३-४ रागों का विशेष प्रयोग किया है। प्रातःकालीन सेवा में कवि निरत रहने से भैरव का बहुत कम प्रयोग कर पाया है। भैरवी संप्रदाय में भगवान् के सामने नहीं गाई जाती। प्रभु की प्रातःकालीन सुतनिद्रा में व्याघात पहुँचता है। सारंग राग मध्याह्न का है। कवि बड़े क्लेश से मध्याह्न में पद रचना करता था और राज भोग, दर्शन सेवा उसे प्रिय था उसी प्रकार गौरी भूपाली आदि सार्यकालीन राग हैं। गाधूति विला में भगवान् की बहीपढ़ि का मुकुट नटवर वेश, कटि में काङ्गनी कधरी पर मुरली वाले वेश पर वह तन मन से निहावर था।

कवि की वर्णा- ऋतु विशेषकर सावन मास अधिक प्रिय था। अतः मल्हार राग में उसने बहुत पद लिखे हैं। मास नट, रायसी, तैमटा आदि राग राजस्थान में बहुत चलते हैं। यह उसके समीप निवास के चोत्कर्ष हैं। मालकौस रात्रि का राग है। कवि ने मालकौस राग के छे गिने पद लिखे हैं। वे रात्रि का समय चिन्तन भजन में बिताते थे। अतः मालकौस की अधिक गुंजाइश नहीं थी।

गौ० हरिराय जी के माल आदि राग प्रान्त विशेष के संपर्क के चोत्कर्ष हैं। इस प्रकार राग और वस्तु के आधार पर कवि की मनो-बुद्धि और उसकी सेवा भावना जानने में बड़ी सहायता मिलती है। गौ० हरिराय जी यद्यपि मुत्पतः साहित्य मृष्टा थे किन्तु उनका संगीतज्ञ रूप में उनके काव्य के आधार पर स्पष्ट हो जाता है। उनकी संस्कृत वृष्टपदियाँ और अन्य संस्कृत स्तोत्रादि तो संगीतज्ञों की निधि हैं। वृष्टपदियों का माधुर्य और स्तोत्रों का

प्रसाद गुण सर्वदिग्ध रूप से स्तुत्य एवं वरेण्य है। भगवान् के किशोर रूप का वह उपासक था। रसिक प्रियतम " के लिए और कोई दूसरा रूप मनविमलिणित हो भी नहीं सकता था। अतः रसिक ने रसिचिस्वर को संगीत के माध्यम से स्तुति किया है।

### गो० हरिराय जी की भाषा

गो० हरिराय जी ब्रजभाषा एवं साहित्य के अद्वितीय पैठित थे। उन्होंने ब्रजभाषा गद्य एवं पद्य दोनों में रचना की थी। उनका युग ब्रजभाषा का स्वर्णयुग था जबकि समूचे देश में पद्य रचना तो ब्रज भाषा में ही होती थी। यहाँ तक कि भारत के अन्य प्रान्तों के निवासी भी "भाषा" कविता के नाम से ब्रज भाषा को ही पहचानते थे। मुगल सम्राट् अकबर से लेकर मुहम्मद शाह ऐंग्लो तक कविता के नाम पर ब्रजभाषा ही लिखी जाती आये थे। यद्यपि राज काज की वीर दरबारी भाषा फारसी थी परन्तु जनसाधारण की भाषा एवं काव्य भाषा ब्रज भाषा ही थी। अतः प्रान्तीय व्यवहार ब्रजभाषा में ही होते थे। गोमन्त एवं बंगाल से लेकर महाराष्ट्र और सीराष्ट्र तक के कवि ब्रज भाषा में ही रचना करते थे। बंगला के मुरारी गुप्त, वासुदेव दत्त, सुकुन्द दत्त, गोविंदाचार्य ब्रजभाषा कविता के लिए प्रसिद्ध थे। उसी प्रकार तुकाराम नामदेव, स्कनाथ, रामदास आदि महाराष्ट्री वारकरी सेंटों ने भी ब्रजभाषा में कविता की है। तात्पर्य यह कि उस युग में ब्रजभाषा में कविता करना बड़े गौरव की बात थी। ब्रजभाषा की रचनाओं को यदि हम काल क्रम से विभाजित करें तो ब्रज भाषा का आदिकाल १५ वीं से १७ वीं शताब्दी तक मध्यकाल १७ से १८ वीं शताब्दी तक एवं आधुनिक युग १८ वीं शताब्दी

से बाज तक । गौस्वामि हरिराय जी १७ वीं शताब्दी में जाते हैं। उन्होंने १२६ वर्ष की लंबी आयु पाई थी । वतः उन्हें ब्रजभाषा के वादिकाल और मध्यकाल के संधिकाल का शिखरस्थ लेख माना जा सकता है।

ब्रजभाषा गद्य का १६ वीं शताब्दी का रूप पुष्टि-मार्गीय वार्ता साहित्य में देखा जा सकता है। वार्ताई १६ वीं शताब्दी की है। हरिराय जी का भावप्रकाश टिप्पण १७ वीं शताब्दी का है। हरिराय जी का ब्रज भाषा गद्य का नमूना उनके भाव प्रकाश से यहाँ उद्धृत किया जाता है :

“ श्री ठाकुर जी ने लौंडी की पास पैसा कराये,  
पर स्त्री नाहि जताये । सोउ जस सेवा होडी, तातैं झर्को न करे । काहे तैं ।  
पहली स्त्री जस की सेवा न करती तो चिंता नाहीं । ( सेवा ) करै होइनोहती  
तो दस पाँच दिन जस मरिरे । पाईं मरते न मरते तो चिंता नाहीं ।। ” १

उपर्युक्त उद्धरण से उनकी शैली से दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो वे व्याख्यात्मक शैली अपनाते हैं, दूसरे वे स्वयं प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा भाव स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं। जहाँ साम्प्रदायिक गुरु दार्शनिक जयवा मन्त्रित परक सिद्धान्तों को संकेत करना होता है वहीं उनकी ब्रजभाषा संस्कृत निष्ठ हो जाती है :

“ और बाबायं जी की यहवाशा है जहाँ ताईं पुरन  
स्नेह की प्रकार हृदयास्त्र न होई तहाँ ताईं सेवा ( यथा देहि तथा देवे ) अपनी  
देह की सीत, उज्ज्व विचारि के करे । ----

१- चौरासी वैष्णव का भाव - पारीत संस्करण पृ० २६

“ लौठो को मानसी सेवा की अधिकार हतो ।  
बष्ट प्रहर गोप्य रीति सौ मानसी करती । ”

“ याकौ स्वरूप अलौकिक जानियो । ”

भाव स्पष्ट करने में गो० हरिराय जी की ब्रज भाषा संस्कृतनिष्ठ होना स्वाभाविक भी था । पुष्टिमार्गीय सेवा भक्ति में बहुत से शब्द पारिभाषिकता लिये हुए हैं, साथ ही शुद्धादित दर्शन और पुष्टिमार्गीय भक्ति की अपनी वाराधना पद्धति में भगवन्मंदिर सेवा, पाठ, वैष्णवावाराधना भोजन पद्धति सभी में पुष्टिमार्ग की अपनी परिभाषिकता है। उदाहरण के लिए मंदिर सम्बन्धी शब्द :

फकारी, तफहड़ी, सिंहपाट, सण्डपाट, सांगामाची, ठाठ, बस्त्र, उपरणा, सूथन, काछनी, कुलह, नकवेसर, जारी, फरोला, निज मंदिर, तिवारी, डोल तिवारी, जगमोहनसिंह चौक, पौरी चिकु, टेरा, बंटा, सखड़ी बनसखड़ी, डौल मोह थाल “ वादि । जहाँ एक ओर साम्प्रदायिक पारिभाषिक शब्दावली का वे प्रयोग करते हैं वहाँ दूसरी ओर वे लोक प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग कर जाते हैं। उदाहरणार्थ- सठिया ( एक प्रकार का तम्बा फरोला जो बीच में बाँधकर कंधे पर लटका कर यात्रा में लोग चली थे । इसे ब्रज में “ सुजा ” भी कहते हैं। सरणी ( मार्गव्यय ) नकास ( पोछों की चिड़ी का स्थान ) डोंगी ( छोटी नाँका ) सत फर ( जपका ) किसानगी ( बैनदेन ) ।

भाव प्रकाश का प्रायः निम्नांकित गद्य शैलियाँ हैं :

१- इसी भाव प्रकाश- दामोदर दास संभवतः की बातें



### कहते हैं कि प्रश्नोत्तर शैली

- १) व्याख्या शैली
- २) प्रश्नोत्तर शैली
- ३) उपदेश शैली
- ४) वर्णनात्मक शैली

#### व्याख्या शैली :

साम्प्रदायिक पर्यादाओं की सेवा भक्ति सम्बन्धी भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या पाई जाती है। जैसे- वन्याग्रय न करना, वन्याग्रय के समान दूसरे दोष नहीं “ तथा “ हाँसी तो सख्य भाव को अधिकारमयी हाँइ तब ही बने । ” हृदय के भीतर की भाव सद् होइ तब काम होइ । ”

#### प्रश्नोत्तर शैली :

इसमें प्रश्न उपस्थित करके वही उसका समाधान भी प्रस्तुत कर दिया जाता है। इसमें “ कहाँ ते ” की पुनरावृत्तियाँ होती-वर्तती है, प्रश्न के साथ ही उत्तर प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस शैली का कारण स्पष्ट है । हरिराय जी भाव स्पष्ट करने के लिए “ कहाँ ते ? ” का बार बार प्रयोग करते हैं।

#### उपदेश शैली :

इसमें भक्तों के मन की स्थिति को सुधारने के लिए किसी

उपाय अथवा विधान का उल्लेख होता है और उपदेश दिया जाता है। यथा-  
 “सो ~~है~~ गोविन्द दूबे के मन में विग्रहता भई । ताकी अभिप्राय यह है जो  
 गोविन्द दूबे जीव तो द्वारिका लीला सम्बन्धी और सेवा भावना ब्रज की  
 करे । “सो मन लागे नहीं ---- सो बाचार्य जो महाप्रभु नवरत्न ग्रन्थ  
 तिसि पठाये । तू चिन्ता मत करे । चित की उद्विगता है, यह प्रभु की लीला  
 जानि । श्री ठाकुर में ते मन और ठौर जाय सोउ भगवदु इच्छा मानि ।  
 चिन्ता मति करिये । जितनी बने तितनी सेवा करियो । ”

वर्णनात्मक शैली :

इसमें किसी सेवा अथवा भावना के रहस्य की व्याख्या  
 की जाती है।

“शास्त्र पुराण अनेक उपाय प्रभु मिलन के कहै हैं।  
 जीव को मिस मान दिसार, जो जहाँ का अधिकारी है, वामें वाको मन  
 स्वतः लागत है। ताते जैसे मनुष्य गैल बलिबे वारे को दस गाम के मार्ग बतावे  
 परन्तु जाको जा गाम जायों होइ सोइ गाम जात है। तैसे ही कोई भगवदीय  
 द्वारा, कोई गुरु द्वारा कोई ईश्वर द्वारा, पैसो अधिकारी तैसो समपाये ।  
 उही मार्ग में भाव वाको दृढ़ होत है। सो गोविन्द दूबे की अइ रनखोड़ जी  
 में दृढ़ भाव भयो । ”

संक्षेप में भाव प्रकाश का यदि गहराई से अध्ययन किया  
 जाय तो फटा चलता है कि उसमें अनेक शैलियों के समावेश के साथ गुजराती,

-----  
 १- भावप्रकाश - गोविन्द दूबे की चर्चा

२-     ..                     ..

पंजाबी, राजस्थानी, मालवी, ब्रज के ठेठ शब्दों का प्रयोग तो है ही, संस्कृत निष्ठ समास शैली एवं पारिभाषिक शब्दावली सहित उच्च स्तरीय ब्रजभाषा गद्य के दर्शन होते हैं।

क्रिया पदों में गो० हरिराय जी ने अवश्य ब्रज के रूपों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ-

“रघुनाथदास को बहुत जादर किये । यहाँ ब्रज का भूतकालिक रूप ‘कियो’ चाहिए । ‘मारग’ को अभिप्राय बताए ‘में’ बतायी होना चाहिए । इसे गो० हरिराय जी पर गुजराती प्रभाव ही कहा जा सकता है।

गो० हरिराय जी की गद्य शैली के उपरान्त उनकी काव्य शैली का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वे भाषा सौष्ठव की दृष्टि से अष्टछापी कवियों से बहुत जागे हैं। उनकी काव्य भाषा अत्यन्त समृद्ध एवं सुगठित टकसाती है। उनमें तत्सम शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। तत्सम के साथ तद्भव, देशज, ठेठ ब्रज के शब्दों के साथ गुजराती पंजाबी शब्द भी मिलते हैं। उन्होंने गुजराती पंजाबी में भी पद रचना की है। संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् और कवि होने के कारण उनके भाषा काव्य में संस्कृत निष्ठता जनायास ही घुस जाई है। यहाँ उनकी ब्रज भाषा कविता पर भी संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

### क्रिया रूप

गं में जहाँ उन्होंने ‘बताए’ ‘जातए’ ‘करिए’, ‘जाइए’, ‘जादि’ प्रयोग दिये हैं वहाँ काव्य में औकारान्त प्रयोग दिये हैं। उदाहरणार्थ-

गायी, बतायी, बतायी, राखी, भाखी (२) वादि ।

अन्य पुरुष वर्तमान कालिक रूप

बावे, पावे, भरत, नावत, भेस्त, गावही, पावही, बाजही, गाजही (३) वादि में ब्रज और अवधी वर्तमान कालिक भिन्न जुड़े प्रयोग हैं।

मध्यमपुरुष

कीजे, पीजे, मीजे, दीजे, सीजे वादि ।

मध्यम पुरुष अन्य पुरुष स्त्रीलिङ्ग

फठाई, बताई, सुताई, उपजाई, बुझाई वादि ।

अन्य पुं पुल्लिङ्ग में वर्तमान कालिक रूप

बजावे, गमावे, उपरावे, धावे, बतावे, सुतावे, बितावे, पावे, सिरावे ।

सातत्य यह कि गौ० हरिराय जी के क्रिया पद शुद्ध सटीक एवं व्याकरण सम्मत हैं। गौ० हरिराय जी के समय तक वाते जाते ब्रज भाषा का रूप अत्यन्त नितार पर आगया था । उसका स्वरूप निर्धारित हो चुका था । अतः लेखकों ने १५ वीं शताब्दी के लेखकों की भाँति मनमानी नहीं की है। हरिराय जी की काव्य भाषा बड़ी सुहावरीदार, जीबस्वी और प्रभावमयी है। कहा जा चुका है कि वे संस्कृत के विद्वान् थे । अतः उनकी भाषा

मुँ संस्कृत शब्दों का प्रयोग समासान्त पदावली बादि मिले जुते हैं। संस्कृत प्रयोगों के उदाहरण द्रष्टव्य है :

चाक्क (३) मनर्वाक्षित फल (३) कुसुम ग्रथित कबरा (४)  
स्वस्ति वाचन (७) नाँदी आद (७) सप्त फर्त (७) वावृत (७) पदिक वाभूचन  
(७) प्रत्येद (१४) कुम्कुम तिलक (६) पुष्ट (४१) दुग (४१) वजन (४१)  
वजन (४१) बहोपहि (६५) अन्तर भावनिगूढ़ (२६) फै (२२) नित्य  
लीला (५१९) तीव्रत धीमुल (५१९) श्री पुराणोपम उत्सव रस (५२०) प्राची  
(५३९) नित्य विहार (५३९) नववधू स्वजन (५३९) अग्नि रूप (५३३)  
नित्य सम्बन्ध (५३३) समर्पित, प्रागट्य निगम मत (५३३) गह्वर तिमिर  
(५३४) माया तिमिर विदुषा वृद्ध, उहगन लीलापूत सागर (५३७) पुष्टि  
मक्ति (५३८) नव निर्मल मंदिर (५४७) अविद्या (५५५) बाहुपरिर्मन (५५६)  
फलजन्तु (५५७) निस्तार लावण्य वसुत (५७७) वष्टादार (५८७) अन्याय  
कसमर्पित (५८७) कसालाप कसत्संग (५८७) त्रिभुवन, मकरन्द (५६६) पुष्टि  
पैय (६०५) मुवि (६२१) गो० हय, गज (६२१) उज्ज्वल, ज्ञान रूप  
(६३३) कर्ता, हर्ता (६३३) उग्र, भूतल (६२७) ।

संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग के उपर्युक्त कतिपय  
उदाहरणों के उपरान्त गो० हरिराय जी द्वारा लीं लीं समासान्त प्रयोगों  
के भी कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

मनर्वाक्षित फल (३) कुसुम ग्रथित कबरी (४) बलय  
हृज नूपुर घुनि (४) मंगल लीला (४) पादुका उदयान पीठक (२६) कैंतर  
भावन निगूढ़ (२६) मुक्त गुंजामाल (४३) हृद कुसुम प्रफुलित वति (३६६)

कनक घट (५१३) माया तिमिर (५३७) विदुषा वृद्ध (५३७) तृष्णा ब्रह्म  
 तरंग (५५७) दान वृत्तादिक (५६५) वदनानल (५६५) धरनि धाम तनय  
 (६३७) जयति फलश्याम वपु प्राट सप्तम तनय (६३६) विरह रस रूप (६३६)  
 जयति राधिका रमण वर चरण परिचण रति (६७३) भालगत तिलक मुद्रादि  
 (६७३) मस्तकादबद्ध सित कृष्ण केश (६७३) रीति पय प्राट नीपाय सयम  
 जनिन (६७६) वन्तर भाव निगूढ (२६) वधरामृत (३१२) ।

उपर्युक्त संस्कृत पदावली जहाँ तत्सम रूप में प्रयुक्त है वहाँ  
 तद्भव शब्दों का भी उच्चारण नहीं । उदाहरणार्थ मनि (४) बैस (५) मैन (७)  
 रिंगन (२२) कगार (२२) खरार, सरारि (२२) अल्लाद (२२) परवीन  
 (२६) धूत (धूत) (३८) भवन (५६) वैनु (६०) चान (७२) पुन्दन (७६)  
 फूत (८९) महोच्छ्व (८८) पुरन (८८) निसाक (१०४) सजाव (१११) पिय  
 (१२६) गरब (१२०) जीवन (१२५) जुल (१२६) तूत (५) बैस (५) चिंतामनि  
 (१३२) मधि (१३७) पास - पाश (१३६) सुर - स्वर (१४२) लौगुन  
 (२००) क्षिन (२११) उससास (३०८) सिधि (३१२) ।

गौ० हरिराय जी ने ठूठ ब्रज भाषा शब्दों का भी  
 प्रयोग किया है :

गाज (१) नाज (१) मफि (२) लौदा (७) उतावत  
 (७) फौदमा (८) डिंग (१६) बघना (२०) सिढी (२०) गुल गुली (२१)  
 फिरकी सुनभुना (२१) जिहूटी (२२) लक्करी (२१) बिराब (३१)  
 डीकि (३२) धीसत (३८) बीसर (३८) उबरी बैत (३८) कुढ़ि जाम (३८)  
 डूक (३५) डगर (३५) बीधौ (३८) उराहन (३६) चाक (६०) बीसर -

विलंब (६४) काक (६२) डौर (६६) डौर (७५) घाम (७७) तीरुडे (७८)  
 डीहूयी (६४) तक भारी (६७) कबार (१०४) कठे (१२४) लाडे (१३५)  
 सिंगरी (१७८) घाँस (१७८) बाक (१६०) ठान (१६८) गौना (१६५)  
 हियरा (१६२) बलमा (२१५) झुरिया (२१६) चिरकुद (२१६) बबाब  
 (२१६) धूषट (२४७) धाके - वार्ता (२५५) कहावति - सँदेश (२४६)  
 नैरो (२६०) मनुहार (२६७) लहनी (२६६) झुक (३११) झुक (३११)  
 डब (३१६) ऐव (३३३) बिटिया (३६५) व्यार (४२७) जूँठन (४४७)  
 फाँटा (४५३) दुरकि (४६६) केकर (४०२) मयार (४४३) भरुवा  
 (४४३) बिठारौ (५५७) बौसी = (बौसका) ५८२) लोक - (हाथ  
 की उँगलियाँ बाँधकर सीधे हाथ की हथेली में गड़ढा करके मुँह लगाना) प्रयोग =  
 पीवै लोक लगाय । पैद (६५२) ।

गो० हरिराय जी ने जहाँ ठेठ ब्रज के शब्दों और क्रियाओं  
 का प्रयोग किया है वहाँ कुल लड़ी बोली के भी प्रयोग हैं। इन क्रिया फलों में  
 हरियाणी लड़ी बोली का रूप स्पष्ट मिल जाता है। उदाहरणार्थ-

संगीत के सुर दौर (१७) भेटा कैसे (७३) कैसे (७३)  
 कैसे (७३) मनभाया (११५) सुत उपयाय (११५) जंग सुगंध लगाया (११५)  
 तिलक लितार बनाया (११५) उठि हँस जंग लगाया (११५) कहा अब हीनडा (१६५)  
 परमानंद सुत लूटा (३४७) वस्त्रम जू के चरनन मन तिष्टा (५७४) बाँके (६५)  
 तूब नरारे बानि जाया मो मन भाया सुत उपयाय (११५) बलमा (२१५)  
 बादि ।

पैवाबी प्रयोग :

रसिक प्रीतिम सौं हा हा सीदी, हौं हारी तू बीता (६६६)

बैबन गाली दीता (६६६) , हारी दे तेल बिनु यह क्या कीता (६६६) ।

कतिपय विदेशी शब्द :

सिरताज (१) ताक ( २५ ) जासिम (६७) बील  
गिरवी (१००) बेहाल (३००) झार (३६०) मुक्का (४०२) फबिही  
(५१८) जहाज (५२४) गुलाम (६०७) सलूक ( ६५० ) मतलब (६५६) यार  
(६५६) निहाल ( ६५४ ) निराली (६६६) मिहर्बा ( मिहर्बान ७०० )  
कूटा (६६७) ।

कतिपय गुजराती शब्द :

सिणगार (६८८) तेहम बुताना (६८८) घणी -  
बहुत ( ६८८ ) तणी क का ( ६८८ ) वज्वातू - प्रकाश ( ६८६ ) हीसै-  
प्रमन्य ( ६८६ ) बारणिय - बाहर ( ६६० ) हैडे - हृदय (६६०) सारी  
वच्छी (६६९) सहू - सब (६६९) बागिच ( बाघ ६६९ ) बीजा -  
दुधरा (६६३) मुकी - रसी ( ६६३ ) सभिली ( सुनी ६६४ ) रासील -  
बीछी ( ६६४ ) पहिराण्यू ( ६६४ ) केडा ( पस्ता ( ६६४ ) जीर्ण ने - देल  
कर ( ६६५ ) गीहति (६६६) बज्जे - बीज में , दीवौ - दीफ (६६७)  
व्वाली- प्रिय ( ६६८ ) भेली - रसी ( ६६८ ) नातू - डाल देना (२९२)  
बानी - गुला ( ३५५ ) ।

ध्वन्यात्मकता :

सा, ला, ली, ली, दूरा बावे । लू, लू, लू, बीवर



बाजे । स्ट , स्ट, स्ट, स्ट, लुट्टी , चटक चटक चुटकी बाजे, कुहु, कुहु ,कुहु,  
कुहु कोकिल बोले । पी पी पी पी पपेय्या , गुड़ गुड़ गुड़ गुड़की, डो डो डो  
डो डोलक बाजे ।।

कतिपय मुहावरे :

बड़े भाग हुई ( १ ) नीकें हाथ लगाऊँ ( ३६ ) चढ़ियाँ  
चित बाक ( ६० ) राह लीन उतारौं ( ७६ ) दान हमारी मारि ( १०४ ) परी  
प्रेम की कैदा ( ११६ ) मेरे बीज परीजिन कोह ( १६६ ) लागि मूठि ( २१५ )  
लाज परि जाऊँगी ( २१८ ) बात बाके मन न बाहे ( २७७ ) बाब भली पायी  
( २०० ) बलाई बात, बात बनाह , बात पाह, बात दुराह ( २७७ ) जैसे जैसे  
रात जात ( २८३ ) बाज मेरी लई नो हो ( २६६ ) किनहु मेरे कान ( ३११ )  
बौरन के पाले जु परे ( ३२० ) तारे गिनत रही ( ३३० ) तिखी दृष्टि करी  
( ३३२ ) हुक उठत मेरे जिया ( ३४८ ) बात मुलाई ( ३६३ ) कहू न बसाह ( ३६३ )  
संग लग्यौ बावै ( ३६५ ) निरलि डारत तुन तोरे ( ४४३ ) कहत हौं गोद  
फ़ीरि ( ४७६ ) हाथ लै कुलहाडी पाव मारत ( ६६६ ) दुष्ट के बोझ मर्यौ  
( ६७० ) या दुविधा में सब ही सोयौ ( ६७० ) स्कौ न काज मर्यौ ( ६७० )  
जा बागे मन सेली ( ३४४ ) पूरे तोले स्ट जिनि साजौ ( ३७३ ) सुनै कौन दहं  
मार्यौ ( ६४६ ) ।

कतिपय लोकोक्तिर्या :

मुरन सधि कर पाह के चकोर न धीर धराय ( १०४ )॥  
ज्यौं गुरु फाफ़ी माली ( ३६१ ) । कर पाली ( ३६१ ) । नाइक फाटौ  
पान्यौ ( ५६४ ) बुधित रटत बन में दिन निर्मम, केहरि तुन नही साबत ( ५७६ ) ।।

### कतिपय चिन्त्य प्रयोग :

उजागर का उजियागर (२) संयुत-संयुत (५) सरार  
( सरारि-२२ ) बलहाद - बलहाद (२३) लगीज (५४) दैय्या ( दान ८३)  
रैया - रहने वाला (८३) इस की सिंधु (८५) मोहं - वप्रतीत्यात्व (भीगी)  
क वर्ण में ) उदक - वीदक (१२८) वजोभी - वाश्चर्यप्रद (१६८) विचरा  
- दूसरा (१६२) बैच - बाँच (३३३) कोलौ - कबलौ - (३४४) चीत चित्र  
(३८४) बोलूंगी ( बुलाऊंगी - ४३४ ) पाज - प्यास (५२४) सुक (शुक-  
६५०) ।

उपर्युक्त प्रयोग सदीन कह जा सकते हैं किन्तु हन्दी में मात्रा दोष वचाने के लिए गो० हरिराय जी ने वैसा किया है। वैसे उनकी भाषा में पहले के वष्टवापी कवियों जैसी तोड़ फोड़ या मनमानी परोड़ नहीं है। वे शुद्ध प्राञ्जल टकसाली भाषा लिखने के अभ्यासी हैं। मूलतः वे संस्कृत के कवि एवं लेखक हैं। ब्रजभाषा का उनका लेखन केवल इसी कारण है कि वह ब्रज प्रदेश की भाषा है जो उनके वाराध्य की सीला भूमि है। और परम भक्तताव वपठित गोपियों की भाषा है जो प्रेम के शीघ्र में मूर्धन्य है।

गो० हरिराय जी में ब्रज कीर्ति की स्वतन्त्रता भी है और यति गति मग दोष भी कहीं कहीं है। संभवतः संगीत में व्यक्ता पदों के गाते समय आरोह अवरोह में ये दोष तप जाते हैं। फिर भी गो० हरिराय जी की भाषा का रूप विकसिततम शुद्ध, पुष्ट प्राञ्जल संस्कृत शब्दों से युक्त है।

उसमें भरपूर माधुर्य एवं संगीतात्मकता है। यद्यपि वष्टहापी कवियों की अपेक्षा उनका ब्रजभाषा काव्य परिमाण में बल्प है। किन्तु जितना भी है वह भाव भाषा दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है। उनमें अधिव्यक्ति की कसीम सामर्थ्य है। माधुर्य के तो मानो वे माण्डार हैं। शब्दों का उनका चयन एक मणिमाला की भाँति है जिसका ग्रथन ऐसा है कि उसमें कोई विकल्प उपस्थित नहीं करता।

ब्रज भाषा गद्य पद्य के क्षेत्र में गी० हरिराय जी के पूर्व न पश्चात् कोई ऐसा आचार्य हुआ जो इतनी दामता के साथ ऐसी सुगठित प्रज्ञित भाषा लिख सका। उनके युग में ब्रजभाषा का सौंदर्य अपने पूर्ण निसार पर था। उनके परवर्ती साहित्यकारों ने उनका भाव और भाषा दोनों ही क्षेत्रों में भरपूर अनुसरण किया है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा और ब्रज साहित्य उनका चिर ऋणी रहेगा।

ଅଷ୍ଟମ ଛାନ୍ଦ

### गी० हरिराय जी के काव्य में ब्रज-संस्कृति

ब्रज संस्कृति ही मुख्यतः भारतीय संस्कृति है। लोक-जीवन की दीर्घ बन्धुत्व व्यापक परिमार्जित व्यवहार परम्पराओं का नाम ही संस्कृति है। इसके अन्तर्गत हमारी मान्यताएँ वाचार-विचार, संस्कार, धर्म, तान-पान, उत्सव, भेष, वस्त्राभूषण सभी का समावेश है।

गी० हरिराय जी भगवान् के रसिक रूप के उपासक हैं। वे श्रीकृष्ण का हरिण निरूपण नहीं करते। वतः उन्होंने अपने सीतानाथक भगवान् के जन्म प्रसंग के बाद बन सीता और बन सीता के उपरान्त हास-विलास के समय मनोरम प्रसंगों को ही लिया है। उन्होंने क्रमबद्ध घटनाओं का संगठन न करके समय प्रसंगों का संगठन ही किया है। अपने हासिक प्रसंगों को ही अपना वर्ण विषय बनाया है। वतः उनमें सभी संस्कारों को लीजता क्या उनका व्योमहार वर्णन ढूँढना उचित न होगा। वतः लोक वेद की दृष्टि से जो संस्कार उनमें मिलते हैं। उनकी वहाँ यहाँ की जाती है।

वातकर्म :

श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर जन्म वस्त्रादि का दान करना ब्रज संस्कृति है :

“ नंद सबन दीने बहु धनु-वसन नाब हो ।

परिवार की व अन्य स्त्रियाँ बधाई देने जाती हैं :

“ मा बानंद धिंगार करावो । ”

“ जहाँ तहाँ बली धाय कटक नंद पौरि मे । ”

ये गावत मंगल गीत, ऊँचे स्वर धीरे मे ॥

पुन जन्म के मंगल अवसर पर सौभाग्यवती स्त्रियों का बाबूलाद वीर उनके मंगल गीत प्रायः सभी जगह प्रचलित हैं। ब्रज प्रदेश में तो इस अवसर पर स्त्रियाँ एक सप्ताह तक मंगल गान करती हैं :

“ कोऊ नहि , कोऊ गाय , कोऊ कर तारि दे ।

कोऊ सिर से दधि माँठि फीर कर डीरि दे ॥

याचकों की गुणियाँ ( संगीतज्ञाँ, ज्योतिषियाँ ) आदि को बुलाकर सम्मान किया जाता है :

याचक गुणी कनेक, सुरे नंद धाम मे ।

मम माँझि फल देत, हीरा मनि दान मे ॥

तेल , हलदी कुम्कुमादि मंगल द्रव्यों को झिड़का जाता है :

“ मंगल तेल हरदि बुरन जस सीमित हरण बधाई ॥

इस अवसर पर डाढ़ी- डाढ़िन बधाई देने जाते हैं वीर कामानी बधाई पाते हैं :

“ प्रजन सुनत डाढ़ी बलयौ सुत दारा से साथ ।

डाढ़ी नरमत बिषद कस मानी नगर नरिस ॥

घर में मंगलिक चीजें पूरा जाता है। वफात वधि कृष्ण गीरु से मंगलिक स्नान किया जाता है। बदनवार बांधी जाती है। ब्राह्मणों को बुलाकर वेद पाठ ( स्वस्तिवाचन ) कराया जाता है।

### नामकरण :

ज्योतिषियों को बुलाकर नामकरण कराया जाता है। इस अवसर पर भी ग्रह पूजन, गोदान, सौभाग्यवती स्त्रियों को दान, सम्मान किया जाता है।

गो० सरिराय जी में प्रकृष्टात्मकता का लभाव है। वतः मधुर प्रसंगों की वक्तारण ही उनका लक्ष्य है। उनके ब्रज भाषा पदों में सभी संस्कार या अन्य कौंसे क्रम बढ़ता बूढ़ना उचित नहीं ।

### लोक-रोति :

ब्रज में बालक के जन्म पर तिलों के सात डेर किये जाते हैं और उनके हीरा मोती पन्ना वादि मिलाकर उनकी रेशमी वस्त्र में बाँधकर ब्राह्मणों को शुभदान दिया जाता है।

सात परवत तिलन के करि रत्न बांध मिलाय ।

करि कनक तेंबरनि बाधुत दिये विप्र बुलाय ॥

### ध्वजारोहण :

“ ध्वजा फलाका विविध विधिनि कति मवन मवन धराय । ”

### वैद रीति :

स्वस्ति वाचन, नार्दो, कण्ठ्य नाद वादि मांगलिक प्रकरणाँ पर कराये जाते हैं। श्रीफल एवं पुजा द्रव्य लेकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ बालक जन्म पर जाती हैं :

“ बाई मंगल साज सबै ले, महा महोच्छव जानि ।

बाई धर वृणभान गोफै, श्रीफल सोहन पानि ॥

### ब्रज के पर्व :

पुष्टि मार्ग का वर्ण जन्माष्टमी ( भाद्र कृष्ण वृष्टमी ) से प्रारंभ होता है। अतः यह संप्रदाय का प्रथम उत्सव कर्मा पर्व है। पन्द्रह दिन बाद राधाष्टमी ( भाद्र शुक्ल वृष्टमी ) जाती है। दोनों पर्वों को संप्रदाय में कड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। पन्द्रह दिन पूर्व से बधाइयाँ गाई जाती हैं। वस्तुतः पुष्टिमार्ग अत्यन्त उत्सवप्रिय संप्रदाय है। इस संप्रदाय का सिद्धान्त है :

“ नित्योत्सवी नित्य सुतो ।

नित्य श्रीनित्य मंगलः ॥ ( गी० सहस्र )



यहाँ कतिपय प्रसृत पर्वों की कर्वा प्रस्तुत है। यथा-

### दशहरा :

- १- बाब दशहरा मंगल गार्ह ।
- २- विजयादशमी परम सुहाई गोधन वगु बादियाँ पठाई ॥
- ३- बाब दशहरा सुभदिन नीकी बाहन पूजा हो गोपाल ॥

दशहरे पर बाहन पूजा, शस्त्र पूजा, बहन बेटी बुजा के द्वारा तिलकादि की प्रथा लोक रीति के अंतर्गत है। नूतन पशुधर भी कान पर धराये जाते हैं।

“ बहिन सुभद्रा काकी रामदे, गावत मंगल लैकर थाल ॥

तिलक करत जी लैकर लौसत, वारली बारि दैत जैवाल ॥

### दीपावली :

- १- दीप दान दे हटरी बैठे बड़ी परम है बाब दिवारी ॥
- २- हटरी बैठे गिरधर लाल ॥

दीपावली पर पा सा चौफड़ सेलने की भी परंपरा है।  
उस दिन बीतना वर्ग पर की विषय का तुम सजाण है।

“ पासा सार नौ पर सेलन हार ।  
बीत दीउन की लठि लठारि ॥ ”

**कान जगाई :**  
-----

दीपावली पर के अन्तर्गत ही कान जगाई होती है। इस अवसर पर लड़कों में गायों का शृंगार किया जाता है। उनके कान में कृष्ण नाम फुकारा जाता है। बड़ों को मुक्त करके पन पाना दूध पिलाया जाता है। गायों की पूजा का यह उत्सव है।

१- गाय तिलावन बसे तिलकारी ।

कान सागि कई कुरर कुरर हाबा भसि वातुर ह्वै धौरी ।

गोधन पूजि ग्वास पहिराये, काहू की पना काहू की पिखौरी ॥

२- कान जगावन नंद कुमार ।

बपे तिलहन कान जाए, मान तिल जाय कान फुकारि ॥

धौरी धूमरि हेर सुनत ही, पौरी लटा बड़ी सुकुमारी ॥

### प्रबोधिनी :

कार्तिक शुक्ल अष्टमी जिसे देवोत्थापिनी भी कहते हैं, संप्रदाय का पुण्य पर्व है। चौक पुर कर वस्तु मण्डप बनाकर चारों ओर दीफों का मालिका प्रज्वलित कर भगवान् को सिंहासन पर बैठाया जाता है। तुलसी का पूजन किया जाता है। तुलसी विवाह का भी यह दिन माना जाता है। गौ० हरिराय जी ने प्रबोधिनी पर्व का परिपरागत महत्व का वर्णन किया है :

१- “ बाज प्रबोधिनी सुस दिन नीकै कमल पत्तु अष्टमी आई ॥  
बहु धन की हृज पुन रही और दीफन भात सुहारै ॥

सिंहासन गादी त किया धरि करि उत्पास गोकुल राई ॥

उस दिन प्रिय मिलन होता है -

“ बाज प्रबोधिनी परम मोदकर, बल प्यारी पिय लै जाऊँ ॥ ”

प्रबोधिनी के उपरान्त मकर संक्रान्ति, मीनि संक्रान्ति के उपरान्त सबसे बड़ा पर्व होलिकोत्सव है। पुष्टिमार्ग में होलिकोत्सव कई समारोह के बफ्ती निजी पद्धति से मनाया जाता है। एक मास पूर्व माघ शुक्ल पूर्णिमा को दाढारोपण किया जाता है। उसी स्थान पर फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को होलिका दहन होता है। उस उत्सव के पूर्व माघ शुक्ल पंचमी को वसंत पंचमी जिसे श्रीपंचमी भी कहते हैं। वसंत पूजन ( वेद पाठ ) होता है और वसंतोत्सव प्रारंभ हो जाता

है। प्रिया प्रियतमों का मिलन वनों की कुसुमित शोभा, संपूर्ण प्रकृति में एक विशिष्ट मादकता यही वसंतोत्सव का तात्त्विक रूप है। गी० हरिराय जी लिखते हैं :

“ जान पैवमी मिलाव करन, वृषभातु सुता बन बाई ॥  
रासिक प्रीतम पिय बलि रस माँ से, डोलत कुँज माई ॥

### डाँडा रोपण :

“ जमुमति कह्यै जु वाज परब दिन, फून्सी सुत की राखी ।  
डाँडा रोपन नंद जाँझ, संग लिये, ब्रज बाखी ॥

इसके उपरान्त होलिकोत्सव प्रारंभ हो जाता है। संगीत नृत्य के घनघोर वानन्दोत्साह के बीच रंग पाशी होती है। बहों की वादर, बराबर वालों से मिलन झोटों को स्नेह दिया जाता है। होलिकोत्सव के पद ब्रह्मदायियों से लेकर सभी पुष्टिमार्गीय कवियों ने बड़े उत्साह से लिखे हैं। धमार की गायकी विशेषकर होलिकोत्सव पर ही गायी जाती है। इस अवसर पर फगुवा ( विशेष पेट जिसके साथ होती खेती जाती है ) दिया जाता है। गी० हरिराय जी ने होलिकोत्सव के पद बड़े ही मधुर और सज्जित लिखे हैं :

१- होरी खैरी नंदलास ।

नंदमहल की पौरी डाँडों संग लिए ब्रजवाला ॥

२- कौनी कीगुलियाँ बति बनी, सो तो स्याम रंग पहिराऊँ ।  
बति सुगंध पुहुफ बस्यो, तामर फुल्लत बुपराऊँ ॥

३- लाल रस पाति हो लेल डोलत फाग ।

यस लेल मैं मर्यादा नहीं रहती । मर्यादा भी ही उस  
उत्सव की विशेषता है।

“ इसी लेल होरी की, जहाँ रहत नहीं कह कानि ॥ ”

यस अवसर पर संगीत का रंग खूब ही जमता है :

व हो हो हो होरी बोलै ।

गोकुल गली लला संग लीन्हैं, उति मदमाती होलै ॥

ढप बीना, सुर बीन, कसुरिया, ताल मृदंग बजावै ॥

ऊँचे सुर लै गीत उघारै, सदन सुनावत गावै ॥

उधर गौपियों में भी मस्ती का गई है। वे भी मर्यादा  
की तिलाजलि देकर धरों पे निकल पड़ी है :

“ हरि संग बली हो लेलिये होरी ।

उर बड़ी लाव त्यागि जियगावी, हो हो हो हो होरी  
कहोरी ॥

मर्यादा का त्याग इसलिए भी आवश्यक है :

“ बीतत दिन दिन जीवन की सुल, बति दुरलभ समायी होरो ॥

होलिओत्सव के वर्णन में प्रायः सभी कवियों ने मस्ती  
का प्रदर्शन किया है। होली का लेख संप्रदाय की दृष्टि में लौकिक लेख नहीं है।

यह देहाव्यास ब्रह्मने वासी सीता है। गौ० हरिराय जी का फका विचार है कि :

“ यह सीता सुमिरत ” रसिकन ” के सुरत गहँ तन माफता ।  
वान ज्ञान तैं मन की वृत्ति, मर्छ दास न की बाफता ॥

होलिहोत्सव के बाद बैश्व, शुक्ला तिथीया की दोलीत्सव होता है। उसे संप्रदाय में होलीत्सव कहते हैं।

१- होल भूक्त हैं पुगल किसोर ॥

२- होल भूक्त हैं हंसि मुखकात परस्पर सुनि गुलाब लई ॥

३- श्री गोवर्धन सुभग सितर पर, रच्यो जु होल बिसाल ॥

संप्रदाय के विशिष्ट फर्ष :

पुष्टिमार्ग के कुछ अपनी विशिष्ट फर्ष हैं जो संप्रदाय के भक्त गणों के लिए ही महत्व रखते हैं। उदाहरणार्थ -

१- बैशाख कृष्णा स्कादशी ( बह्मिनी ) यह महाप्रभु जी का जन्म दिन है।

२- भावण शुक्ला स्कादशी को पवित्र स्कादशी भी कहते हैं। इस दिन बाबायं वत्सन की गीदुत में ठहुरानी घाट पर श्रीनाथ जी से ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा मिली थीर देवी बीवी के उद्धार की आज्ञा मिली ।

- ३- कार्तिक कृष्णा ५ श्री गी० हरिराय जी का उत्सव
- ४- पौष कृष्णा नवमी श्री गी० विट्ठलाय जी का उत्सव
- ५- फाल्गुन शुक्ला एकादशी - डोल एकादशी
- ६- ग्रीष्मोत्सव- फूलमण्डली- नौका मनोरस गंगा दशहरा
- ७- चैदन बागा - मृगशिरा की तपन में श्री जी की चैदन धराया जाता है।
- ८- वसाय तृतीया - वैशाख शुक्ला तृतीया ( पांमहीउत्सव )
- ९- रथयात्रा- आषाढ शुक्ला द्वितीया की रथ यात्रा । श्री जी रथ में फराते हैं।
- १०- कुर्बुमा चाष्टी - श्री लक्ष्मण भट्ट का उत्सव
- ११- आवणी तीज जिसे ठकुरानी तीज भी कहा जाता है। ब्रज में बड़े धूमधाम से मनायी जाती है।
- १२- सिंहीला उत्सव आवण भाद्र पद मास में । इसके अतिरिक्त संप्रदाय में केवल बार जयन्तियाँ ही मनाई जाती हैं।
- १३- कन्याष्टमी - साक्षात् सीता पुरुषोत्तम का अवतार दिवस ।

२- वामन जयन्ती - माद्र शुक्ला द्वादशी सर्व समर्पण  
का प्रेरणा दिवस ।

३- राम नवमी- वैश शुक्ला नवमी

४- नृसिंह जयन्ती - वैशाख शुक्ला चतुर्दशी की । यह  
महोत्सव जनन्यता की प्रेरणा महाभागवत प्रस्ताव की मयित- भावना के  
बादश पर ।

उपर्युक्त उत्सव संक्राण्ट के अपने विशिष्ट उत्सव हैं, जिनकी  
विशेष रूप से चर्चा गी० हरिराय जी ने की है। श्री० हरिराय जी का मत  
है - वैष्णव की उत्सव बड़े उत्साह से मनाता चाहिए ।

### वैशभूषण :

ब्रज संस्कृति में वैशभूषण का बड़ा महत्व रहा है। भगवान्  
श्रीकृष्ण के शृंगार की चर्चा तो अनेक प्रकार से नित्योत्सव और वर्णात्सव तथा  
कस्तु कुसारी की ही गई है। जन-साधारण की वैश भूषण भी पर्याप्त रूप से  
चर्चित हुई है।

भगवान् श्रीकृष्ण की शृंगार चर्चा से पूर्व ब्रज के गोप-  
गोपिया की वैशभूषण के जो संकेत मिलते हैं उनकी चर्चा करना यहाँ आवश्यक  
प्रतीत होता है :

‘ नूतन सब सिंगार किये लंग लंग में ।।





पहोची , ईठ में कंठी , बध्ना , हाथ में कंकण , कानों में कूण्डल , नासिका में बंधर , नासों में कंज , गीरोज , कस्तूरी , कुंकुम मिश्रित तिलक , मुखता ग्रथित केश , कभी जूही पुष्प से ग्रथित केश हाथ में मुरली , पीताम्बर ।

(ब) बाल शृंगार :

मुखकेश , चरण पुपूर , कटि चिह्नी , ईठ कटुला , उर पर हार , कर में पहोची , बदन पर बध्ना ( व्याघ्र नल ) ललाट पर तिलक , पीठ पर बिंदुका , मुजा के मध्य बाजूबंद ।।

मस्तक पर मुकुट ( जडाऊ ) मयूर फेस ( पास में ) , कटि में करधनी , मुल पर बल्ले , हाथ में लाल लुट्टी , चरण में नूपुर , पीताम्बर , पोत ही उपरणा बदन पर गुजा , एवं मुखता की मालाएं । कभी मस्तक पर पाग , धोती , उपरणा , पीती के बाधुचण , शरीर पर वरगजा लेप , हाथ में कमल , कभी मस्तक पर चन्द्रिका , कमर पर फेंटा , ईठ में पदिक , गुंथन ( पाजामा ) कभी कभी मस्तक पर कलक , टिपारा , पल्लवा ( मयूर फेस ) और मल्ल काह ( जिसका बाधुनिक रूप नेकर है ) कटि पर फेंटा ।

वर्णास्त्रव पर यही शृंगार कृत वतुषारी रंग बिरंग और नूतन हो जाता है। ग्रीष्म में भूमीना , शीत में ऊष्मादायक ।

वैशभूजा की दृष्टि से ब्रज प्रदेश सदैव से बड़ा सांस्कृतिक रहा है। स्त्रियों का लीला , वीगिया , फरिया , दुष्टीटा , साड़ी का वेश बड़ा सुन्दर और मर्यादापूर्ण रहा है। प्रायः सभी ब्रज के साहित्यिकों ने इन वैशभूजाओं की बर्णों की हैं।

१- पृ० १० पृ० १०

२- ,, २२, २३, २५ । ३- पृ० १० पृ० ४३, ४४ । ४- पृ० १० पृ० ४५

वाष्पणणी का शिवाय पुरुषों और स्त्रियों दोनों में था। स्त्रियाँ मस्तक पर मुक्तावली, टीका, कानों में कुण्डल क्यवा तक कुण्ड मुक्ता, नासिका में नय क्यवा केशर, बालों में मुक्ताहार, कंठी, हुतरी, स्वर्णहार, पदिक, मुजावी में बाजूबंद, हाथ में झुड़ियाँ, बलय ( कड़े ) पाटली कुंतियाँ में मुद्रिकाएँ, कटि में कश्मी, किण्णि पेरों में नूपुर वादि फनती थी। पुरुष वर्ग भी कानों में कुण्डल, वक्ष पर हार और कुंतियाँ में कुंतियाँ क्यवा मुद्रिकाएँ धारण करता था। गी० हरिराय जी ने स्त्री पुरुषों के लोके वाष्पणणी की वर्ण की है। उन्होंने कुछ ऐसे वस्त्रों के नाम दिये हैं जो उनके समय में प्रचलित रहे होंगे। जैसे कतराँटा, कतलसा, वरणबा, कतलसा लहंग, का वस्त्र होता था। दरि माई नामक का वस्त्र लंगिया के लिए होता था। तथैय तो यह है कि वह मध्ययुग वैभव विलास के शिखर पर था और लोके प्रकार के वस्त्र, वाष्पणण शृंगार के उपादान, ललित समाज में प्रचलित थे। गी० हरिराय जी ने अपने युग का कोई भी सामाजिक ढंग बखूता नहीं छोड़ा है। भवत होते हुए भी उन्होंने समाज का बाह्याभ्यन्तर दोनों दृष्टियाँ से मली मीति देता था। वे मीति की समाज सापेक्षा ली दृष्टि से मानकर बले हैं कि " कृष्णात्तर्हि किमपि तत्त्वमर्हन् वाने । "

### ज्ञान पान :

वैकुण्ठा, वाष्पणण की दृष्टि से जिस गहन समृद्धि और विविधता का वर्णन गी० हरिराय जी ने किया है उसी महाराष्ट्र से उन्होंने ब्रह्म के ज्ञान पान भोज्य पदार्थों व्यंजनादि की पीषर्ष की है। नित्य भोजन

१- ६० प० पृ० ३६१

२- .. २०, ४०५

३- .. ३६५

४- .. ३६५

वाक, वर्णाश्रम पर फलान वादि की सामग्रियाँ उन्होंने विधिवत् वर्णन की है।

### नित्य भोजन :

पूरी मेवा, मिर्ची, मिठाई, फल<sup>१</sup> । लुवा तो साधारण बात रहती थी । फर्ी पर व्यंजनों की बेहमार<sup>२</sup> संख्या ही जाती थी । बाज जिसे मठरी कहा जाता है और जिसका प्रयोग प्रातराल में होता है वह उस समय तकरी<sup>३</sup> नाम से जानी जाती थी । दधि बीदन ( दही भात ) , सुरटत फ्य ( लौटा दूध ) नित्य का पुष्टि वाक्य भोजन था । शुक्र में भी दधि, बीदन, नवनीत ( फल ) रोटी, मिठाई वादि रहती थी ।

वर्णाश्रम पर व्यंजनों की भरमार तो रहती ही थी । श्री० हरिरायजी ने कतिपय प्रसुत व्यंजनों के नाम भी दिये हैं : संभाव हत्वा, पूजा , कृषी ( पुरी ) गुर के, गुग्गुला , फेनी , ठाढे पूग, कढी , पिर्ब का शाक , घिसल ( भीलण्ड<sup>४</sup> ) , कड़ी भात , तुरई , पाफ़ , तिलवारिठि सुरता, ककता , बरी , वरवी ( पुक्या ) घूरत, सेव, कोला, कौडा , कौवा लुवी ( श्याक विशेष ) , गिलका , लकन्द, पेठा मिर्ची का पाक, रायता ( लकीस प्रकार के ) , बिल्लास, तली हुई कवरियाँ, रोटी, पुरी , लीटी , ( मोठी रोटी ) मिस्सी रोटी , तुपई, चर्मैठी ( फी हुई ) लही बड़े ,

१- ४० ५० ६० ९०

२- .. ४८

३- .. ५३, ५४

४- .. ९९९

५- दही बाधिर केसर डासकर घूरे के साथ मस करके बनाया जाता है। गुजरात मबाराष्ट्र में लका बाज भी रिवाज है।

बाम का खुवा , मेवा , लखुवा , पठ होना हुवा ।

उपर्युक्त पदार्थों की चर्चा गी० हरिराय जी बहुत संक्षेप कर गए हैं। ब्रज के पुष्टि मार्गीय मंदिरों में बाम भी अनेक प्रकार के व्यंजन भगवान् की भोग लगाए जाते हैं। ब्रज प्रसिद्ध लान पान की पुष्टि से बना व्यंजन बहुत होते हुए भी सात्विक और पवित्र रहा है। मध्य युग मुगल शासन का था । शाही दरबार के व्यंजनों की चर्चा ब्रज कवियों ने नहीं की है। जाधे कबूतरी को देखने से विदित होता है कि जन्मकूट के अनेक पदार्थों का रियाज शाही रसोई घरों में भी हो गया था । जो भी हो, लान पान की पुष्टि से मध्ययुग विशेष कर पुष्टि संप्रदाय अत्यन्त ही सुरक्षित पूर्ण था ।

पुष्पों की चर्चा :

गी० हरिराय जी की स्वभाववद् पुष्प बहुत प्रिय रहे लगे । उन्होंने अनेक पुष्पों के नाम गिनाए हैं। इनमें अनेक भारतीय पुष्प हैं और बहुत से भारतीय होते हुए भी विदेशी ( मुगलिया ) नाम धारण किये हुए हैं।

माधविका ( माधवी लता ) गुलाब, हृद, चीन गुलाब, तुलसी, गुल सन्धू, गोंदा, गुलाबास, गुलमोटी, गुल क्लायबी, गुल मैसबी, गुल चाँदबी, गुलबहार, केकड़ा , कचनार, राम बैल, बीपा, बैसा, मोतिया, कुडी , गुल तेरा, गुलदाउद , ज्येसी, मोतिलिरी, चरों, क्नेर(कम्केर) कसरीली, बहुत, मात्ती ।

गौ० हरिराय जी प्रकृति के सौंदर्य में रमि ली हैं किन्तु अपनी वाराह्य के माध्यम से । उनका पल्ला वे एक चीज की भी नहीं डीढ़ते। वृषा, वल्लरी, मेघ- सता, हुम, हँस, निर्हुम, त्रिहागद्वार, कदम्बवाटिका, बन- उपवन, सभी की वे माधुर्य बर्ण करते हैं, पर श्रीकृष्ण के संदर्भ में । अतः उनका प्रकृति निरीक्षण उदीपन के अन्तर्गत ही समाविष्ट हो सकेगा । पपीहि ही की पी पी, बाहुल्य की टर टर की मनकार वादि प्रकृति की समस्त शोभा श्रीकृष्ण के हास- विहास के तिर ही है। सारी वृष्टि के सुंदर व्यापार सब श्रीकृष्ण के तिर हैं। उनका कोई अन्य प्रयोजन नहीं । बाघों का धुति, मधुर नाद, यमुना का प्रवाह, कोकिल, मोर का मधुर स्वर, विहंग- भ्रम, पवन का संवार, पुष्पों का वप्रतिम सौंदर्य, उपवन की शोभा, मणि, मंदिरों का दिव्य सौंदर्य सब श्रीकृष्ण के तिर हैं। अतः उनका बाह्य सौंदर्य बोध का लक्ष्य भी श्रीकृष्ण प्रति है अन्य कुछ नहीं । ब्रज भूमि की मादकता ही श्रुति ऐसी है कि वह त्रैलोक्य- सत्ताम भूता कही जाते हैं। उसकी संस्कृति क्वनि मण्डल में घिर मौल रही है। अतः प्रत्येक चीज में ब्रजभूमि की सम्पदाता न कोई प्रान्त कर सका है न अन्य देश ।

ब्रज प्रदेश की अपनी कतिपय प्रथाएँ :

१-(घ) पदां प्रथा

वैदर तर कूँडत हवि भातकत ,

परत कपी लन भागई ॥ ( पद ५ )

(वा) मोहन की मुल बेलन की बावत छुप्ट पट दे बाडे ॥ (१३५)

२- वही गुरुजन ।

अपि गुरुजन साव ।

उर बड़ी साव ॥

३- मांगलिक अवसरों पर, मागध, बदीज गायकों, सूत, पौराणिकों को  
पैट देने की प्रथा थी ।

नजर उतारने के लिए राई, लीन ( नमक ) उतारने की  
प्रथा थी<sup>२</sup> । तिनका छोड़ना ( पद ४५६ ) । बसि फड़कने, धर फड़कने,  
बाँह फड़कने पर लुन- वफ़लुन का विचार करना ।

ब्रज संस्कृति में बहुनायकत्व साधारण ही बात रही है<sup>४</sup>

ख) तुम बहुनायक बहुत चिरोमनि ।

मीठी मीठी बतियाँ मा न पत्याइ ॥

का) तु तौ वसुं ही चुहाग माग पुरी काहुन गवति ,

वै तौ रसिक बहुनायक वर ॥

४- अक्माता के द्वारा गणना करने की प्रथा प्रचलित थी :

मणिमाता से गने गैयक की, ली इवि जैतर लाई ॥ ५

१- ६०५० सं० १३

२- .. ७६, २२८

३- .. २२९

४- .. २३४, २५३

५- .. २३८

५- प्रश्न लहून, प्रश्नवादि सगुनिर ब्रासणों से लोग पूछते थे और विनिमय में उन्हें भोजनादि से रुपा किया जाता था ।

“ बमना । तू कहि रे मरुत, कब मेरी भिय घर आवे ।

।.

..

तोहि देखुगी हल्का भोजन, जो तेरे जिय पावे ॥ २

६- चौक पुराना, सफ़ी, फेंक बनाना, पांगलिय जवराँ पर होता था ।

७- श्रीमद्भागवत पर क्लीम प्रह्ला :

ब्रज वासी, श्रीमद्भागवत पर क्लीम वात्स्या रखते हैं। केवल पुष्टिमार्ग में ही नहीं यावन्मात्र वास्तिक हिन्दू श्रीमद्भागवत पर क्लीम प्रह्ला रखते हैं। गी० हरिराय जी कहते हैं :

पीयी जी भागीत सुधारस ।

सावधान ब्रजनन फुट भरि भरि, जो गीपाल विमल जस ॥ ३

जी गी० हरिराय जी के ब्रज भाषा काव्य पर ब्रज संस्कृति की पूरी पूरी झाप है। उन्होंने ब्रज की कोई परिपाटी, पद्धति, रीति रिवाज, नहीं छोड़ी है। सभी का यथास्थान, यथावसर समावेश किया है। यहाँ तक कि कंकु कीड़ा , जल कीड़ा क्लीम साधारण बातों की भी वे चर्चा कर गए हैं।

१- ह० प० स० ३५४

२- .. ३६५, ३८०

३- .. ३४४

४- .. ३७



ਬ- 'ਗੈਦ ਲੱਖ ਮਾਰੀ ਸ਼ਾਇਲਿਆ ਨਟ ਨਾਗਰ ਚਿਤ ਚੋਰ ।

७८- इत्याय जपना विष स्मृत नाप ।

उत्सवों में अन्य नाना प्रकार की झोड़ाएँ, खान पान,  
खेल (गोशरी) बली रहते थे ।

**धार्मिक परंपराएँ :**

धार्मिक, महात्म्य, यमुना स्नान, व्रत पूजा, पवित्रधारण,  
दशहरा पूजन, विप्र पूजा, गोदान आदि सभी धार्मिक परंपराओं का भी गौ०  
हरिराम जी के काव्य में उल्लेख मिलता है।

### ब्रज के स्थानों का उल्लेख-

गौ० हरिराम जी ने अपनी जन्मभूमि गोकुल की महिमा का स्तव गान किया है :

ਜੀ ਕੀਰਤੀ ਸੀ ਗੋਕੁਲ ਰਸ ਧਾਰਿ ।

साकई चित बनत नहीं मटई लोप दितावै लारी ॥ १

गोकुल के उपरान्त गौवर्धन श्री गिरिराज की तलहटी को भी उन्होंने बर्षों का है।  
गोवर्धन तो साक्षात् हरिवास कर्म ही हैं। उनकी तरफ़ टी में निवास देकर की  
रोटी और टैली का ताक यही समस्त दुःखों के घटने का उपाय है। गोकुल, गोवर्धन,  
मथुरा यमुना के वतिरिक्त उन्होंने बुन्दवावन ( गिरिराज के निकट) लक्ष्मीवन(१५७)  
कोशिकावन(१६८) परासौती बदलोवन(१६०) गङ्गावरण (१६२) सतप थूठ(१६३)  
प्रद्वन (१६४) सुर्य मंदिर (१६४) बादि स्थानों की बर्षों का है। रुचि की गोवर्धन  
से विशेष मोह था । उन्होंने गोवर्धन के चारों ओर की अनेक स्थानों पर  
बर्षों की है।

१- ६० ५० ३० ६४६

2- 403, 404

3- 11 402

4- 22 246 (246)

इस प्रकार गौ० हरिराय जी ने अपनी ब्रज भाषा साहित्य में ब्रज भूमि, ब्रज संस्कृति , ब्रज के उपास्य, भगवान् श्रीकृष्ण का सर्वांगीण वर्णन किया है।

ब्रज संस्कृति उनकी कणी है और वे ब्रज संस्कृति के उन्वायकों में उनका स्थान मुख्य होगा ।

वृष्टम कथाय

## उपसंहार

### गो० हरिराय जी का पुष्टि संप्रदाय के प्रति योगदान

गो० हरिराय जी स्वयं पुष्टिमार्ग के दिग्गज तज्ज्ञ हैं। वे बाबायं बल्लभ से पाँचवीं पीढ़ी में हुए थे जिनका जन्म बाबायं बल्लभ के ठीक १०० वर्षों बाद हुआ था। पूरी एक शताब्दी का साहित्य, संगीत, सेवाभाव उन्हें विरासत मिला था। उनसे पूर्व वाष्टनाथ के बाटों भक्त कवि महात्माय हात्ती की संख्या में कीर्ति ( कद ) खना कर चुके थे। साथ ही गोस्वामी विट्ठलनाथ जी जैसे धुन्धर विद्वान् एवं भक्त, गो० गिरिधर जी एवं गोकुल नाथ जी जैसे भक्तार्थी और भक्त पतन् स्तुति ग्रन्थों का प्रकाश कर चुके थे। अतः उन्हें अपने पूर्ण बाबायं एवं भक्त कवियों की भाव संपत्ति का बहुत माफ्य प्राप्त हुआ था। देश में मुगल शासन के समय के सुमिरा पर स्थित था। अतः उनका साहित्य यस्तु एवं भाव दोनों पुष्टियों से बहुत एवं गंभीर है। उन्होंने अपने पूर्णार्थी विद्वान् कर बल्लभ, विट्ठल का गहन अनुशील किया और ब्रजभाषा साहित्य के लिए वे गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र गो० विट्ठल गोकुल नाथ जी के जगती रहे। बाबायं बल्लभ के ग्रन्थों का अनुशील कर उन्होंने बाबायं के हार्द की स्पष्ट करने की पूरी पूरी चेष्टा की। इसीलिए संप्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि बाबायं बल्लभ के कृतित्व की यदि समझना हो तो गो० हरिराय जी का अनुशील करना चाहिए। गो० हरिराय जी के स्वतन्त्र कृतित्व के अति-रिक्त उनका बहुत सा कृतित्व बल्लभ ग्रंथाधारित है। अतः सेवा और भक्ति के

दीप में उनका योगदान अत्यन्त प्रामाणिक और अतीविक है। गौ० हरिराय जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि बाबायं वल्लभ एवं गौ० भिट्ठल नाथ जी के प्रति असीम श्रद्धा संवर्धित होकर उनकी कर्मा करती हुए वे एक प्रकार से संप्रदाय का प्रामाणिक इतिहास दे गए हैं। यहाँ उसका उत्प्रेत करना अप्रासंगिक न होगा अपने पूर्वजों के प्रति बाबायं स्मरण का अनुपम भाव गौ० हरि राय जी की अपनी विशेषता है। पद साहित्य में वे सर्वत्र वल्लभ चरण के कृपा प्रसाद की ही महत्त्व देते हैं। उनका वसुधैव कुटुम्बकम् मत है :

“ हरिक दास बहुभागी है , ते श्री वल्लभ गुन गार । ”

वतः बाबायं वल्लभ का उन्कनि बड़ा प्रामाणिक परिवर्तन दिया है। एक प्रकार से वे संप्रदाय के वाच्य इतिहासकार हैं। श्री वल्लभ के विषय में वे लिखते हैं :

१- उनका जन्म पुष्टिमार्ग के प्राकट्य के तिर हुआ<sup>२</sup> ।

२- वेणी का उद्धार किया ( ५२४ )

३- मगवत्तोला रहस्य की जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया ( ५२४ )

४- फिता का नाम श्री लक्ष्मण मट्ट या बैरात पास की कृष्ण पदा की स्फादती की उनका जन्म हुआ । मरता का नाम लक्ष्मण गारु या ( ५२५, ५४४ ) ।

१- पृ० १० पृ० ५३२

२- पृ० १० पृ० ५२४

- ५- उन्होंने मागवत की टीका सुबोधिनी लिखी । वे तैत्तिरीय ब्रह्मसूत्र में जन्मे थे । (५२८ )
- ६- वे भगवान् के मुस की अग्नि से के अवतार थे । और ब्रह्म संप्रवन्ध की दीक्षा पद्धति से उन्होंने कलि के जीर्ण का उद्धार किया । (५३३)
- ७- मायावाद को नष्ट करके पुष्टि भक्ति पद्धति का प्रचार किया । (५३६- ५३८ ) ।
- ८- श्री ब्रह्म शरीर से बहुत सुन्दर थे ( ५५६ )
- ९- श्री गीर्वाण धर का प्राकट्य उन्होंने के कारण हुआ । अष्टाक्षर मन्त्र का जप तथा ब्रह्मसूत्र, अक्षरमूर्ति, अक्षरालाप अक्षर संग का त्याग उनके प्रसूत स्वमार्गीय सिद्धान्त है । (५६७ )
- १०- ब्रह्मसूत्र भाष्य ( वणुभाष्य ) तत्त्वदीप निबन्ध, महाराष्टक, नवरत्न, सिद्धान्त रहस्य , सिद्धान्त सुवतावली , वास बोध , भक्तिवर्द्धिनी , सैन्याय निर्णय, निरीध तदण, अन्तःकरण प्रबोध , पुरुषोत्तम तत्त्वनाम, विविध लीला, नाभावलिपुष्टिप्रसार, मर्यादा भेद , अक्षरमूर्ति , ब्रह्मसूत्र , विवेक धैर्यमार्ग , सेवाफल , परिबुद्धाष्टक वादि ग्रन्थों की उन्होंने रचना की । (५६६)

१२- श्री बल्लभ कठोर साकार प्रस्ताव के संस्थापक  
हैं। (५८६) ।

बल्लभ के विषय में इतनी प्रामाणिक सामग्री श्री हरिराय  
जी ने ही प्रस्तुत कर दी है। इसी बड़ा साक्ष्य बल्लभ के परिचय के लिए बया  
ही सकता है।

बागै बलकर उन्होंने बल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गीपीनाथ  
जी का जन्म कबल में हुआ बताया है। कबल से वे चरणार बले बाबू (५९०) ।

श्री गीपीनाथ जी संप्रदाय में संकर्मण के अवतार माने  
जाते हैं। इस मान्यता के लिए बाधाभूत स्वयं हरिराय जी ही हैं। (५९१)

श्री गीपीनाथ जी के पुत्र पुरुषोत्तम जी हुए । उनका  
जन्म वाशिवन कृष्ण वसुंधरी की हुआ । (५९३)

वाचार्य बल्लभ के द्वितीय पुत्र गी० विट्ठलनाथ जी हुए ।  
उनका जन्म पीछा कृष्णा नवमी संवत् १५७२ की हुआ । वे साक्षात् भगवान्  
कृष्ण के अवतार थे । और कलियुग में आपर की लीला करने प्यारे थे । (५९६,  
६०४ ) ।

श्री विट्ठल गौवर्धन नाथ जी की सेवा में निरत रहते  
थे । श्रीमद्भागवत के परम स्वाध्यायी, वपुष्ठा, बल्यन्त सुन्दर थे । (५९६, ६०३)।

विट्ठल जी माता का नाम बल्लाबी था । अपनी पिता  
के परम्परानुसार विष्णुस्वामि मत का ही प्रवर्तन विट्ठल ने किया । (६०४)।

श्री गिरिधर जी विट्ठलेश के ज्येष्ठ पुत्र हनुमान जी से  
हुर । विद्वन्मण्डन में उक्तिर मत का प्रतिपाद उन्होंने किया । वे गोकुल में  
मगवत्सेवा करते थे । (६१२) ।

श्री गोविन्दराय , श्री बालकृष्ण , श्री गोकुल नाथ जी,  
रघुनाथ जी, यदुनाथ जी , इ: पुत्र श्री हनुमण्जी से हुए एवं श्री कनक्याम जी  
विट्ठलेश की द्वितीय पत्नी से हुए (६१७ ) ।

ये सप्तम पुत्र थे । मार्ग शीर्ष कृष्ण त्रयोदशी को उनका  
जन्म हुआ ।

पूर्वजों के उपर्युक्त प्रामाणिक इतिहास के साथ उन्होंने  
संप्रदाय में श्रीमद्भागवत, श्री सुबोधिनी , यमुना, गोकुल, गोवर्धन की महती  
मान्यता का संकेत दिया है। श्री विट्ठलेश प्रणीत सर्वांगम स्तोत्र के महात्म्य  
पर भी बल दिया है ( ६४३, ६४६, ६४७ ) । एक प्रकार से गो० हरिराय  
जी संप्रदाय के विशिष्ट व्यक्तित्वों एवं उनकी कृतियों के प्रामाणिक इतिहासकार  
हैं जिन्होंने बड़ी प्रज्ञा से उन पूर्वजों का स्मरण किया है।

गो० हरिराय जी के कृतित्व पर श्रीमद्भागवत के दशम  
स्कन्ध के कतिपय अध्यायों का प्रभाव :

गो० हरिराय जी ने अपने को श्रीमद्भागवत और उसमें भी  
दशम स्कन्ध के कतिपय अध्यायों पर ही केन्द्रित रखा है। वे लिखते हैं :

‘ धन धुक्मुनि, धन भागवत, धन्य यही अध्याय ।

धन्य धन्य प्रीतिम रसिक, गायी सरस बनाय ॥



उनका बाल श्रुति का वर्णन :

भागवत

कैलेय लंग कीन्वै

धूलि धूलिरिति रत्नम्

गहन बहारा ध्रुव

वत्सान् मुचन् (२६)

सत बुहटी निष्ट बाल

यात्युप कोश्याकान् (२६)

माता के दिग सत सुधे

साधु मन्तु सरार

यलोदा मय श्रान्त (२३)

गोपी दत्त उराहनी

तन्मातुरिति ही सुः समागताः (२८)

दत्त मातन वन वन

मनोन् मोदयन् विभवति (२६)

वीसर बिनु वीरल बलरु

वत्सान् मुचन् वननिदसमये ॥ (२६)

मन वनसात वेति भठि बहु

भाण्ड भिन्नति (२६)

नी कनु वीरन की नहि पावे

ब्रव्यातामे स गृह कृपितो (२६)

संक्षेप में गी० हरिराय जी के पद भागवत के श्लोकों का व्याख्या है। उनकी दान लीला, मान लीला के पद वेणु गीत ( दत्तम स्कन्ध अ० २९ ) के ही भाष्य हैं। रास, बर्षतोत्सव आदि भागवत की रास पैवाध्यायी से प्रभावित हैं। तात्पर्य यह है कि गी० हरिराय जी का ब्रज भाषा पद साहित्य अत्यन्त भागवतानुसारी है।

### समतामयिक प्रभाव :

गी० हरिराय जी पर चैतन्य के परकीया भाव तथा हरिदासी संप्रदाय के सही भाव का भी पूरा पूरा प्रभाव है।

### परकीया भाव :

१- पुरी सफत मनोरथ मेरे, हौं बाहुं छवि ताक ।

रसिक प्रीतम कब के विहारे हौं मिलन बाह हौं नाक ॥ १

२- देखौ मेरे जग कौं फीना, उर कौं ज्वर मीनौ ।

रसिक प्रीतम प्रभु प्रीति जानिकै, धाउ बालिंगन कीनौ ॥ २

उनका नव विचार, ललितता के फल सब हरिदासी सही भाव से प्रभावित हैं। बालछंद से दर्शन, निर्द्वंद्व लोला नित्य विहार बादि शब्दावली सप्तहवीं शताब्दी के 'सही भाव' वाले भक्ति संप्रदाय की है।

१- मदन मोहन पिय नव निर्द्वंद्व में नाम रहत है तरौ । (२६०)

२- बालछंद देखत मन मोहन दुष्टि परी ब्रज वास ( २६६ )

३- श्री गीषी जग वस्तुन वस्तुन करत तु नित्य विहार ॥ (५३९ )

तात्पर्य यह कि गी० हरिराय जी पर सम्कासीन भक्ति

१- ४० प० ६१० ६०

२-     ,,     ६२

पद्यतियों का भी पूरा प्रभाव था। उनकी रसिक भावनामयी साधना के लिए उन दिनों ब्रज में प्रभुत साम्यही थी। और उन्होंने उस साम्यही का साहित्य में परस्पर प्रयोग किया। मधित की यह रसमयी सरिता जिसमें परकीया भाव, ससी भाव, सहचरी भाव आदि सभी सम्मिलित थे। हिन्दी साहित्य के राजा-भित हुंगारी कवियों के हाथ में पड़कर वे लौकिक हुंगार की कालिमा से कलुषित हो गए। मैदिरी में जहाँ एक ओर मधित भाव संवर्धित सात्विक हुंगार की भगवान् के माध्यम से उद्दीप्त किया जाता था वहीं राज दरबारों में बल विलास की वस्तु बन गया था। अतः मधित कवियों की यह रसिक भावना भले ही मधित दोष में उज्ज्वल बनावित रही हो किन्तु लोक वर्णा समाज के हाथों पड़ कर वह लौकिक हुंगार बन गई।

गो० हरिराय की वाचार्थ परंपरा में पहले वाचार्थ है  
 भिन्हींने ब्रज भाषा में कतनो सुष्ठु पद रचना की। उनके ब्रज भाषा पदों के  
 आधार पर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :

उन्होंने वच्छापी कीर्तन शैली को तो अपनाया किन्तु  
 उनमें वच्छापियों जैसी श्रीमद्भागवती क्रमबद्धता नहीं है।

श्रीकृष्ण के लीला गान में वे भागवतानुसारी होकर भी  
 पर्याप्त मौलिक हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवत वलम स्कन्ध के वे ही प्रसंग चुने हैं जो  
 उनकी रसिक प्रकृति के अनुसार अत्यन्त रसमय हैं। वे पुष्टि मार्गीय सेवा के परम  
 मर्मज्ञ और पुष्टि मधित के बरम पोषक हैं। उनकी कतिपय ऐसी विशेषताएँ हैं  
 जिनके कारण पुष्टि संप्रदाय उनका चिर कणी रहेगा। वे विशेषताएँ हैं :

१- वे वाचायें बल्लभ गौ० पिटूठल नाथ जी के चरण  
बिहनों पर चलने वाले बल्यन्त बढातु वाचायें हैं ।

२- वे भाव जगत् के धनी हैं। भाव- भावना, सेवा- भावना  
तीन जन्म की भावना, पुष्टि भावनावादि पर उनका समूचा कृतित्व आधारित  
है।

३- उन्होंने १२५ वर्ष की लंबी वायु पारं थी । अतः  
उन्होंने संपूर्ण जीवन ठीस साहित्य सजें एवं समाराधन किया ।

४- उनकी इस दृष्टि बल्यन्त तीक्ष्ण थी । वे संयोग  
शृंगार के लेख माने जाते हैं किन्तु उनका समूचा संयोग शृंगार भाव जगत् का है  
जिस पर विप्रलम्भ का कठोर आवरण बढा हुआ है।

५- वे संप्रदाय के कठोर अनुयायी, मर्यादा एवं सुबोधिनो  
के कट्टर अनुशीलन कर्ता हैं।

६- काने रहस्य होते हुए भी और सुरताति शृंगार वर्णन  
करते हुए भी वे लौकिक काम जगत् शृंगार के कट्टर विरोधी थे । उनका जीवन  
दर्शन बल्यन्त पवित्र एवं भावमय था ।

७- मागवतानुसारी लीला गायक होते हुए भी उन्होंने  
मगवान् के कुर विनाशक रूप की चर्चा नहीं की उनके मगवान् फिर किसी  
" और बार सिखा मणि " है। बात लीला वर्णन में भी उन्होंने पूतना वध  
तक की चर्चा नहीं की । उन्हें मगवान् का रहस्येश्वर रूप ही प्रिय है। गौ० हरिराय  
जी को इस रहस्य लक्षि के कारण ही उनमें मागवती प्रसंगों की अप्रबलता नहीं  
मिलती ।

८- उनके काव्य में ब्रज संस्कृति का मंगल रूप ही दृष्टिगत होता है। वे बलिव की वीर उन्मुख ही नहीं होते ।

६- उनकी संस्कृत कृतियों के परिमाण में ब्रज भाषा खना स्वल्पतम है फिर भी वह इतनी मधुर रस मयी, सुष्ठु परिमार्जित और वाक्यार्थ है कि पाठक को मुग्ध कर लेती है। किशोर और युगल लीला के वे वर गायक अप्रतिम कवि हैं। माव जी के रत्न पारसी स्कान्त मायुक कवि हैं। युगल लीला के इतने दिव्य सरस पद हैं कि यह सद्यः सम्मेलन में नहीं जाता कि पाठक किस को छोड़े और किसे ग्रहण करे । उनके काव्य के लिए यह उक्ति नितान्त सही उत्तरती है कि :

“ मरे मवन के चौर पर ,  
बदलत छी होर ।

गी० हरिराय जी का संपूर्ण ब्रजभाषा- वाङ्मय स्कान्त राधिक मायुक मयती के लिए है। लोक मयांदा के वन्द्य-मय मीति दृष्टि संपन्न व्यक्तियों के लिए यह “ कमनिया ” बलु वस्तु है।

“ कृष्णापेणमस्तु ”

सहायक पुस्तकों की सूची

**वेद, उपनिषद् एवं पुराण साहित्य**

- १- मुण्डकोपनिषद्
- २- श्वेताश्वतर
- ३- अग्नि पुराण
- ४- श्रीमद्भागवत महापुराण
- ५- स्कन्द पुराण
- ६- गरुड वीर्य
- ७- नारदीय मन्त्र
- ८- श्रीमद्भगवद्गीता

साम्प्रदायिक साहित्य

वेदान्त दर्शन ( ब्रह्मसूत्र निम्बार्किय टीका (

श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्यम् - निर्णयसागर, बम्बई

वष्टसतामृत - प्राणनाथ

उज्ज्वलनीलमणि , निर्णय सागर

तत्त्वदीप निबन्ध

तत्त्वार्थ दीप निबन्ध- मुनियन प्रिंटिंग प्रेस, जहमदाबाद

भवतपाल भक्ति सुधा , नवलकिशोर प्रेस

भवतपाल, टीका प्रियादास

भावप्रकाश - वष्टशाय स्मारक समिति मयुरा

भक्तिवर्धनी , तैलीवाला

भक्तिईश भक्त नामावली , नागरीदास

वस्तुन दिग्विजय

वस्तुन पुष्टि प्रकाश

वृत्रासुर ऋतुःउत्सोकी



विद्वन्मण्डनीपोद्घात- वल्गुभासीश विद्या मंदिर, मयुरा

४५ चौठश ग्रीय

सम्प्रदाय कल्पसूत्र

संस्कृत वार्ता मणिमाला

सिद्धान्त रहस्य

पुष्टिमार्गीय तदाणानि

श्रीमद्भागवत दशम स्कंधानुक्रमणिका

श्रीकृष्ण प्रेमाश्रुत

राधा प्रसन्नता चतुःश्लोकी

स्वामिनी स्तोत्र

परिवृढाष्टक

शृंगार रस मंडनम्

श्री यमुना विज्ञप्तिः

श्रीमत्प्रभो सज्जितरथामित्यनिष्पणम्

मन्त्रित द्वैविध्य निष्पणम्

स्वामिन्यष्टक

श्री माहेश जी कृत धीस

सुबोधनी

श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृत

श्री हरिराय जीवन परितम्

सत्सिद्धान्तमार्तण्ड

सहस्र श्लोकी सेवा भावना

वलिभात्यान

यमुनाष्टक- तेलोवाला

कुण्डिप्रवार मर्यादा भेद

सेवाफलम्

सिद्धान्त सुवतावली

ब्रह्म सम्बन्ध

श्रीवा कर्मसुदी

युगल गीत

वैष्णु गीत

### जीवन चरित

भीनाथ जी की प्रगाढ़ वार्ता

वीरासी वैष्णव वार्ता- सम्पादक परीस

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की प्रगाढ़ वार्ता

प्राचीन वार्ता रहस्य, विषा विभाग कंकरीली

वष्टहाप

श्री वल्लभाचार्य जीर उनकी सिद्धान्त

श्री विट्ठलेश चरितामृत , परीस

वष्टसहान की वार्ता- परीस

बैठक चरित हस्तलिखित- वज्रग पुस्तकालय

निज वार्ता हस्तलिखित

ब्रह्मवाद - ले० राधनाथ शास्त्री

पुष्टि दर्पण

मथित और प्रपत्ति का स्वरूपत मेव

### हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ

हिन्दी साहित्य का इतिहास - बाबाय रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकृष्ण वर्मा

### आलोचनात्मक ग्रंथ

कष्टदाय करिण्य- परीत और नीतिल

कष्टदाय और कल्म संप्रदाय - भाग १, २ डा० दीन दयालु गुप्त

सूर और उनका साहित्य- डा० हरकेश लाल वर्मा

सूरदास - प्रवेश्वर वर्मा

सूर निर्णय - परीत

काव्य ग्रन्थ एवं संगीत ग्रन्थ

परमानंद सागर- परीत जी की १७५४ वाली २ प्रतियाँ

परमानंद सागर - सी० डा० गीवर्धन नाथ हुब्ल

कीर्तन संग्रह भाग १

कीर्तन संग्रह भाग २

कीर्तन संग्रह भाग ३

वष्टहाप पदावली - डा० सोमनाथ

राग रत्नाकर

ब्रजमाधुरी सार- वियोगी हरि

संगीत रत्नाकर भाग १

संगीत रत्नाकर भाग २

संगीत कीर्तन पद्धति की नित्य कीर्तन - चंपकलाल

प्रपरीत - बाबाय्य रामचन्द्र हुब्ल

श्री बातकृष्ण सीतामृत

रासपेताभ्यायी

### कौञ्ज व्याकरण रचण ग्रन्थ

वैजयन्ती कौञ्ज

सिद्धान्त कौमुदी

काव्य प्रकाश

काव्य निर्णय, भित्तारीदास

वर्तकार्मजरी - कन्हैयालाल मोदी

ब्रजभाषा व्याकरण

ब्रजभाषा व्याकरण- विश्वरीपास दाबपिपी

हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

हिन्दी शब्द सागर, वाठवर्मा सप्या, ना० प्र० सभा काशी

सूर शब्द कौञ्ज - डा० गुप्ता

बृहत् हिन्दी कौञ्ज - काशी

### अ- पत्रिकाएँ

सीमा रिपोर्ट

उत्सव काष्ठ

कल्याण मन्त्र चरितम्

मोदीर विमलम्ब ग्रंथ, पञ्चरा